DHARMVIR BHARATI KA SRIJANATMAK SAHITYA-EK ALOCHANATMAK ADHYAYAN

Thesis submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

ISSAC K. S.

Head of the Department
PROF. (DR.) P. V. VIJAYAN
Dean Faculty of Humanities

Supervising Teacher
PROF. (DR.) A. RAMACHANDRA DEV
Former Professor of Hindi

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1992

C E R T I F I C A T E

This is to Certify that this THESIS is a bona fide record of work carried out by **ISSAC.K.S.** under my supervision for Ph.D. degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Prof. (Dr.) A. RAMACHANDRA DEV
(Supervising Teacher)
Formerly of Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology

Kochi 682022
31 August 1992.

A C K N O W L E D G E M E N T

This work was carried out in the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Kochi-22 during the tenure of fellowship awarded to me by the Cochin University of Science and Technology. I sincerely express my gratitude to the Cochin University of Science and Technology for the help and encouragement.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi 682 022

ISSAC. K. S.

31 August 1992.

आमुख

डॉ. धर्मवीर भारती आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध रचनाकार हैं। उन्होंने साहित्य की प्रायः समस्त विधाओं में अपनी क्षमता प्रमाणित की है। अनुवाद-कला के भी वे मर्मज्ञ हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध इत्यादि सभी विधाओं को उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनाया है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका अद्वितीय स्थान है। उनके समस्त लेखन को धुरी मूल्यात्मक है। वे हमारे परंपरित मूल्यों के प्रति विद्रोह करने का प्रयास भी करते हैं, यद्यपि इस दिशा में पूर्णतया सफल नहीं हुए हैं। मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा के लिए प्रतिबद्ध साहित्यकार हैं भारती। वे आस्थावादी भी हैं। 'अंतरात्मा की पुनःस्थापना' की इच्छा उनमें कूट-कूटकर भरी हुई है। समाज की कुरीतियों और अनैतिकताओं ने उन्हें बहुत पीडित किया है। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने इन अनैतिकताओं को दूर करने का प्रयास किया है। जीवन की असंगतियों के त्रासदीय चित्रण करते समय भी उनमें आशा भरी रहती है। इसलिए उनकी प्रायः सभी सर्जनात्मक रचनाओं का अंत आशावादी रह जाता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में धर्मवीर भारती के सृजनात्मक साहित्य के विविध पहलुओं का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। भारती के साहित्य पर एकाधिक व्यक्तियों ने काम किया है। डॉ. चन्द्रभानु सोनवणे का शोध-प्रबन्ध है "धर्मवीर भारती का साहित्य सृजन के विविध रंग" और डॉ. पुष्पा वास्कर का है "धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार"। इन शोध-प्रबन्धों में भारती की रचनाओं को कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण जैसे विविध खानों में बाँटकर अध्ययन किया गया है। इनमें परंपरा परिपालन की प्रवृत्ति ज्यादा है, आलोचनात्मक दृष्टि कम। भारती के साहित्य के संबन्ध में विशेष उल्लेखनीय ग्रन्थ है श्री लक्ष्मणदत्त गौतम द्वारा संपादित

"धर्मवीर भारती" शीर्षक आलोचनात्मक ग्रन्थ । इसमें अनेक आलोचकों का भारती-साहित्य के संबन्ध में मूल्यांकन हैं । परंतु एक वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आवश्यक एकतानता का इस ग्रन्थ में अभाव है । अनेक व्यक्तियों की दृष्टिभंगिमा इसमें अवश्य लक्षित होती है, एक केन्द्रीकृत दृष्टि इसमें नहीं । इनमें तटस्थता की अपेक्षा पूर्वाग्रह प्रबल हैं । हमने भारती के सृजनात्मक साहित्य (कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक) को उनकी समग्रता में आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है और अनेक नए पक्षों का समुद्घाटन भी किया है ।

इस शोध-प्रबन्ध के छः अध्याय हैं और अंत में उपसंहार भी ।

प्रथम अध्याय 'सृजनात्मक साहित्य और भारती का व्यक्तित्व' में सृजन, सृजनात्मक साहित्य और सृजन में लेखक के परिवेश के प्रभाव की चर्चा की गयी है । तत्पश्चात् भारती के व्यक्तित्व को विविध परतों पर हमने प्रकाश डाला है । भारती का व्यक्तित्व उनकी समूची रचना-प्रक्रिया में प्रतिफलित होता है । इसीलिए साहित्यिक रचनाओं के अध्ययन के पूर्व उनके व्यक्तित्व का प्रतिपादन किया गया है ।

द्वितीय अध्याय है 'धर्मवीर भारती का साहित्य एक सामान्य परिचय' । इसमें भारती की सभी रचनाओं का संक्षेप में विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है । उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक के अतिरिक्त निबन्ध और समीक्षात्मक ग्रन्थ भी लिखे हैं । उनके द्वारा अनूदित "देशान्तर" कविता-संकलन और "आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ" का भी परिचय इस अध्याय में दिया गया है । भारती-साहित्य परिमाण की दृष्टि में भी महत्वपूर्ण है, इस अध्याय की यह भी स्थापना है ।

भारती की कविताओं का अनुशीलन है तृतीय अध्याय में । इसमें उनकी लघु कविताओं का अध्ययन किया गया है जो "दूसरा सप्तक", "ठण्डा लोहा" और "सात गीत वर्ष" में संकलित हैं । भारती की प्रसिद्ध रचना "कनुप्रिया" का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इस अध्याय में अध्ययन है ।

चौथा अध्याय 'भारती की नाट्यात्मक रचनाएँ' है। भारती का एक गीति-नाट्य है और एक एकांकी संकलन भी - "अन्धायुग" और "नदी प्यासी थी"। इन दोनों का विश्लेषण रंगकर्मी की दृष्टि से नहीं, साहित्यिक दृष्टि से किया गया है।

धर्मवीर भारती की कहानियों का मूल्यांकन है पंचम अध्याय। उनकी समस्त कहानियाँ "चाँद और टूटे हुए लोग" और "बन्द गली का आखिरी मकान" में संकलित हैं। इन दोनों संकलनों की प्रकृति पृथक है। प्रथम संकलन की कहानियाँ प्रसाद और प्रेमचन्दयुग के निकट आती हैं। दूसरा संकलन हिन्दी की नयी कहानियों में विशेष स्थान प्राप्त करता है। अतः इन दोनों संकलनों का अध्ययन अलग अलग दृष्टि से किया गया है।

छठे अध्याय में भारती की औपन्यासिक रचनाओं - "गुनाहों का देवता" और "सूरज का सातवाँ घोडा" - का अनुशीलन है। "ग्यारह सपनों का देश" एक सहयोगी उपन्यास है। भारती के अतिरिक्त उदयशंकर भट्ट, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, इलाचन्द्र जोशी, राजेन्द्र यादव, मुद्राराक्षस, लक्ष्मीचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, और कृष्णा सोबती के भी इसमें योग रहे हैं। इसके प्रणयन में भारती का यद्यपि योग है तथापि वह स्वतंत्र अध्ययन के लिए उपयुक्त नहीं है। इसकी चर्चा हमने नहीं की है। उपर्युक्त नौ लेखकों की परिवेश और मानसिकता के परिचय के बिना "ग्यारह सपनों का देश" का अध्ययन अनुचित है।

इस शोध-प्रबन्ध में छः अध्यायों के उपरांत उपसंहार है जिसमें भारती की संपूर्ण रचनाओं में दिखाई पडनेवाली सामान्य विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अध्याय के अंत में निकाले गये निष्कर्षों का पुनरवलोकन भी किया गया है।

कोचिन विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के भूतपूर्व प्रोफेसर डॉ. ए. रामचन्द्र देव के निर्देशन में यह शोधकार्य संपन्न हुआ । मैं आचार्य देवजी के सामने नतमस्तक हूँ और उनका आजीवन आभारी हूँ ।

विभागाध्यक्ष डॉ॰ पी॰ वी॰ विजयन के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । विभाग के अन्य अध्यापकों के प्रति, विशेषकर डॉ॰ ए॰ अरविन्दाक्षन के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती कुंजिक्कावुट्टि तंपुरान्, सहायक पी॰ ओ॰ आन्टणी और उन सभी मित्रों के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने इस शोध-कार्य में सहायताएँ दी हैं ।

इनके अतिरिक्त, दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, बेंगलूर विश्वविद्यालय एवं सेंट तोमस कॉलेज पाला के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ ।

ऐसक. के. एस.

कोच्चि - 682 022

31- अगस्त - 1922

विषय-प्रवेश

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - एक - 1 - 12

सृजनात्मक साहित्य और भारती का व्यक्तित्व

सृजन और आलोचन - सृजन और लेखक का परिवेश - धर्मवीर भारती का जीवन-परिचय - शिक्षा - किशोरावस्था - उद्योग-धंधा - रोमान्स - विचारधारा - पूर्णता की तलाश - निष्कर्ष ।

अध्याय - दो - 13 - 48

भारती का साहित्य :: एक सामान्य परिचय

कविता ठण्डा लोहा - अन्धायुग - सात गीत वर्ष - कनुप्रिया - देशान्तर (अनूदित)

कहानी चाँद और टूटे हुए लोग - बन्द गली का आखिरी मकान - आस्कर वाइल्ड की कहानियों का अनुवाद

उपन्यास गुनाहों का देवता - सूरज का सातवाँ घोडा

एकांकी-नाटक नदी प्यासी थी

निबन्ध ठेले पर हिमालय - पश्यन्ती - कहनी-अनकहनी - मुक्तक्षेत्रे युद्ध क्षेत्रे

पृष्ठ-संखया

समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रगतिवाद एक समीक्षा - मानवमूल्य और साहित्य

शोध-प्रबन्ध सिद्ध-साहित्य

अध्याय - तीन - 49 - 96

धर्मवीर भारती की कविताएँ

छायावादोत्तर कविता लघु परिचय -

ठण्डा लोहा रागवृत्ति की रोमानी अभिव्यक्ति - जनवादी भूमिका का आग्रह - जीवन के नकारात्मक पक्ष की अधिकता

सात गीत वर्ष जीवन के सर्गात्मक पक्ष का अभाव - सार्थक विचारों का अन्वेषण -

प्रकृति चित्रण - भाषिक संरचना - दर्दीली भाषा - बातचीत की भाषा - साधारण और सांस्कृतिक भाषा - इतिहास और पुराणों से वस्तुग्रहण - अलंकार-योजना - नाट्यात्मकता - बिंब-विधान - प्रतीक-प्रयोग

पृष्ठ-संख्या

कनुप्रिया रागसंबन्ध की अभिनव अभिव्यक्ति - स्त्री-पुरुष संबन्ध का चिरंतन गीत - युद्ध से टूटते व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति - संबन्ध की तलाश और अस्मिता की तड़प - कनुप्रिया अन्धायुग की पूरक कृति - काव्य-रूप - काव्यगत विशेषताएँ - मिथक काव्य - व्यक्तिकेंद्रीकरण - भाषा - बिंब और प्रतीक-अलंकार

अध्याय - चार - 97 - 132

भारती की नाट्यात्मक रचनाएँ

अंधायुग - मिथकीय संदर्भ और उत्पाद्य तत्व - मानवमूल्य का विघटन और उसके आयाम - अस्मिता का संकट - रूप-विधान और संरचना के नये क्षितिजों की खोज - पुराण-प्रयोग - कथा-गायन - भाषा-प्रयोग - बिंब-विधान - प्रतीकात्मकता - मौन-मुद्रा - पुनरावृत्ति - लय - विस्मय-चिह्न एवं प्रश्न-चिह्न-अलंकार - नाटकीय क्षण और अभिनेयता ।

भारती के एकांकी एक झाँकी -
नदी प्यासी थी - नीली झील - आवाज़ का नीलाम - संगमरमर पर एक रात - सृष्टि का आखिरी आदमी - शिल्प-विधान ।

अध्याय - पाँच - 133 - 156

धर्मवीर भारती की कहानियाँ

चाँद और टूटे हुए लोग - कस्बे का जीवन - अकाल के यथार्थवादी चित्र - स्वप्नलोक और स्वप्नावस्था की कहानियाँ - अभिव्यक्ति-पक्ष

पृष्ठ-संख्या

बन्द गली का आखिरी मकान - संक्रमणकाल और नयी कहानी -
गुलकी बन्नो - नारी जीवन की ट्रेजडी - आदिम बोध की तडप -
सावित्री नंबर दो - कामजनित अहं और मूल्य संक्रमण -
यह मेरे लिए नहीं - प्रेम और आत्मनिर्वासन - लोक जीवन की
समग्रता - बन्द गली का आखिरी मकान - संबन्धों के असंबन्ध का
सम्यक् निरूपण - शैल्पिक विशेषताएँ - मिथक और अन्य संदर्भों का
प्रयोग - भाष - संकेत

अध्याय - छः - 157 - 189

भारती की औपन्यासिक रचनाएँ

गुनाहों का देवता - वस्तु-योजना - रागात्मक संबन्धों की
अभिव्यंजना - चन्दर और सुधा का संबन्ध - चन्दर और
विनती का संबन्ध - चन्दर और पम्मी - अन्य संबन्ध -
रोमांस और स्वच्छन्दता - नैतिक मूल्यों का आग्रह - शिल्पपरक
विशेषताएँ - भाषा - शीर्षक की सार्थकता
सूरज का सातवाँ घोडा - कहानी या उपन्यास?
प्रेम एक माध्यम - विविध कहानियाँ -
निम्न-मध्यवर्गीय जीवन - अस्मिता की तलाश में भटकता
माणिक मुल्ला - असंगति में संगति की खोज -
अभिव्यंजना का स्वरूप - वक्ता-श्रोता शैली -
विचारतत्व एवं व्यंग्य का छींटा - प्रतीक और भाषा -

पृष्ठ-संख्या

उपसंहार - 190 - 196

आदर्श और यथार्थ - नये मानवीय क्षितिज की खोज - अस्मिता की खोज में भटकते पात्र - व्यक्तित्व की छाप - पूर्णता की तलाश - सीमित संवेदना - कलात्मक प्रौढ़ता का विकास -

ग्रन्थ-सूची - 197 - 213

अध्याय - एक

सृजनात्मक साहित्य और भारती का व्यक्तित्व

सृजन मनुष्य का सहज स्वभाव होता है । उसका प्रत्येक कार्य सृजन है , चाहे वह अच्छा हो या बुरा । वह जीवन से अनुभव-सामग्रय प्राप्त करता है । यह उसके अन्तर्जगत् में प्रभाव डालता है । कलात्मक संवेदना और अभिव्यक्ति-कुशलता से संपन्न व्यक्ति अपने मन की अनुभूतियों को साहित्य, संगीत, चित्र, अभिनय इत्यादि के ज़रिए प्रकट करता है । सामान्य व्यक्ति भी सर्जक-कलाकार की तरह घटनाओं का अनुभव करता है, एकाकार होकर रोता-हँसता भी है । पर उन घटनाओं को कलात्मक रूप देने की क्षमता सामान्य व्यक्ति में नहीं है । "विशिष्ट मानवीय क्षमता में कवि दूसरों से भिन्न होता है । सृजन और भाषा-प्रयोग की क्षमता उसमें ज्यादा विकसित है ।"[1] वह क्षमता केवल कवि या कलाकार में ही है । संवेदनक्षमता और अभिव्यक्ति कुशलता की न्यूनता-अधिकता के आधार पर सर्जक को साधारण अथवा श्रेष्ठ माना जाता है ।

सृजनात्मक शक्ति या प्रतिभा की व्याख्या संपूर्ण रूप से सभव नहीं है । वह अव्याख्येय है । उसकी मात्रा सब सर्जकों में समान भी नहीं है । भौतिक परिस्थिति भी उसके निर्माण में पूर्ण रूप से समर्थ नहीं होती, यद्यपि उचित परिस्थिति उसके विकास के लिए आवश्यक है । सृजनात्मक शक्ति शिक्षा-दीक्षा से निर्मित होनेवाली वस्तु नहीं ।

---

1. "The only sense in which a poet is different from others is that the most characteristically human faculty - the faculty to create and use language - is in him over-developed". Understanding Poetry - James Reeves, p.52-53.

पाण्डित्य और सृजनशीलता में भी बडा भारी संबन्ध नहीं है । सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ी लेखक जार्ज साम्प्सन् के मत में - "अधिक पाण्डित्य और महान सृजन-शक्ति के बीच तनिक भी संबन्ध नहीं है । समस्त सृजनात्मक प्रतिभा एक रहस्य है और बिलकुल व्याख्यातीत भी है ।"[1]

सृजन और आलोचन

सामान्य रूप से कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक को सृजनात्मक साहित्य कहा जाता है । आलोचना को भी कुछ विद्वान सृजनात्मक मानते हैं । स्काट जेम्स का विचार है कि - "कवियों का निर्णायक कवि ही है ।"[2] सर्जक जीवन के सुख-दुख, आशा-निराशा और आकुलता-आकांक्षा का संश्लिष्ट चित्रण करके एक प्रतिसंसार की सृष्टि करता है । वह पाठक की संवेदना और उसके जीवन-दर्शन को उन्नत एवं उदात्त बनाता है । आलोचना में भी यही कार्य निहित है । "आलोचना का सिद्धांत मूल्य और संप्रेषणक्षमता रूपी दो खंभों पर स्थित है ।"[3] लेकिन सर्जक और आलोचक की मौलिक प्रतिभा में अंतर होता है । सर्जक "कारयित्री प्रतिभा" से संपन्न है तो समीक्षक "भावयित्री प्रतिभा" से संपन्न है । एक में हृदय-पक्ष और दूसरे में बुद्धि-पक्ष की प्रधानता है । फिर भी "आलोचक पुरानी कृतियों को अंतर्विरोधों के साथ जब नये रूप में पेश करता है तब वे आलोचक कंज्यूमर नहीं होता है बल्कि एक अर्थ में वो प्रोड्यूसर होता है, उत्पादक होता है ।"[4] हमारा निष्कर्ष है कि आलोचना कविता, कहानी, उपन्यास इत्यादि की तरह पूर्ण रूप से सृजनात्मक नहीं है । पर वह एकदम सृजनात्मकता से मुक्त भी नहीं है ।

---

1. There is not the slightest correlation between great learning and great creative power All creative genius is a mystery and utterly inexplicable.
   The Concise Cambridge History of English Literature - George Sampson, p.216.
2. To Judgeof poets is only the faculty of poets.
   The Making of Literature - R.A.Scott-James, p.387.
3. "The two Pillars upon which a theory of criticism must rest are an account of value and an account of communication".
   Principles of Literary Criticism - I.A.Richards, p.25.
4. साक्षात्कार - सितंबर-अक्तूबर - 1989, पृ: 21. {नामवर सिंह का व्याख्यान}

सृजन और लेखक का परिवेश

साहित्य जीवन की विशिष्ट अभिव्यक्ति है । जीवन में घटित होनेवाली मार्मिक घटनाओं का संवेदनात्मक चित्रण साहित्यकार अपनी रचनाओं के ज़रिए करता है । वह व्यक्ति के जीवन की जानकारी देने के साथ समाज की भी जानकारी देता है । सृजन-प्रक्रिया जीवन-प्रक्रिया से अलग नहीं है । समूचे सृजन में जीवन-प्रक्रिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उलझी रहती है । "रचना केवल अन्तश्चेतना की स्वतंत्र-भाव संयोगी प्रक्रिया नहीं है, वह संपूर्ण जीवनेच्छा का ही एक प्रकार, जीवन की प्रक्रिया है और जीवन केवल एक व्यक्ति की अपनी-निजी स्वच्छंद-निरपेक्ष चेष्टा नहीं है, उसको नियमित और शासित करनेवाले बहुत से बाहरी और सामाजिक कारण, आर्थिक और भौतिक शक्तियाँ हैं , अतः उसके मूल्य भी परिवेश और व्यवस्था और वर्ग के मूल्यों से कटकर नहीं हो सकते ।"[1] सृजन के मूल में संवेदना है । संवेदना को रूपायित करने में परिवेश की भूमिका अद्वितीय है । संवेदना और परिवेश की संश्लिष्टता से महत्वपूर्ण कृतियाँ बनती हैं । "सृजन-प्रक्रिया के भीतर से फूट पडनेवाली रचना का एक सिरा आत्म से जुडा रहता है, दूसरी ओर परिस्थिति से । सृजन-प्रक्रिया के दौरान आत्म और परिस्थिति परस्पर गहराती रहती है और उनमें एक खास संबन्ध और संतुलन सधता रहता है । अच्छे साहित्य की यही खासियत है । इसीसे लेखन कला का दर्जा पाता है और समाज के लिए उपयोगी और प्रासंगिक बनता है ।"[2] संवेदना और परिस्थिति की मिलावट से सृजन में कई विचारधाराएँ भी आती हैं ।

समूची रचना-प्रक्रिया रचनाकार के जीवन के विशिष्ट क्षणों से संबद्ध होती है । कलाकृति चाहे वह किसी भी रूप में हो उससे कलाकार के अंतर्जगत् का निकटतम संबन्ध रहता है । लेखक कोई तटस्थ या निटपेक्ष व्यक्ति नहीं है । उसकी भावनाएँ और

---

1. हस्तक्षेप - धनञ्जय वर्मा, पृः 26.
2. दृश्यांतर - नरेन्द्रमोहन, पृः 9.

उसके विचार परिवेश से संचालित होते हैं । "लेखक अनिवार्य रूप से अपने परिवेश से प्रभावित होता है । वह अपनी रचना के लिए विषय-वस्तु और भाषा ही नहीं, रूप भी अपने परिवेश से ही प्राप्त करता है । इस कारण उसके काल्पनिक चित्रों और उसके इच्छित विश्व में भी उसका परिवेश वर्तमान रहता है ।"[1]

रचनाकार के सामने एक ओर बाहरी दुनिया है तो दूसरी ओर उसकी अपनी इच्छा और अनिच्छा कार्यरत रहती हैं । सृजन में उसका दृष्टिकोण, उसका जीवन-अनुभव, उसके विश्वास और उसकी आस्थाएँ कृति को नया मोड देती हैं । अपने चरित्र की अभिव्यक्ति कृतिकार का लक्ष्य नहीं है । फिर भी अभिव्यक्ति में उसके अपने चरित्र की छाप प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आती है । "हर प्रबुद्ध सर्जक अपने युग का प्रबुद्ध चेता होता है, उसकी संवेदना अपने में नवीन तत्वों को समेटती रहती है, अतः जब वह सर्जन करता है तब उसके व्यक्तित्व में आत्मसात सारी परंपरागत और नवीन चेतनाएँ अपने-आप व्यक्त होती रहती हैं ।"[2] मोहन राकेश ने भी स्पष्ट किया है कि "लेखक की शैली के निर्माण में परंपरा और व्यक्तित्व दोनों का योग रहता है । यदि परंपरा व्यक्तित्व को दबा ले तो रचना में यह गुण नहीं आएगा जो साहित्य में उसे एक विशिष्ट स्थान दे सकता है ।"[3] कभी कभी ऐसा भी होता है कि लेखक रचना में अपना चरित्र ही अनजाने में प्रस्तुत करता है । धर्मवीर भारती की कुछ रचनाएँ, विशेषकर "गुनाहों का देवता" उपन्यास और 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी, इसका उदाहरण है । लेखन में परिवेश के प्रभाव के संबन्ध में भारती का वक्तव्य है कि "मैं अपने को स्वतः में संपूर्ण, निरपेक्ष, निस्संग, सत्य नहीं मानता । मेरी परिस्थितियाँ, मेरे जीवन में आने और आकर चले जानेवाले लोग, मेरा समाज, मेरा वर्ग, मेरे संघर्ष, मेरी समकालीन राजनीति और समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, इन सभी का मेरे और मेरी कविता के रूप-गठन और विकास में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग रहा है ।"[4]

---

1. कविता की मुक्ति - डॉ. नन्दकिशोर नवल, पृ: 9-10.
2. आधुनिक हिन्दी कविता सर्जनात्मक संदर्भ - डॉ. रामदरश मिश्र, पृ: 9.
3. परिवेश - मोहन राकेश, पृ: 182.
4. ठण्डा लोहा तथा अन्य कविताएँ - धर्मवीर भारती, भूमिका ।

इसलिए किसी भी रचना का अध्ययन और उसके मूल सूत्र को पकडने की कोशिश करते समय उसके रचयिता के व्यक्तित्व से परिचित होना ज़रूरी है । परिवेश और परिस्थिति ही उसके व्यक्तित्व को स्थापित करती हैं । अतः इनकी जानकारी अत्यंत आवश्यक हैं ।

धर्मवीर भारती का जीवन-परिचय

भारती का जन्म 24 दिसंबर 1926 में इलाहाबाद के अतरसुइया मुहल्ले में हुआ । पिता का नाम चिरंजीवलाल वर्मा और माता का नाम चंदादेवी था । उनके पिता ने बर्मा में कुछ दिन नौकरी और ठेकेदारी की थी । वहाँ से लौटकर पहले मिर्जापुर और बाद में स्थायी रूप से इलाहाबाद में बस गये ।

धर्मवीर भारती की माँ आर्यसमाजी थी । माँ ने उनपर आर्यसमाजी संस्कार डालने का प्रयास किया है । इसका जिक्र करते हुए भारती ने लिखा है - "माँ आर्यसमाजी है । इन मेलों-ठेलों ने देश का नाश किया, अतः उन्हें इसमें दिलचस्पी नहीं । बगलवाले घर की जीजी का मैं लाडला था । उनके ठाकुरजी के लिए स्कूल के अहाते से कनेर और मधुमालती फूल लाने से लेकर दोपहर को चिल्लाकर राधेश्याम की रामायण गाना मेरा रोज़ का कार्यक्रम था ।"[1] भारती की माँ की झलक उनकी 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी में मिलती है ।

जब वे आठवीं कक्षा में पढ रहे थे, उनके पिता का देहांत हो गया । पिता के निधान ने बालक भारती को विचलित किया । इससे उनको अपना जीवन दारुण परिस्थितियों में गुज़ारना पडा । वे लिखते हैं - "मेरा तो बचपन ही शुरू हुआ, जहाँ पिता की मृत्यु थी, माँ का बुढापा था और जिसका कोई इलाज नहीं, वह गरीबी का रोग था ।"[2] गरीबी और कठोर यथार्थ की परिस्थिति में भारती अकेले बैठकर इधर-उधर की बातें सोचते थे । यह चिंतनशीलता भारती के व्यक्तित्व का अंग बन गयी ।

---

1. पश्यन्ती - धर्मवीर भारती, पृः 4.
2. धर्मयुग - 27 दिसंबर 1987, पृः 22.

शिक्षा

पिता की मृत्यु के उपरांत भारती ने अपने मामा अभयकृष्ण जौहरी की सहायता से पढाई जारी रखी । सन् 1945 में उन्होंने बी. ए. परीक्षा पास की और 1947 में एम.ए. भी । बी.ए. परीक्षा में सर्वाधिक अंक पाने पर इन्हें चिन्तामणि घोष मण्डल पुरस्कार प्राप्त हुआ । एम.ए. हिन्दी परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के उपरांत भारती ने डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में सिद्ध साहित्य पर अनुसंधान किया और पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की । आर्थिक विषमता और स्वावलंबी बनने की इच्छा से भारती ने बी.ए. की पढाई के समय से ट्यूशनें की थीं । डॉ. प्रभात से हुई भेंटवार्ता में भारती ने अपने अध्ययनकाल का स्मरण किया है - "मेरा बचपन बडी गरीबी और संघर्ष में बीता । पिता थे नहीं और हम लोगों के पास आमदनी का कोई विशेष जरिया नहीं था । जैसे-तैसे पढाई चल रही थी - कुछ वजीफों के सहारे, कुछ ट्यूशनों के सहारे ।

मुझे बहुत दिलचस्पी थी पढने में । अधिक से अधिक, कितना कहाँ से क्या पढ सकूँ और वह भी पढना कोर्स के बाहर की चीज़ें । कोर्स की चीज़ें सिर्फ उतनी पढता था जितना पढना परीक्षा के लिए आवश्यक था और जिसमें कि प्रथम श्रेणी के नम्बर मिल जाए ।"[1]

किशोरावस्था

किसी भी व्यक्ति की मानसिकता के स्थायन में किशोरावस्था का असाधारण महत्व होता है । भारती की किशोरावस्था कई दृष्टियों से काफी उथल-पुथल की थी । भारत अंग्रेज़ों के अधीन था । विदेशी शासन से मुक्त होने के लिए सन् 1942 में गाँधीजी के नेतृत्व में "भारत छोडो" आन्दोलन प्रारंभ हुआ । किशोर भारती के मन में सामाजिक दायित्व की भावना जागृत हुई । उन्होंने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया । इससे 1942 में इंटर की परीक्षा पास कर लेने के बाद उनकी शिक्षा एक साल के लिए स्थगित हो गयी । अंग्रेज़ों ने इस आन्दोलन को अपनी सैन्यशक्ति के ज़रिए बुरी तरह कुचल दिया । इससे भारती में देश-प्रेम की भावना और ब्रिटीश विरोध अधिक जागृत हुआ । यह भावना उनके प्रथम कहानी-संकलन में देख सकते हैं ।

---

1. अक्षरा - 19, अप्रैल-सितंबर 91, पृ: 7.

गाँधीजी ने "भारत छोडो" आन्दोलन वापस लिया । इस काल में देश की मुक्ति के लिए सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में 'आज़ाद हिन्द फौज' की स्थापना हुई । भारती सुभाष बोस के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए । वे लिखते हैं - "राजनीति में सब मुझे उलझे हुए और कुछ अंशों तक समझौतावादी लगते थे । आदर्श थे सुभाष । अंग्रेज़ों से उन्हीं के राजनीतिक मुहावरे में मुँहफटा बोलने का साहस रखनेवाले उन आडंबरप्रिय गोरे उपनिवेशवादियों के साम्राज्यवादी घमंड को सैन्यशक्ति के सहारे चुनौती देनेवाले ।"[1] इन शब्दों में भारती का क्रान्तिकारी स्वर मुखरित होता है । लेकिन युवाकालीन शौर्य और भारती के बीच दरार बढता रहा । "अन्धायुग" जैसी कृतियों में वह एक समझौतावादी बन गया है ।

सन् 1942 के आन्दोलन की पीडा से देश मुक्त हुआ ही नहीं था कि बंगाल में भीषण अकाल पडा । लोग मुट्ठी भर दाने के लिए तरसने लगे । कलकत्ता की सडकों पर गरीबों की लाशें सडती रहीं और उनपर मक्खियाँ भिनभिनाने लगीं । इस दृश्य ने किशोर भारती को अत्यंत विचलित किया । इस भीषण अकाल को केन्द्र बनाकर उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखीं जो "चाँद और टूटे हुए लोग" कहानी-संकलन में संकलित हैं ।

भारती की किशोरावस्था में दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हुआ । इसकी विभीषिका ने भी उनको अत्यंत विचलित किया । "अन्धायुग" में भारती ने महाभारतयुद्ध की आड में द्वितीय विश्वयुद्ध का वर्णन-विवरण किया है ।

उद्योग-धंधा

भारती ने एम.ए.की पढाई का खर्च पद्मकांत मालवीय द्वारा संपादित "अभ्युदय" नामक दैनिक पत्र में अर्द्धकालीन पत्रकार का काम करके निकाला । सन् 1948 में श्री इलाचन्द्र जोशी के साप्ताहिक पत्र "संगम" में उन्होंने सहायक संपादक के रूप में कार्य किया । फिर लक्ष्मीकान्तवर्मा का सहयोग लेकर इलाहाबाद से "निकष" के तीन

---

1. ज्ञानोदय - अक्तूबर 1963, पृ: 20.

अंक निकाले । तदुपरांत रघुवंश, साही आदि के साथ मिलकर आलोचना त्रैमासिक का संपादन भार संभाला और साहित्य के मानमूल्यों को लेकर कई बहसों का सूत्रपात किया । 1950 में उन्हें प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक का पद मिल गया । वे 1960 तक अध्यापन कार्य में संलग्न रहे । भारती के संबन्ध में यह दस वर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण है । उनका सृजनात्मक वैभव इस अवधि में ही अधिकतर निखर उठा है । उनकी सारी महत्वपूर्ण रचनाएँ इस काल में प्रकाशित हुईं। 1960 में भारती ने बंबई से प्रकाशित होनेवाले "धर्मयुग" साप्ताहिक का संपादन-भार संभाला और उनके संपादकत्व में 6 मार्च 1960 पर "धर्मयुग" का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ । इसके बाद उनका साहित्यिक लेखन रुका-सा है । भारती ने इसका कारण बताया है कि "धर्मयुग का काम करते ही रात के 8-9 बज जाते हैं, फिर कुछ लिखने का हौसला ही नहीं रहता ।"[1] श्री विनय के साथ हुई बातचीत में भारती ने विस्तृत रूप से इसका समाधान दिया है - "इसके पीछे मुख्य स्थिति यह है कि मेरे लिए अच्छे मनुष्य, सही मनुष्य और ईमानदान मनुष्य की तरह जीना मुख्य चीज़ है । साहित्य उसका एक अतिरिक्त फल हो सकता है, लेकिन साहित्यिक ही रहना या साहित्यिकता के ही माध्यम से अपने को उपलब्ध करना, यह मेरा उद्देश्य कभी रहा नहीं । दूसरी बात परिमाण की दृष्टि से निःसंदेह पत्रकारिता में आने के बाद समय-अवकाश की थोडी कमी रही । लेकिन जो सबसे बडा कारण था, वह कुछ जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ थीं जिनमें इलाहाबाद छोडकर और बंबई आकर गुज़रना मेरे लिए बहुत यंत्रणाप्रद प्रक्रिया थी । उस यंत्रणा में बहुत अकेले छूट जाने पर बहुत दिनों तक मुझे अपने को संभालने और फिर से बनाने में ज्यादा समय लगा"[2] 29 नवंबर 1987 के अंक के साथ भारती "धर्मयुग" के अपने दायित्व से मुक्त हो गये हैं । अब वे "धर्मयुग" में 'शब्दिता' शीर्षक कालम् में समकालीन घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहते हैं ।

---

1. भारती संगम से सागर - सं. पंडित सुरेन्द्र तिवारी - सुरिन्दर मिश्र, पृः 15.
2. आजकल - 5-5-1980, पृः 7.

रोमान्स

भारती के जीवन में बचपन से ही रोमान्स का विशेष स्थान रहा है । बचपन में वे समुद्री कविताओं, साहसी नाविकों और समुद्री लुटेरों की कहानियों के पीछे पागल रहते थे । वे याद करते हैं - "समुद्र मुझे मोहित करता था । मुझे लगता था कि समुद्र में अनन्त समुद्र में जिसमें चारों ओर जल ही जल है, जल ही जल है और ऊपर केवल आकाश ही आकाश है, आकाश ही आकाश है, उसमें अपने किसी जहाज़ पर जाते हुए पता नहीं मुझे क्या मिलेगा । जलपरियाँ मिलेगी, कि तूफान मिलेंगे, झंझावत मिलेंगे, कि भंवरचक्र मिलेंगे, कि वात्याचक्र मिलेंगे, कि विचित्र समुद्री जीव मिलेंगे कि मुझको अजीब-अजीब कहानियाँ अजीब-अजीब द्वीपों की मिलेंगी । और समुद्र के बारे में मुझे जितना साहित्य मिलता था, मैं पढता था ।"[1] वे छोटी आयु में जल-परियों की कल्पना करते थे । भारती में रोमान्स को प्रतिष्ठित करने में छायावाद का भी योग रहा होगा । क्योंकि उनकी किशोरावस्था में छायावाद का बोलबाला था । छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद उनके प्रिय कवि थे । प्रसाद के अतिरिक्त मलिक मुहंमद जायसी, शरत्चन्द्र, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, शेले, आस्करवाइल्ड, तोमस हार्डी आदि हैं उनके प्रिय लेखक । उनके विचार में "मध्यकाल के कवियों में केवल जायसी ही ऐसा लगता है जो सचमुच बाग और उपवन भटक-भटक कर फूलों के जादू में डूबा रहा है ।"[2] भारती की यह भावुकता उनकी प्रायः सभी कृतियों में परिलक्षित होती है ।

भारती फूलों के प्रति विशेष शौकीन हैं । यह शौक उनकी रोमानियत का निदर्शन है । उन्होंने कहा है - "मुझे भी कभी लगता है कि मैं समय को फूलों के कैलेण्डर में बाँध दूँ, दिशाओं को फूलों की पंखुरियों में बसा दूँ, मन के हर आरोह-अवरोह को और भावना के हर आवेग को फूलों की पतों में दबा दूँ और यह निखिल

---

1. आजकल - 5-5-1980, पृः 8.
2. ठेले पर हिमालय - धर्मवीर भारती, पृः 35.

सृष्टि फूलों का जाल बन जाये और मैं इसका रसमर्म पाने के लिए उतना ही आकुल हो उठूँ जितने जायसी "[1] बेले के फूले, लाल कनेर, रजनीगंधा आदि के प्रति उनकी खास रुचि है । इन फूलों का उल्लेख उनकी रचनाओं में यत्र-यत्र देख सकते हैं ।

विचारधारा

भारती ने किशोरावस्था में सामाजिक परिवर्तन के लिए मार्क्सवाद की भूमिका को महत्वपूर्ण माना था । लेकिन, वे लिखते हैं - "मार्क्सवाद का काफी अवगाहन करने के बाद मुझे लगा कि बहुत से प्रश्न हैं जो अनुत्तरित छूठ जाते हैं । उनके विषय में मार्क्स कोई जवाब नहीं दे पाता । मैं एक बार भारतीय दर्शन की ओर लौटा । तब मैं ने पाया कि हमारे यहाँ मध्यकालीन संत वैष्णव भक्त, सूफियों की विचारधाराएँ आयी हैं । इनमें हमारे अनेक प्रश्नों का उत्तर है जो मार्क्सवाद नहीं दे सकता ।"[2] भारतीय दर्शनों में उपनिषद उन्हें बहुत भाते थे । उनकी दृष्टि में - "उपनिषदों में गहराई है और आत्मचिन्तन को, आत्मोपलब्धि को सामाजिक चिन्तन और सामाजिक उपलब्धि से जोडने के बीज उपनिषदों में हैं और वे ही बाद में गीता में प्रस्फुटित हुए ।"[3]

पूर्णता की तलाश

भारती के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है पूर्णत्व की खोज । उन्हीं के शब्दों में - "मैं इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जीता हुआ एक सामान्य मनुष्य हूँ और मैं अपना भविष्य जानना चाहता हूँ । मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी अपनी नियति क्या है । मैं एक सार्थक मनुष्य हूँ, अपना अर्थ खोजता हुआ, अपनी पद्धति

---

1. ठेले पर हिमालय - धर्मवीर भारती, पृ: 36.
2. आजकल - 5-5-1980, पृ: 8.
3. वही ।

खोजता हुआ, अपनी मर्यादा खोजता हुआ ।"[1] पूर्णता की सबसे बडी शर्त आत्म-साक्षात्कार है । मानवमूल्यों में अटल आस्था ही इसका मार्ग है । बचपन की परिस्थितियों के दबाव से भारती ने मनुष्य के रूप में अपने अस्तित्व और सार्थकता की खोज शुरू की । वे लिखते हैं - "मेरे माँ-पिता बचपन से ही कहा करते थे कि यह लडका निरा निकम्मा और फालतु है । मेरे भाई-बहन भी कहते कि मैं अपदार्थ हूँ, मेरा भविष्य अन्धकारमय है, स्कूल के छात्र-शिक्षक भी यही कहते, जब यूनिवर्सिटी में गया, वही वही बातें, वही लांछन । जब एम.ए. पास किया तो यह जानने की तीखी चाह जगी मन में कि मैं कौन हूँ, क्या हूँ, अपने को जानने की अनहद कोशिश की मैं ने ।"[2] इस खोज के परिणामस्वरूप उनकी समस्त कृतियाँ मूल्यात्मक बन पडी हैं ।

भारती की दो विशेषताएँ हैं पढाई और घुमक्कडी । इनमें वे विशेष रुचि रखते हैं । उन्होंने लिखा है - "जानने की प्रक्रिया में जीने और जीने की प्रक्रिया में जाननेवाला मिजाज जिन लोगों का है उनमें मैं अपने को पाता हूँ ।"[3] पढाई से वे लेखन में सिद्धहस्त बन गये । इसीलिए नपे-तुले शब्दों के प्रयोग में भी भारती का अद्वितीय स्थान है । यह विशेषता उनकी प्रायः सभी रचनाओं में दिखाई पडती है । भारती के घूमने की आदत का मज़ाक उडाते हुए लक्ष्मीनारायण लाल ने कहा है कि "आप उन्हें कमरे में बैठाइए, वह दस-पन्द्रह मिनट में ही आपके कमरे में टहलने लगेंगे"[4] भारती की कुछ रचनाओं के पात्रों को भी घूमने का शौक होता है । 'चाँद और टूटे हुए लोग' का राजेश इसका नमूना है । भारती ने इंगलैंड, जर्मनी, इंडोनेशिया, बांगला देश इत्यादि देशों की यात्रा की है । जिन जिन जगहों की उन्होंने परिक्रमा की है उनका अच्छा विवरण भी प्रस्तुत किया है । ये विवरण हिन्दी साहित्य भण्डार को संपन्न बनाने में सक्षम हैं ।

---

1. अक्षरा-19, पृः 17-18.
2. धर्मयुग - अंक 19, अक्तूबर 1991, पृः 33.
3. पश्यन्ती - धर्मवीर भारती, पृः 5.
4. मेरा हमदम मेरा दोस्त - सं. कमलेश्वर, पृः 51.

निष्कर्ष

धर्मवीर भारती के व्यक्तित्व की अनेक परतें होती हैं । एक ओर उनमें आर्यसमाजी संस्कारों का प्रभाव होता है तो दूसरी ओर अतरसुइया मुहल्ले के जीवन का । रोमांस और श्रृंगार-प्रियता उनके रक्त में ही लीन हैं । इसीसे उनकी यथार्थपरक रचनाएँ भी रोमानियत से अनुप्राणित हैं । डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने लिखा है कि "उनके व्यक्तित्व का केन्द्रीय तत्व बौद्धिकता नहीं रागवेष्टित सौन्दर्य है, जिसे उन्होंने पहचाना और बौद्धिकता से आक्रांत युग में साहसपूर्वक स्वीकारा भी । परंतु वे जिस युग-परिवेश में थे, उसकी कुछ दूसरी अपेक्षाएँ भी थीं, जिनकी उपेक्षा उन जैसा सजग रचनाकार नहीं कर सकता था ।"[1] भारती साहित्य को राजनैतिक तत्वों और वादों से मुक्त करने के पक्ष में हैं । वे साहित्यकार को स्वतंत्रता और मानवमूल्यों की महत्ता पर बल देते हैं । विभिन्न संस्थाओं और प्रतिष्ठानों से संबद्ध भारती व्यवहार कुशल, स्वस्थ चिंतक एवं दक्ष प्रशासक भी हैं । कई राज्य सरकारों, साहित्य अकादमियों और स्वतंत्र साहित्य प्रतिष्ठानों ने अनेक पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया है । भारत सरकार ने उन्हें 1972 में "पद्मश्री" पुरस्कार से सम्मानित किया है ।

---

1. धर्मयुग - अंक-9, मई 1992, पृ: 30.

अध्याय - दो

भारती का साहित्य : एक सामान्य परिचय

डॉ. धर्मवीर भारती प्रतिभा संपन्न कवि, कथाकार, विचारक एवं गद्यकार के रूप में विख्यात हैं । उन्होंने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं पर सफलता हासिल की है , तो भी वे मूलतः कवि हैं । कविता के माध्यम से भारती ने आज की संघर्षपूर्ण जिन्दगी को चित्रित किया है और जीवन के अर्थ को समझाने का प्रयास किया है । भारती और कविता के संबन्ध को सूचित करते हुए श्री अज्ञेय लिखते हैं - "कविता भारती के लिए शान्ति की छाया और विश्वास की आवाज़ रही है ।"[1]

कविता

धर्मवीर भारती की काव्य-यात्रा मुख्यतः 'दूसरा सप्तक' से प्रारंभ हुई । उनकी प्रारंभिक कविताएँ छायावाद की सी थोडी मांसलता या उन्मुक्त रूपोपासना से युक्त होने पर भी अभिव्यंजना प्रणाली नवीन हैं । भारती के काव्य-ग्रन्थ हैं - "ठंडा लोहा", "अंधायुग", "कनुप्रिया" और "सात गीत वर्ष" । इनके अतिरिक्त "देशान्तर" नाम से उन्होंने कुछ विदेशी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद भी किया है । उनकी कविताओं में रूपासक्ति, प्रेम की स्थूल और उदात्त अभिव्यक्ति, प्रकृति की आकर्षक छवियाँ आदि के साथ युग-सत्य और समसामयिक चिंतन भी दिखाई पडते हैं ।

---

1. दूसरा सप्तक - सं. अज्ञेय , पृः 165.

ठंडा लोहा

धर्मवीर भारती की अनेक स्फुट कविताएँ हैं । ये कविताएँ "ठंडा लोहा" और "सात गीत वर्ष" नामक संकलनों में प्रकाशित हुई हैं । "ठंडा लोहा" में सन् 1946 से 1952 तक की चुनी हुई रचनाएँ आती हैं । प्रस्तुत संकलन के संबन्ध में भारती ने लिखा है कि "इस संग्रह में दी गयी कविताएँ मेरे पिछले छह वर्षों की रचनाओं में से चुनी गयी हैं और चूँकि यह समय अधिक मानसिक उथल-पुथल का रहा, अतः इन कविताओं में स्तर, भावभूमि, शिल्प और टोन की काफी विविधता मिलेगी । एकसूत्रता केवल इतनी है कि ये सभी मेरी कविताएँ हैं, मेरे विकास और परिपक्वता के साथ उनके स्वर बदलते गये हैं, पर आप ज़रा ध्यान से देखेंगे तो सभी में मेरी आवाज़ पहचानी-सी लगती है ।"[1]

प्रस्तुत संकलन का नामकरण इसकी पहली कविता के नाम पर हुआ है । 39 कविताओं के इस संकलन में अधिकांश कविताएँ रोमांटिक हैं । बाहर की व्यापक सचाई के स्थान पर कवि की निजी आंतरिक पीडा की अभिव्यक्ति इसमें अधिक हुई है । इसका प्रमुख स्वर प्रेम का है । युवावस्था के प्रेम में दिखायी पडनेवाली गहरी भावुकता तीव्र आवेग और अनंत स्वप्न का अंकन इसमें है । समाज के बीच आ जाने पर ये कोमल भावनाएँ कुचल दी जाती हैं और जीवन के सपने चकनाचूर हो जाते हैं । केवल हताश-भावना शेष रह जाती है । यह समझते हुए कवि कहता है -

"मेरी दुखती हुई रगों पर ठंडा लोहा ।
मेरी स्वप्न भरी पलकों पर
मेरे गीत भरे होठों पर
मेरी दर्द भरी आत्मा पर

---

1. ठंडा लोहा तथा अन्य कविताएँ - भारती , भूमिका ।

स्वप्न नहीं अब
गीत नहीं अब
दर्द नहीं अब
एक पर्त ठंडे लोहे की ।"[1]

इस संकलन की एक और विशेषता इसकी मिश्र भावना है । अपनी प्रेमिका के प्रति इनकी दृष्टि वासना की होती है और पवित्रता की भी । प्रणय और मर्यादा, उत्साह और उदासी जैसी मिश्र भावनाओं के सम्मिलित योग से इस संकलन को एक नया रूप मिला है ।

"ठंडा लोहा" संकलन की कविताओं की अभिव्यक्ति में कहीं भी कोई उलझाव नहीं है । उनमें एक आन्तरिक लय हैं । उनकी गति कहीं खंडित नहीं होती । इनमें कुछ कविताएँ संवादात्मक हैं और बातचीत की नाटकीय शैली का परिचय देती हैं । जैसे 'डोले का गीत', 'कवि और अनजान पगध्वनियाँ', 'दो आवाज़ें', 'कविता की मौत' आदि । सौन्दर्य चित्रण, बिंब निर्माण , नये आकर्षक उपमानों के प्रयोग और स्निग्ध कोमल मांसल शब्दावली के प्रयोग में भारती सिद्धहस्त हैं । भाषा का सहज प्रवाह उनकी अभिव्यक्ति का प्रमुख गुण है । उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से कविताओं के सौन्दर्य में काफी वृद्धि हुई है ।

"ठंडा लोहा" संकलन पाठकों को आकृष्ट करने में सचमुच सफल हुआ है ।

अन्धायुग

स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में ऐसी अनेक कृतियाँ आयी हैं जिनका आधार प्राचीन होकर भी ध्येय वर्तमान का है । इन कृतियों के पौराणिक प्रसंग,

---

1. ठंडा लोहा तथा अन्य कविताएँ - भारती, पृ: 1.

ऐतिहासिक संदर्भ और पात्र वर्तमान युग में आकर भी अपनी अस्मिता बनाये हुए हैं । फलस्वरूप अतीत वर्तमान में साँस लेने लगते हैं । ऐसी कृतियों में अन्धायुग का उल्लेखनीय स्थान है ।

"अन्धायुग" एक प्रसिद्ध गीति-नाट्य है जिसे दृश्य-काव्य, काव्य-रूपक, नाट्य-रूपक, भाव-नाट्य इत्यादि कई नामों से अभिहित किया जाता है । इसमें धर्मवीर भारती ने महाभारत के उत्तरार्द्ध की कथा को आधार बनाकर समकालीन बोध को वाणी दी है । इसका घटनाकाल महाभारत युद्ध के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक फैला हुआ है । प्रारंभ से ही कवि यह बताना चाहता है कि महाभारत युद्ध अनीति, अमर्यादा और अदूरदर्शिता का फल है । स्वार्थ से ग्रस्त पाण्डव और कौरव अन्धे हो गये थे । युद्ध के भीषण ताण्डव के परिणाम स्वरूप जो विनाश तथा विघटन हुआ उसके लिए धृतराष्ट्र का अन्धापन बहुत सीमा तक उत्तरदायी है । पर सारे विध्वंसों का कारण केवल धृतराष्ट्र और उनकी सन्तान ही नहीं पांडव भी समान रूप से उत्तरदायी है -

"दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा
दोनों ही पक्षों में जीता अन्धापन ।"[1]

कवि ने महाभारत युद्ध के माध्यम से द्वितीय विश्वयुद्ध की ओर संकेत किया है । द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत विश्व में व्याप्त अनास्था, अविश्वास और मूल्यविघटन की ओर संकेत करना कवि का अभीष्ट रहा है । साथ ही अन्धकारमय भविष्य के प्रति चेतावनी देना भी । इसी से अन्धायुग अन्धों की कथा होकर भी ज्योति की कथा बन गयी है । भारती ने यह स्पष्ट किया है -

"या कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से ।"[2]

---

1. अन्धायुग - धर्मवीर भारती, पृ: 11.
2. वही - पृ: 12.

"अन्धायुग" में विगत को आगत से जोडकर अनागत की ओर संकेत किया गया है । डॉ. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार "भारती ने "अन्धायुग" में कौरव नगरी को उसकी उजडती गिरती दशा में उसी तरह पकडने की कोशिश की है जिस तरह इलियट ने वेस्टलैंड में लंदन को और जॉयस ने युलिसेस में डबलिन को । इनकी स्थितियाँ कौरव-नगरी की स्थितियों से अलग होकर भी एक दृष्टि से समान हैं कि इनमें संबन्ध टूट रहे हैं, इनसान की हस्ती खतरे में पड चुकी है, आस्था टूट चुकी है ।"[1]

"अन्धायुग" पाँच अंकों में विभाजित हैं - कौरव नगरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य, गाँधारी का शाप और विजय एक क्रमिक आत्महत्या । अंक परिवर्तन के साथ कथागायन की योजना है । कथानक की जो घटनाएँ मंच पर दिखाई नहीं जातीं, उनकी सूचना देने और वातावरण की मार्मिकता को और गहन बनाने के लिए कथा-गायन की पद्धति अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है । आरंभ से लेकर अंत तक कथा में संगठन है । कोई भी प्रसंग मूल चेतना से कटा हुआ नहीं है । इसके प्रायः सभी पात्र पाण्डव-कौरव कुल से संबन्धित हैं । पात्रों के मिथकीय होने पर भी उनकी अस्मिता आधुनिक युग की है । "अन्धायुग" की भाषा गद्य के अधिक निकट है । क्योंकि इसमें विचारों की प्रधानता है ।

इस रचना में आधुनिक युगबोध को मिथकों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है । अन्धे चरित्र या अन्धी युग-दृष्टि को विवृत करना इसका प्रमुख ध्येय है । इसीसे यह एक श्रेष्ठ कृति बन गयी है ।

सात गीत वर्ष

धर्मवीर भारती का दूसरा कविता संकलन है सात गीत वर्ष । इसमें सन् 1951 से 1958 तक सात वर्षों की कविताओं का संकलन किया गया है । इस

---

1. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृः 117.

आधार पर संकलन का नामकरण हुआ है । इसमें 51 कविताएँ संकलित हैं । इसकी अधिकांश कविताएँ "ठंडा लोहा" संकलन की कविताओं के समान प्रेम भावना से संबन्धित हैं । इस प्रेम-भावना में भी एक प्रकार के विरोधी तत्व या मिश्र भाव पाये जाते हैं । तृष्णा और स्मृति, रूपासक्ति और उदासी, मांसलता और दर्द आदि विरोधी भावनाओं के कारण प्रेमी कभी भी ठीक से न सुख का अनुभव कर पाता है और न दुख का भी । एक मिश्रित रस इस संकलन की कविताओं की एक विशेषता है -

"हाथ में जब हाथ कोई आएगा
उष्ण ममता नहीं केवल एक खालीपन उसे छू जाएगा
बाँह में जब जिस्म कोई आएगा
बीच में तुमको सिसकता पायेगा
प्यार यह क्या अब कभी भी स्वयम को दुहरायेगा
नहीं ! शायद नहीं !"[1]

"सात गीत वर्ष" की सबसे महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं - 'प्रमथ्यु गाथा,' बाणभट्ट,' 'बृहन्नला' और 'टूटा पहिया' । ये कविताएँ जनवादी भूमिका से संबन्धित हैं । 'प्रमथ्यु गाथा' एक लंबी कविता है जिसका आधार एक पौराणिक यूनानी गाथा है । इसमें कवि का उद्देश्य यह रहा है कि ज्योति चाहनेवालों को दंड का भय छोडकर प्रमथ्यु की तरह साहस के साथ आगे आना चाहिए ।

प्रयोगवादी आन्दोलन से संबन्धित होने के कारण भारती ने अपनी कविताओं में उन रचनाकारों पर तीखा व्यंग्य किया है जिनका शब्द राजसत्ता और नगर सेठों के सामने बिक गया है । बाणभट्ट' और बृहन्नला' ऐसी कविताएँ हैं । "टूटा पहिया" के माध्यम से भारती ने लघुमानव का महत्व उद्घोषित किया है ।

---

1. सात गीत वर्ष - भारती, पृ: 72.

चक्रव्यूह में फँसे अभिमन्यु ने रथ के टूटे पहिये से ब्रह्मास्त्र से लोहा लिया था । उसी प्रकार तुच्छ और तिरस्कृत समझे जानेवाले भी सच्चाई का समर्थन कर सकते हैं ।

प्रस्तुत संकलन में शुद्ध प्रकृति चित्रण की कविताएँ भी हैं । 'सांझ के बादल' और 'एक छवि' ऐसी ही कविताएँ हैं । इन कविताओं में कवि का हर्षोल्लास प्रकट हुआ है ।

"सात गीत वर्ष" का अभिव्यंजना-पक्ष मनोरम है । इसमें कथ्य के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया गया है जिसमें मर्म को छूने की शक्ति है । अभिव्यक्ति की सरसता और सहजता इस संकलन की कविताओं को आकर्षक बनाती हैं । नये उपमान यत्र-तत्र बिखरे पडे हैं और सूक्ष्म भावनाओं को सफलतापूर्वक अंकित किया गया है । सचमुच सात गीत वर्ष", "ठंडा लोहा" संकलन से एक कदम आगे है ।

कनुप्रिया

"कनुप्रिया" का लेखन "अंधायुग" के लेखन के चार वर्ष बाद (1959) हुआ । इसकी भूमिका में भारती ने लिखा है कि "अंधायुग" की समस्या के ही कुछ विशिष्ट संदर्भ "कनुप्रिया" में उद्घाटित हुए हैं । उन्हीं के शब्दों में-"लेखक के पिछले दृश्य-काव्य में एक बिन्दु से इस समस्या पर दृष्टिपात किया जा चुका है - गाँधारी, युयुत्सु और अश्वत्थामा के माध्यम से । कनुप्रिया उनसे सर्वथा पृथक-बिलकुल दूसरे बिन्दु से चलकर उसी समस्या तक पहुँचती है, उसी प्रक्रिया को दूसरे भावस्तर से देखती है और अपने अनजान में ही प्रश्न के ऐसे संदर्भ उद्घाटित करती है जो पूरक सिद्ध होते हैं ।"[1] जब इतिहास की दुर्दान्त शक्तियाँ मनुष्य को विवश कर जाती हैं तब व्यक्ति की रागात्मकता ही सांत्वना प्रदान करने में समर्थ होती है । "अन्धायुग" में असफल इतिहास की बात कही गयी है और "कनुप्रिया" में यही तथ्य भावाकुल तन्मयता के बीच

---

1. कनुप्रिया - भारती, पृ: 7.

उभरकर सामने आता है । "अन्धायुग" में बौद्धिक धरातल पर गहरे तर्क और विश्लेषण की दृष्टि से अन्धापन, प्रतिशोध, हिंसा और कुंठा आदि संदर्भ उभारे गये हैं और "कनुप्रिया" में कृष्ण के गहरे प्यार में डूबी राधा अनजाने ही इन संदर्भों को प्रश्नों के माध्यम से विचारणीय बना देती है ।

"कनुप्रिया" एक गीतिकाव्य है । इसमें कृष्ण के जीवन से संबन्धित कुछ मार्मिक प्रकरणों और महत्वपूर्ण प्रसंगों को चुनकर राधा के मुख से कहलाया गया है । यह काव्य पाँच खंडों में विभक्त है - पूर्वराग, मंजरीपरिणय, सृष्टिसंकल्प, इतिहास और समापन । ये विविध खण्ड इस बात की सूचना देते हैं कि कनुप्रिया की भावाकुल तन्मयता के ही विविध संदर्भ हैं और उन सभी में एक सूत्र अथ से इति तक गूँथता चलता है । कनुप्रिया कौशोर्य सुलभ मनःस्थितियों में जीती है । इसलिए वह विवेक से अधिक तन्मयता में सार्थकता खोजती है । वह जिस चरम तन्मयता के क्षण की तलाश में है उसमें समस्त ब्रह्म-अतीत, वर्तमान और भविष्य - सिमटकर पुंजीभूत हो गया है । पूर्वराग, मंजरीपरिणय और सृष्टि संकल्प में राधा पूरी ईमानदारी से सहज जीवन जीती है । वह अपनी कौशोर्य सुलभ भावनाओं को एक मुग्धा की तरह निवेदित करती चलती है । इतिहास और समापन खण्ड में महाभारत काल से जीवन के अंत तक शासक, कूटनीतिज्ञ और व्याख्याकार के रूप में कृष्ण के इतिहास निर्माण को कनुप्रिया की दृष्टि से देखने का कार्य किया गया है । यहाँ कनुप्रिया को अपने द्वारा जिये गये भावाकुल जीवन के प्रति पूरी सहमति नहीं है । वह उसपर प्रश्न चिह्न लगाती है । इसप्रकार एक ओर राधा की भावाकुल तन्मयता है तो दूसरी ओर अनजाने में उसके द्वारा उठाये गये प्रश्न हैं । भारती ने राधा की प्रणय भावना को एक वैचारिक पृष्ठभूमि भी प्रदान की है । इस वैचारिक पृष्ठभूमि के कारण "कनुप्रिया" युगीन संवेदना से संपृक्त हो गयी है । इसी से यह गाथा जितनी पौराणिक है उतनी ही आधुनिक भी । इसी कारण "कनुप्रिया" की राधा विद्यापति, सूर और हरिऔध आदि कवियों की राधा से भिन्न है ।

"कनुप्रिया" में अधिकतर राधा के मन का विश्लेषण किया गया है । फिर भी समूचे वातावरण की पृष्ठभूमि में कृष्ण का व्यक्तित्व व्याप्त है । राधा के

बिना कृष्ण का व्यक्तित्व अपूर्ण प्रमाणित करने का सफल प्रयास "कनुप्रिया" में है। "कनुप्रिया" प्रेम के सभी स्तरों और रूपों को स्पर्श करके चलती है। इसकी विशेषता यह है कि यह राधा-कृष्ण का प्रणय-व्यापार होते हुए भी संपूर्ण स्त्री-पुरुषों का प्रणय-व्यापार-सा लगता है। इसलिए "कनुप्रिया" में राधा-कृष्ण के पुराने प्रणय-प्रसंग की आवृत्ति मात्र नहीं है।

"कनुप्रिया" में संपूर्ण कथांश को तरल स्मृति का अंग बनाकर प्रस्तुत किया गया है। वर्णन-विवरण के स्थूल अंशों को इसमें कोई स्थान नहीं है। डॉ. विश्वंभर मानव के अनुसार "भारती के काव्य-ग्रन्थों में यही एक ऐसी कृति है जो भाव, विचार, कल्पना, टेकनीक सभी दृष्टियों से पूरी उतरी है और कनुप्रिया ही इनकी एक ऐसी रचना है जो इनके नाम को काव्य जगत् में बहुत दिनों तक जीवित रखेगी।"[1] सचमुच कनुप्रिया अन्धायुग के समान भारती की एक विशिष्ट कृति है।

देशान्तर

"देशान्तर" एक अनूदित काव्य संकलना है। इसमें यूरोप और अमेरिका के इक्कीस देशों के 113 कवियों की 161 कविताओं का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। ये कविताएँ आधुनिक युग के काव्य बोध को स्थापित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कवियों की ख्याति और प्रतिष्ठा की ओर ध्यान न देकर उनके युगबोध की ओर संकलनकर्ता ने दृष्टि दौडायी है। इसलिए देशान्तर में टी. एस. इलियट, बोरिस पास्तरनाक जैसे नोबेल पुरस्कार विजेताओं के साथ अल्पख्यात कवियों की कविताओं का भी अनुवाद प्रस्तुत है। फिर भी डॉ. भारती मानते हैं कि "यह संकलन समूचे आधुनिक काव्य का सर्वांग संपूर्ण प्रतिनिधित्व करता है यह मेरा दावा कतई नहीं है। यह केवल उसकी वैविध्य की बानगी प्रस्तुत करता है।"[2]

---

1. नयी कविता नये कवि - विश्वंभर मानव, पृ: 270.
2. देशान्तर - भारती, पृ: 7.

"देशान्तर" में भारती ने अपनी प्रकृति के अनुकूल समानधर्मी कृतियों का अनुवाद किया है । समानधर्मी कृतित्व कई भाषाओं में कई कवियों में और कई धाराओं में मिल सकता है । इसलिए "देशान्तर" में अनेक कवियों की अनेक कविताओं का अनुवाद पेश करने में कोई अनौचित्य नहीं है । भारती मानवमूल्यों को उजागर करनेवाला कवि है । देशान्तर में संकलित कविताओं के ढंग में भिन्नता होने पर भी ये कविताएँ मानवमूल्यों को प्रथम स्थान देती हैं । भारती का अनुवाद मौलिक रचना जैसी क्षमता रखता है । इसलिए "देशान्तर" सुन्दर और विश्वसनीय है । टी. एस. इलियट की "मारिना" का अनुवाद दृष्टव्य है -

"What seas what shores what granite islands
towards my timbers
And woodthrush calling through the fog
My daughter"

(Collected Poems 1990-1962
T.S.Eliot, p.116)

"कौन से समुद्र, कौन से तट, कौन से ग्रेनाइट के द्वीप
बहते आते हैं मेरे काष्ठ-यान की ओर
और कोहरे में गाता हुआ वनपाखी
मेरी आत्मजा ।"[1]

बोरिस पास्तरनाक की प्रातः काल (Day break) कविता की पंक्तियाँ देखिए -

"In me are people without names
Children, stay - at homes, trees
I am conquered by them all
And this is my only victory".

---

1. देशान्तर, पृः 116.

"मुझमें हैं लोग - अज्ञातनामा लोग -
बच्चे अपने घर में तमाम उम्र गुज़ार देनेवाले लोग, वृक्ष ।
मैं उन सबके द्वारा जीत लिया गया हूँ
यही मेरी एक मात्र जीत है ।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि भारती एक सफल एवं समर्थ अनुवादक है ।

कहानी

डॉ. धर्मवीर भारती सामाजिक यथार्थ को चित्रित करनेवाला कहानीकार है । उन्होंने कहानियाँ कम लिखी हैं । उनके दो मौलिक और एक अनूदित कहानी संकलन हैं । "चाँद और टूटे हुए लोग" और "बन्द गली का आखिरी मकान" संकलन में उनकी मौलिक रचनाएँ हैं । पहले संकलन की अपेक्षा दूसरे में गुणात्मक सुधार देखा जा सकता है । "आस्करवाइल्ड की कहानियाँ" शीर्षक संकलन में आस्करवाइल्ड की आठ कहानियों का अनुवाद है ।

चाँद और टूटे हुए लोग

"चाँद और टूटे हुए लोग" 1955 में प्रकाशित पहला कहानी संकलन है । इसमें पच्चीस कहानियाँ हैं । यह तीन खंडों में विभक्त है - 'चाँद और टूटे हुए लोग', 'भूखा ईश्वर', 'कलंकित उपासना' । "इस संग्रह में प्रथम कहानी से लेकर नवीनतम कहानी तक संगृहीत है । प्रथम खण्ड में वे सभी कहानियाँ हैं जो अभी तक किसी संग्रह में नहीं आयीं । द्वितीय खंड में वे कहानियाँ हैं जो "मुर्दों का गाँव" में संकलित हुई थीं । उन्हीं के साथ "भूखा ईश्वर कहानी भी जोड दी गयी है ।

---

1. देशान्तर, पृ: 439.

तृतीय खंड में आरंभिक कहानियाँ और कल्पनापरक कथाएँ हैं ।"[1] भारती की पहली कथा-कृति 'तारा और किरण' है । इसकी रचना उनकी एम.ए. की पढाई के समय हुई थी । इन कहानियों में भारती ने जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन किया है । इनमें अधिकांश कहानियाँ कस्बाई मनोवृत्ति की हैं और समाज के उपेक्षित वर्ग को उभारने का प्रयास किया गया है ।

"चाँद और टूटे हुए लोग" के प्रथम खण्ड में सात कहानियाँ हैं - 'हरिनाकुस और उसका बेटा,' 'कुलटा,' 'मरीज नंबर सात,' 'धुआँ,' 'युवराज,' 'अगला अवतार,' 'चाँद और टूटे हुए लोग'। इन में कस्बाई वातावरण और उसकी विविध दशाओं का चित्रण है । दूसरा खण्ड है 'भूखा ईश्वर' । इसमें नौ कहानियाँ हैं - 'भूखा ईश्वर,' 'मुर्दों का गाँव,' 'एक बच्ची की कीमत,' 'आदमी का गोश्त,' 'बीमारियाँ,' 'कफन-चोर,' 'एक पत्र,' 'हिन्दू या मुसलमान,' 'कमल और मुर्दे'। ये कहानियाँ सन् 1943 के बंगाल के अकाल को रेखांकित करती हैं और साथ ही भारतीयों के प्रति अंग्रेज़ों के घिनौने कृत्यों और विचारों को भी स्पष्ट करती हैं । संकलन के तृतीय खण्ड में भी नौ कहानियाँ हैं - "पूजा", 'स्वप्नश्री' और श्रीरेखा', शिंजिनी', 'कला एक मृत्युचिह्न' 'नारी और निर्वाण', तारा और किरण', 'कुबेर', मंजिल' और 'कलंकित उपासना' । ये कहानियाँ अधिकतर परियों से संबन्धित हैं । इसमें काल्पनिकता और रोमानी भावबोध की प्रधानता है ।

"चाँद और टूटे हुए लोग" में अभिव्यंजना-पक्ष की ओर भारती ने अधिक ध्यान नहीं दिया है । उनकी दृष्टि अधिकतर समाज की कुरीतियों का चित्रण करने और उन्हें दूर करके एक आदर्श समाज की स्थापना करने में तत्पर दिखाई देती है । उनमें न कोई चमत्कार होता है और न सायास बौद्धिकता । काव्यात्मकता अवश्य इनके कथनों को चारुत्व प्रदान करती है ।

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग - धर्मवीर भारती, भूमिका ।

बन्द गली का आखिरी मकान

सन् 1969 में प्रकाशित भारती का अन्तिम कहानी संग्रह है बन्द गली का आखिरी मकान । इसमें सन् 1955 से लेकर सन् 1969 तक की चार कहानियाँ - 'गुलकी बन्नो', 'सावित्री नंबर दो', 'यह मेरे लिए नहीं' 'बन्द गली का आखिरी मकान'- संकलित हैं । ये कहानियाँ "चाँद और टूटे हुए लोग" संकलन की अपेक्षा अधिक कला चेतना से संपन्न हैं । इनमें भारती की कहानी-कला ज्यादा निखर उठी है । इसीलिए हिन्दी की नई कहानी के अंतर्गत इनकी अधिक चर्च भी हुई है । इनमें भारती ने अपने परिवेश का समग्र निरूपण किया है ।

'गुलकी बन्नो' प्रस्तुत संकलन की प्रथम कहानी है । इसमें निम्नश्रेणी की अकेली, असहाय और संपर्कों केलिए लालायित गुलकी की करुण व्यथा को कहानीकार ने अपनी पूरी संवेदना प्रदान की है । गुलकी शरीर से अपंग होने मात्र के कारण अपने ससुराल से ठुकराई जाती है, बच्चे उसे चिढाकर आनंद लेते हैं और पडोसी उसे घृणित दृष्टि से देखते हैं । ऐसी विषम परिस्थिति में भी गुलकी जिन्दगी से जोंक की तरह चिपटी रहती है । वह अपने पति की दूसरी स्त्री और उसके बच्चे के पालन-पोषण की अनिच्छित वृत्ति के लिए भी तैयार हो जाती है ।

संकलन की दूसरी कहानी "सावित्री नम्बर दो" में लंबी बीमारी से ग्रस्त सावित्री नाम की पढी-लिखी लडकी की जटिल मानसिकता को उद्घाटित किया गया है । सावित्री के संघर्ष को कहानीकार ने सत्यवान-सावित्री की पौराणिक कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है । संग्रह की तीसरी कहानी है 'यह मेरे लिए नहीं'। इसमें पीढी संघर्ष का एक नया आयाम सहज रूप में चित्रित किया गया है । पितृहीन दीनू अपनी माँ के बर्ताव से रूठकर उसे छोड चला जाता है । दीनू के चले जाने पर माँ का तेजस्वी जिद्दी रूप निरीहता में परिवर्तित हो जाता है । इस परिवर्तन के लिए

दीनू अपने को जिम्मेदार महसूस करता है और वह ग्लानि बोध से पीडित होने लगता है । पीढी-संघर्ष की इस कहानी की विशेषता यह है कि इसमें कहानीकार ने पुराने के प्रति या नये के प्रति कोई मोह नहीं दिखाया है, बदले दोनों की पराजय दिखायी है । संकलन की चौथी और अंतिम कहानी है 'बन्द गली का आखिरी मकान' । इसके आधार पर संकलन का नामकरण किया गया है । इसमें कायस्थ मुंशीजी और ब्राह्मण बिरजा के संबन्धों के विभिन्न पहुओं का बडे विस्तार से वर्णन है । पति द्वारा परित्यक्त बिरजा को उसके दो पुत्रों के साथ मुंशीजी ने आश्रय दिया । मुंशीजी और बिरजा दोनों के संबंधी इसपर आक्रोश, घृणा और तिरस्कार प्रकट करते हैं । बिरजा के बडे पुत्र राधोराम से मुंशीजी बहुत प्यार करता है । लेकिन छोटा पुत्र हरिया बडा विद्रोही है । विडंबना यह है कि मुंशीजी की मृत्यु के समय बिरजा और राधोराम दोनों उनके पास नहीं होते , आवारा हरिया बेटा बनकर उनकी सेवा करता है । इसप्रकार "यह कहानी संबन्धों के असंबन्ध और असंबन्धों के कितने ही स्तरों को मूर्त कर एक ट्रेजडी का प्रभाव उभारती है ।"[1]

संक्षेप में "बन्द गली का आखिरी मकान" संकलन की चारों कहानियाँ आम लोगों के अभावों और पीडाओं की कहानियाँ हैं । चाहे पति द्वारा छोड दी गयी कुबडी गुलकी हो या लंबी बीमारी की शिकार सावित्री, पुराने विचारों के खिलाफ संघर्ष करता दीनू या बुढापे में अकेलेपन को भरने की इच्छा रखनेवाला मुंशीजी, सभी सामान्य वर्ग के लोग हैं । इन सभी कहानियों में अनुभव की सघनता है । इनमें व्यक्ति और उनके परिवेश का सहज, कलात्मक एवं जीवंत चित्रण हुआ है ।

आस्कर वाइल्ड की कहानियों का अनुवाद

धर्मवीर भारती के प्रिय लेखकों में से एक हैं आस्कर वाइल्ड । वे अंग्रेज़ी गद्य के अनुपम शैलीकार के रूप में विख्यात हैं । उनकी रचनाओं की शिल्प-सज्जा,

---

1. हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान - रामदरश मिश्र, पृ: 131.

शब्द-चयन, चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति और भाषा प्रवाह अनुपम हैं । इसीलिए अंग्रेज़ी साहित्य में आस्कर वाइल्ड का महत्वपूर्ण स्थान है । उनकी कहानियाँ अपने ढंग की अनूठी हैं । भारती ने उनकी आठ कहानियों का अनुवाद प्रस्तुत किया है । 'शिशु-देवता', 'अभिषेक', तारा-शिशु, 'मूर्ति और मनुष्य', 'निःस्वार्थ मित्रता', 'इन्फैण्टा का जन्म दिन', 'एक लाल गुलाब की कीमत', 'नाविक और उसका अन्तःकरण' ये हैं आठ कहानियाँ । ये सभी कहानियाँ भारती की प्रकृति के अनुकूल हैं । इनमें रोमांस या काल्पनिकता की प्रधानता है । प्रथम कहानी 'शिशु-देवता' में एक जादूगर और उसके बगीचे के ज़रिए बच्चों को देवता के स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है । जादूगर ने बच्चों को अपने बगीचे में प्रवेश करने से मना किया था । इसलिए वसंत उसके बगीचे से दूर रहा । लेकिन एक दिन अचानक उसके मन में परिवर्तन आता है और बगीचे का द्वार उनके लिए खोल देता है । बगीचा तब फूलों से भर जाता है और जादूगर को ऐसा लगता है कि "मेरे बाग में इतने फूल हैं मगर ये जिन्दा फूल सबसे कोमल हैं ।"[1] इस कहानी में काल्पनिक शैली में शिशुओं को देवता के रूप में चित्रित किया गया है । इसप्रकार 'तारा-शिशु' तथा 'मूर्ति और मनुष्य' आदि कहानियों में सेवा, दान, त्याग, स्नेह आदि सद्गुणों का महत्व स्थापित किया गया है । 'निःस्वार्थ मित्रता' एक व्यंग्य प्रधान कहानी है । इसमें निःस्वार्थ के नाम स्वार्थपरक वृत्तियों पर लगे हुए लोगों पर प्रहार किया गया है । एक ईमानदार आदमी है हैन्स । ह्यूमिलर मित्रता के नाम पर उसका शोषण करता रहता है । अंत में मिलर की कूटनीति से हैन्स की मृत्यु हो जाती है । हैन्स और मिलर की यह कथा एक जलपक्षी और छछूँदर के माध्यम से प्रस्तुत की गयी है । इसमें यथार्थवादी साहित्यकारों की खिल्ली उडाते हुए बताया है कि "साहित्य में तो हर कहानीकार पहले अन्त का वर्णन करता है । फिर आरंभ का विस्तार करता है और अंत में मध्य पर लाकर कहानी समाप्त कर देता है । यही यथार्थवादी कला है ।"[2] 'इन्फैण्टा का जन्म दिन',

---

1. आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ - धर्मवीर भारती, पृः 18.
2. वही - पृः 78.

'एक लाल गुलाब की कीमत' , 'नाविक और उसका अन्तःकरण' आदि कहानियाँ नैतिक मूल्यों के महत्व को स्पष्ट करती हैं । ये कहानियाँ राजकुमारी, जलपरी, बुलबुल आदि से संबन्धित हैं । अतः जीवन से इनका अधिक संबन्ध नहीं है । कहानी में नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन करते समय उसके अनुरूप पृष्ठभूमि की भी ज़रूरत होती है । नहीं तो कहानी कोरी काल्पनिक ही रहेगी । प्रस्तुत संकलन की कहानियाँ अधिकतर काल्पनिक हैं । यहाँ हमारा उद्देश्य आस्कर वाइल्ड की कहानियों का गुण-दोष विवेचन नहीं है । हमारा संबन्ध धर्मवीर भारती से है और उन्होंने आस्कर वाइल्ड की कुछ कहानियों का अनुवाद मात्र प्रस्तुत किया है । अतः अनुवाद की दृष्टि से हम प्रस्तुत संकलन को देखते हैं और स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि भारती ने अपनी प्रकृति के अनुकूल कहानियों का अनुवाद किया है । भारती का प्रथम कहानी-संकलन भी काल्पनिक है । प्रस्तुत संकलन की सभी कहानियों का अनुवाद सुन्दर हुआ है । "आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ" यह स्पष्ट करती है कि धर्मवीर भारती अनुवाद-कला में भी समर्थ हैं ।

उपन्यास

गुनाहों का देवता

डॉ. धर्मवीर भारती के दो उपन्यास हैं - (1) "गुनाहों का देवता" (2) "सूरज का सातवाँ घोडा" । इनमें "गुनाहों का देवता" सन् 49 में प्रकाशित हुआ । यह एक प्रेम-कथा पर आधारित उपन्यास है । भावुकता और वासना में उलझकर व्यक्तित्व किसप्रकार कुंठित हो जाता है, इसको चन्दर के माध्यम से भारती ने चित्रित किया है । आज के शिक्षित मध्यवर्गीय समाज और उसके बनते-टूटते आदर्शों का स्पष्ट स्वरूप उपन्यासकार ने दिखाया है । उपन्यास की कथा एक प्रतिभावान छात्र चन्द्रकुमार कपूर को घेरकर चलती है । रिसर्च स्कालर चन्दर पर डॉ. शुक्ला का पिता का सा स्नेह है । उसकी कृपा से चन्दर जीवन के कई शिखरों पर चढ जाता है । डॉ. शुक्ला की

एकमात्र पुत्री सुधा और चन्दर के बीच प्रेम पनपता रहा । लेकिन दोनों ने यह प्रेम गुप्त रखा और अंत तक उसमें पंकिलता आने नहीं दी । लेकिन मानसिक जगत् पर उसका प्रभाव पडकर ही रहा । इसके परिणामस्वरूप दोनों का व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है । इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण है उपन्यास में ।

सामाजिक नैतिकता एवं मानसिक संयम के कारण प्रेमी-जन आत्मपीडक अन्तर्द्वन्द्व का अनुभव करने लगते हैं जिससे एक घुटनशील वातावरण जन्म लेता है । यह कुंठा का कारण बनता है । कुंठा व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित बनाती है । चन्दर के व्यक्तित्व के संबन्ध में यह कहाँ तक सार्थक है, इसको भारती ने एक अनुभोक्ता के रूप में पेश किया है । डॉ. प्रेमप्रकाश गौतम लिखते हैं - "वास्तव में चन्दर भारती से बहुत कुछ अभिन्न है । चन्दर की कथा द्वारा भारती ने अपनी ही आदर्शमयी भावुकता और युवाकालीन जीवन-दृष्टि को अभिव्यक्त किया है ।"[1]

अवरोध के बिना प्रेम का प्रवाह प्रायः होता ही नहीं । यहाँ, सुधा का विवाह कैलाश नामक दूसरे पुरुष से हो जाता है । चन्दर डॉ. शुक्ला का आभारी होने के कारण सुधा के प्रति अपना प्रेम प्रकट भी नहीं कर सका । इसके परिणामस्वरूप चन्दर में मानवसुलभ दुर्बलताओं का समावेश हो जाता है और वह गुनाहों का देवता बन जाता है । अब चन्दर देहीधर्म में ही जीवन की सफलता और सार्थकता देखनेवाली पम्मी के आकर्षण में फँस जाता है । सुधा और चन्दर के प्रेम में आदर्श और नैतिकता अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गयी तो पम्मी और चन्दर का संबन्ध इसका ठीक विपरीत रहा । पम्मी के साहचर्य से चन्दर ऐसा मानने लगा कि स्त्री-पुरुष का प्रेम शारीरिक समर्पण को छोडकर और कुछ नहीं है । लेकिन यह संबंध अधिक काल तक स्थायी नहीं रहा । सुधा और उसकी बुआ की लडकी विनती के प्रभाव से चन्दर ने पम्मी का संबंध छोड दिया । अन्त में, गर्भपात से सुधा की मृत्यु हो जाती है और चन्दर सुधा की इच्छा की पूर्ति के लिए विनती से विवाह करता है ।

---

1. धर्मवीर भारती - सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 92.

"गुनाहों का देवता" का कथानक तीन भागों में विभाजित है । तीनों भागों की समाप्ति किसी न किसी चरम सीमा पर होती है । प्रथम खण्ड में चन्दर और सुधा के संबन्ध का वर्णन है । सुधा की बिदाई के साथ वह समाप्त होता है । दूसरा खण्ड पम्मी प्रसंग का है । इसके समाप्त होने पर पम्मी भी उपन्यास से तिरोहित होती है । तीसरा खण्ड सुधा के वैवाहिक जीवन से संबन्धित है । सुधा की मृत्यु के साथ उसका भी अंत होता है । इन तीनों भागों के अतिरिक्त उपन्यास के अंत में एक उपसंहार भी है । इन तीनों खण्डों द्वारा उपन्यासकार मानवजीवन के एक सीमित क्षेत्र को मनोविज्ञान के सहारे सरस एवं चुस्त चित्रित किया है । उपन्यास में सर्वत्र भाषा का जादू विद्यमान है । यह तो दूसरी बात है कि "गुनाहों का देवता" प्रौढ मस्तिष्कवाले आदमी को आह्लादित नहीं करेंगे । श्री राजेन्द्रयादव की दृष्टि में "इस उपन्यास में चार सौ पन्नों में चार पन्नों की बात कही गयी है ।"[1] लेकिन डॉ. सुरेश सिन्हा और डॉ. त्रिभुवनसिंह ने इसमें चित्रित शिक्षित मध्यवर्गीय समाज के आदर्शात्मक जीवन के यथार्थ चित्रण की प्रशंसा की है । जो भी हो आम जनता को खास करके युवा वर्ग को आकृष्ट करने में "गुनाहों का देवता" समर्थ है ।

सूरज का सातवाँ घोडा

"सूरज का सातवाँ घोडा" डॉ. भारती का दूसरा उपन्यास है । यह उपन्यास "गुनाहों का देवता" से सभी दृष्टियों से भिन्न हैं । "गुनाहों का देवता" व्यापक सत्य से निरपेक्ष और व्यक्तिवादी है तो "सूरज का सातवाँ घोडा" ठीक उसके विपरीत है । इसमें निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन यथार्थ के धरातल पर किया गया है । आर्थिक और सामाजिक असंगतियों एवं परवशताओं को विविध प्रेम-कथाओं के माध्यम से भारती ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है । भारती निवेदन में लिखते हैं - "कुछ छोटे से चौखटे में काफी लंबा घटना-क्रम और काफी विस्तृत

हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग - सं. अरविन्द गुर्टु, पृ: 225.

क्षेत्र का चित्रण करने की विवशता के कारण यह ढंग अपनाना पडा है ।"[1] ये विविध कथाएँ सुनानेवाला पात्र माणिकमुल्ला है माणिकमुल्ला और भारती के व्यक्तित्व में काफी समानताएँ दर्शनीय हैं ।

उपन्यास में वर्णित पहली कहानी तन्ना और जमुना के प्रेम की है । दोनों मध्यवर्ग के हैं । पर जाति-प्रथा और दहेज दोनों के विवाह में बाधक होते हैं । जमुना का विवाह एक वृद्ध तिहाजू ज़मींदार से होता है । दूसरी कहानी पहली का उत्तरार्द्ध है जिसमें जमुना के चारित्रिक पतन और उसका कारण बताया है । पति की वृद्धावस्थ ही जमुना के नैतिक पतन का कारण है । तीसरी कहानी में तन्ना और जमुना की मानसिकता का वर्णन है । दोनों रूढियों और परंपराओं के विरुद्ध विद्रोह करना चाहकर भी नहीं कर सकते । क्योंकि दोनों 'परिष्कृत कायरता' से ग्रस्त हैं । चौथी एवं पाँचवीं कहानी माणिकमुल्ला और लिली एवं सत्ती के बीच के प्रेम-संबन्धों की है । छठी कहानी इन प्रेम-संबन्धों से उत्पन्न मानसिक स्थिति का उद्घाटन करती है । समाज-भीरुता के कारण माणिकमुल्ला अपने संपर्क में आयी किसी भी युवती को नहीं स्वीकार करता है । इसके परिणाम स्वरूप जहाँ एक ओर इन लडकियों की स्थिति अत्यंत दयनीय बन जाती है तो दूसरी ओर स्वयं माणिकमुल्ला भी सामाजिक दायित्वों से बचकर आत्मकेन्द्रित एवं व्यक्तिवादी बन जाता है । सातवीं कहानी इन सभी कहानियों का केन्द्रीकरण है । इसमें भविष्य के प्रति आस्थामय स्वर मुखरित हुआ है । अतीत और वर्तमान के छः घोडे आहत और दुर्बल हैं । क्योंकि उन्हें रूढियों एवं असंगतियों से भरी जीवन गलियों में चलना पडा है । "अब बचा है सिर्फ एक घोडा जिसके पंख अब भी साबित है, जो सीना ताने, गर्दन उठाये आगे चल रहा है । वह घोडा है भविष्य का घोडा , तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हे निष्पाप बच्चों का घोडा जिनकी ज़िन्दगी ज्यादा अमन-चैन की होगी, ज्यादा पवित्रता की होगी, उसमें ज्यादा प्रकाश होगा, ज्यादा अमृत ।"[2]

---

1. सूरज का सातवाँ घोडा - धर्मवीर भारती, पृः 8.
2. वही - पृः 113-114.

इसप्रकार सात कथाओं के माध्यम से उपन्यासकार ने समाज की रूढिप्रियता और थोथी मर्यादाशीलता की खाल उधेडने का प्रयास किया है । उपन्यासकार ने समाज की आलोचना करने के साथ आलोकमयी भविष्य की ओर भी संकेत किया है । यह आस्था का स्वर भारती के व्यक्तित्व का निदर्शन है । इसप्रकार आस्था का स्वर बुलन्द करने में भारती को कहीं भी उपदेशक का बाना ओढना नहीं पडा है । इसीलिए यह एक श्रेष्ठ उपन्यास बन गया है ।

"सूरज का सातवाँ घोडा" अपने शिल्प-विधान की नवीनता से काफी प्रसिद्ध हुआ । विष्णुशर्मा द्वारा प्रणीत पंचतंत्र की अनेक कहानियों में एक कहानी की प्रणाली को बिलकुल अपना बनाकर नये ढंग से उपन्यास का सृजन किया गया है । प्रत्येक कहानी में घटना का पूर्वसंकेत दिया है और फिर उसका विस्तार भी । इस सांकेतिकता ने उपन्यास का सौन्दर्य बढाया है कथानक में आरोह-अवरोह और संघर्ष की स्थिति विद्यमान है । भाषा की पात्रानुकूलता सोने में सुगन्धी का कार्य करती है । इसप्रकार सभी दृष्टियों से सूरज का सातवाँ घोडा एक सफल उपन्यास है ।

एकांकी-नाटक

नदी प्यासी थी

डॉ. भारती के एकांकियों का संग्रह है "नदी प्यासी थी"। यह संकलन सन् 1954 में प्रकाशित हुआ । इसमें पाँच एकांकी संग्रहित हैं - (1) नदी प्यासी थी, (2) नीली झील (3) आवाज़ का नीलाम (4) संगमरमर पर एक रात (5) सृष्टि का आखिरी आदमी । इनमें प्रथम एकांकी के नाम पर संकलन का नामकरण हुआ है । संकलन के पहले चार एकांकी रंगमंच के अनुकूल हैं और अंतिम रेडियो रूपक है । एकांकी रंगमंच के लिए हो या रेडियो के लिए सभी में भारती का व्यक्तित्व झलकता है ।

"आस्था और आशावादिता भारती के साहित्य के महत्वपूर्ण तत्व रहे हैं जिनको हम इन पाँच एकांकियों में भी स्पष्ट रूप से देख सकते हैं ।"[1]

इकतीस पृष्ठीय 'नदी प्यासी थी' एकांकी में असफल रोमांटिक प्रेम और तज्जन्य पीडा का चित्रण है । दूसरा एकांकी 'नीली झील' में नीली झील देश की आदर्श-व्यवस्था का उल्लेख करके अतीत और वर्तमान युग के भेदभाव स्पष्ट किये गये हैं । तीसरा एकांकी "आवाज़ का नीलाम" पत्रकारिता और पत्रकार के जीवन से संबन्धित है । इसमें लेखक ने पूँजीवाद का पर्दाफाश करने का प्रयास किया है । 'संगमरमर पर एक रात' एक ऐतिहासिक एकांकी है । इसका प्रतिपाद्य जहाँगीर और नूरजहाँ का प्रणय है । संकलन का अंतिम एकांकी 'सृष्टि का आखिरी आदमी' रेडियो के लिए लिखा गया है । इसमें अनिश्चित भविष्य को वर्तमान के रूप में पेश किया गया है और यांत्रिक सभ्यता से टूटते जा रहे जीवन पर प्रकाश डाला गया है ।

संकलन के किसी भी एकांकी में पात्रों की अधिकता नहीं है । भारती के सभी पात्रों की सबसे बडी विशेषता है रोमानियत । प्रस्तुत संकलन के पात्र भी उससे मुक्त नहीं है । प्रथम एकांकी 'नदी प्यासी थी' के राजेश के समान एक राजेश भारती की कहानी 'चाँद और टूटे हुए लोग' का प्रमुख पात्र है । प्रस्तुत संकलन में चित्रित पात्रों का संवाद बडा प्रभावात्मक है । कहीं कहीं संवाद लंबा हो गया है । इनकी भाषा भारती की प्रकृति के अनुकूल सरल एवं काव्यात्मक है । अनेक अन्य भाषा-शब्दों का प्रयोग इनमें देख सकते हैं । 'सृष्टि का आखिरी आदमी' रेडियो रूपक होने से ध्वनि प्रधान है । यह मुक्तछंद कविता के रूप में प्रणीत है । इसमें प्रतीकों का प्रयोग बडी कुशलता से किया गया है । रंग मंचीयता की दृष्टि से 'नीली झील' उतना सफल नहीं है जितना कि अन्य एकांकी । क्योंकि 'नीली झील' ऐंद्रजालिक कल्पना से समन्वित है ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि "नदी प्यासी थी" संकलन में पर्याप्त विविधता होने पर भी वह भारती के व्यक्तित्व के अनुरूप है ।

---

1. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार - डॉ. पुष्पा वास्कर, पृ: 242.

निबन्ध

कविता, कहानी, उपन्यास और एकांकी नाटक के अतिरिक्त निबन्ध और गद्य की अन्य विधाओं - यात्राविवरण, डायरी, पत्र, शब्दचित्र, संस्मरण, व्यंग्य - में भी भारती ने अपनी लेखनी की कुशलता दिखायी है । ये कृतियाँ "ठेले पर हिमालय" "पश्यन्ती" और "कहनी-अनकहनी" में संकलित हैं । यहाँ उनके स्फुट निबन्धों का विवेचन करेंगे ।

ठेले पर हिमालय

"ठेले पर हिमालय" भारती की स्फुट गद्य-कृतियों का एक संकलन है । यह उनका पहला निबन्ध संग्रह है जो सन् 1958 ई. में प्रकाशित हुआ था । इसमें यात्रा-विवरण, डायरी, पत्र, शब्द-चित्र, साहित्यिक डायरी, संस्मरण, कैरीकेचर, व्यंग्य, रूपक, श्रद्धांजली और आत्म-व्यंग्य की कुछ चुनी हुई कृतियाँ सम्मिलित की गयी हैं । ये रचनाएँ भारती की संवेदनशीलता और चिंतनपूर्ण सौन्दर्यदृष्टि की परिचायक हैं । डॉ. पुष्पा वास्कर के अनुसार "भारती के संवेदनशील, भावुक, स्वच्छन्दताप्रेमी, सुन्दरता के अन्वेषी स्वभाव का दर्शन हम ठेले पर हिमालय में स्थान-स्थान पर पाते हैं ।"[1]

"ठेले पर हिमालय" में दो यात्रा-विवरण हैं - 'ठेले पर हिमालय' और 'कूर्मांचल में कुछ दिन' । 'ठेले पर हिमालय' भारती की कौसानी-यात्रा का विवरण है । विभिन्न शीर्षकों से संकलित डायरी भारती के व्यक्तित्व अनावृत करती है । संकलन के तीन पत्रों - 'फूल-पाती', 'लाल कनेट का फूल और 'लालटेनवाली नाव' और 'डेड सी के तट पर' - में लेखक जीवन, मृत्यु, प्रेम, साहित्य-साधना

---

1. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार - डॉ. पुष्पा वास्कर, पृ: 258.

इत्यादि के विविध पक्षों पर विचार करते हैं । इन पत्रों में फूलों की विशेष व्याख्या हैं । साहित्यिक डायरी में समसामयिक समस्याओं का भी प्रतिपादन किया गया है । 'कैक्टस' एक ऐसा निबन्ध है । भारती ने इसमें कैक्टस को युवा-पीढी की मानसिकता का प्रतीक माना है जो तमाम विरोधों के बावजूद अपनी रस-क्षमता को जिलाये रखती है । इसमें आधुनिक साहित्य के संबन्ध में भारती लिखते हैं - "जब आधुनिक साहित्य-चेतना अतीत की प्राणहीन रूढियों और सामन्ती विलासजन्य सौन्दर्य-दृष्टि की संकीर्णता को त्याग कर विराट् जीवन के अनगढ आकर्षण को आत्मसात् करने के लिए बढी तो उसकी अनिवार्य परिणति उस नये सौन्दर्य-बोध में होनी थी जो आज नयी कविता में, नये कथा-साहित्य में नये समीक्षा-सिद्धांतों में बार-बार अगणित रूप में प्रकट हो रहा है ।"[1] भारती ने विजयदेवनारायण साही, सुमित्रानंदन पंत, डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. रघुवंश, गोपीकृष्ण गोपेश, कुमारी कृष्णवर्मा, उमावर्मा और डॉ. हरदेव बाहरी आदि से मिलकर स्व. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रख्यात कहानी 'उसने कहा था' रंगमंच पर प्रस्तुत की है । ऐसा करते समय उन्हें किन किन मुसीबतों का सामना करना पडा, इसका उल्लेख हमें 'उसने कहा था एक संस्मरण' शीर्षक लेख में मिलता है । इसके साथ रंगमंच संबन्धी अपना विचार भी इस संस्मरण में उन्होंने प्रस्तुत किया है । कैरीकेचर 'रामजी की चींटी रामजी का शेर' में नारी की दरियादिली पर तीखा व्यंग्य किया गया है । "ऊपर से यह भारतीय नारी ऊँची एडी की सैंडिल पहन ले, नाइलन की साडियाँ, पहन ले, तन के चले, ऊँचा जूडा बनाये, सरोटे से मोटर चलाये, अंग्रेज़ी में धोबी का हिसाब लिखे, पर अन्दर से यह हमारी वही पुरानी बचपनवाली ताई है - "रामजी की चींटी, रामजी की राव" ! दरियादिली, वही दरियादिली ।"[2] संकलन में दस व्यंग्य रचनाएँ हैं, जो बहुत रोचक हैं । अंत में 'अपनी ही भौंत पर' शीर्षक आत्मव्यंग्य में भारती ने अपने लेख का स्वयं विश्लेषण किया है ।

---

1. ठेले पर हिमालय - भारती, पृ: 67.
2. वही - पृ: 107.

"ठेले पर हिमालय" में संकलित निबन्धों के संबन्ध में ओमप्रकाश भाटिया अराज ने लिखा है "प्रत्येक विषय या विधा को भारती की भावना अपने रंग में रंग देती है। चित्र उभरते हैं, कोलाहल होता है, चित्र तिरोहित हो जाते है, कोलाहल शून्य में विलीन हो जाता है, शेष रह जाता है केवल भारती-माधुर्य, स्नेह, भावना और सुगंधियों में अमूर्त होकर भी मूर्त-सा विद्यमान।"[1] कुलमिलाकर हम कह सकते हैं कि विविध शैलियों में लिखे गये इन निबन्धों में भारती का व्यक्तित्व उभर आया है।

पश्यन्ती

सन् 1969 ई. में प्रकाशित भारती का निबन्ध संग्रह है "पश्यन्ती"। सत्रह निबन्धों के इस संकलन को 'आत्मकथ्य', 'व्यक्तित्व और कृतित्व', 'सर्वथा निजी 'पश्यन्ती इतिहास, 'सर्वेक्षण, 'युगबोध', 'चिकनी सतहें बहते आन्दोलन' जैसे सात उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है। इनमें लेखक ने विविध समस्याओं, जैसे भाषा संबन्धी, साहित्य संबन्धी और राष्ट्रीयता से संबन्धित, का विश्लेषण किया है।

'आत्मकथ्य' शीर्षक के अन्तर्गत दो निबन्ध हैं - 'नवलेखन माध्यम में (कुछ स्नैपशॉट्स)' और 'एक घृणा अनेक आयाम'। भारती के ही शब्दों में इनमें "मैं ने अमुक कृति क्यों लिखी? कब लिखी? उसके द्वारा नवलेखन का कैन-सा पक्ष उभरा, क्या उसने कोई मान स्थापित किये? ये सवाल दरपेश हैं।"[2] व्यक्तित्व और कृतित्व शीर्षक के अन्तर्गत आनेवाले तीन निबन्धों में प्रथम 'जलौघमग्ना सचराचरा धरा' तो हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास का विश्लेषण है। दूसरा निबन्ध 'मध्यवर्ग का सैलाब और बूढा मछेरा' अमृतलाल नागर की रचना 'अमृत और विष' की समीक्षा है और तीसरा "वह एक कहानी - और उसके अनेक परिशिष्ट" "मनुष्य की क्षुद्रताओं, कमज़ोरियों, असंगतियों, लोभ, लालसा और आवेश की वृत्तियों का बहुत खुला और

---

1. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 85.
2. पश्यन्ती - भारती, पृ: 3.

साहसपूर्ण चित्रण"[1] करनेवाले कहानीकार मोपासाँ की कहानी 'धागे का टुकडा' को पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है । इन निबन्धों में भारती एक समीक्षक से भी अधिक एक सहृदय पाठक के रूप में हमारे सामने आते हैं । क्योंकि "बाणभट्ट की आत्मकथा" जैसी कृतियों की समीक्षा करते समय भारती द्विवेदीजी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने में व्यग्र है । लेकिन यह तो भारती के व्यक्तित्व की ऊँचाई का निदर्शन है कि हिन्दी के समर्थक और रोमानी ~~का निदर्शन है कि हिन्दी के समर्थक और रोमानी~~ साहित्यकार होने के बावजूद मोपासाँ जैसे यथार्थवादी लेखक को भी वे मान्यता देते हैं । "पश्यन्ती" के 'आत्मकथ्य' उपशीर्षक के अन्तर्गत आनेवाले निबन्धों के संबन्ध में धनंजय वर्मा का कथन है कि "नवलेखन के संबन्ध में भी भारती का चिन्तन (पश्यन्ती) केवल कुछ परिस्थितियों को स्वीकार करके चलता है, उनके भीतर से उभरनेवाले संबन्धों को, उन संबन्धों के आर्थिक और भौतिक आधार और उसकी द्वन्द्वात्मकता को नज़रअन्दाज़ कर जाता है । फिर भी पश्यन्ती का आत्मकथ्य भारती के रचना-संसार की परिधिरेखा को स्पष्ट करने के लिहाज से महत्वपूर्ण है ।"[2] 'शुक्रतारेवाली एक शाम' कीट्स की उस कविता से संबन्धित है जिसमें उसने एक जगमगाते तारे को अपनी प्रेयसी मानकर अपने मन की विवशताओं को प्रकड किया था । 'एक खत' शीर्षक निबन्ध दार्शनिक स्तर का है । उदासी के क्षणों में अपने किसी निकट व्यक्ति को इस पत्र में लेखक "स्व" के अन्वेषण की चर्चा करता है । लेकिन इसकी शैली तो स्वच्छन्द है । 'रत्नाकर शान्ति का सान्ध्य चिन्तन' ऐतिहासिक निबन्ध है । इस निबन्ध में भारतीय इतिहास के आठवीं से बारहवीं सदी तक के सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है । इसका स्वरूप तो एक कथा का है । इसमें शान्ति नामक एक सिद्ध की कथा कही गयी है ।

"पश्यन्ती" का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंश 'सर्वेक्षण', 'युगबोध' और 'चिकनी सतहें बहते आन्दोलन' हैं । धनंजयवर्मा के अनुसार "उनमें भारती के काफी चर्चित और विवादास्पद लेख शामिल हैं । भारतीय साहित्य-जगत् में हिन्दी

---

1. पश्यन्ती - भारती, पृ: 37.
2. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 65.

लेखक की स्थिति का जायजा हो या "चीनी आक्रमण के तुरंत पूर्व का भारत" का लेखा-जोखा हो अथवा भाषा का प्रश्न और कुछ बुद्धिजीवियों का रुख का सवाल हो या एशियायी आधुनिकता का संदर्भ हो - भारती की कोशिश इन सब में मूल्यपरक विवेचन की है और इधर उनमें एक संतुलन आया है ।"[1] एशियायी आधुनिकता की बाबत कहते समय आधुनिक जीवन और उससे उद्भूत आधुनिक साहित्य की चर्चा करते हुए भारती का कथन सरासर ठीक है । उनकी राय में "कुंठा साहित्य के क्षेत्र में कोई वर्जित वस्तु है ऐसी तो बात वही कह सकेगा जो सृजन-प्रक्रिया और सृजन की मनोभूमि से बिलकुल अपरिचित हो, लेकिन यह भी बिलकुल सच है कि किसी भी कुंठा का गहन से गहन अनुभव करने के बाद जब कलाकार उसका अतिक्रमण करने में समर्थ हो जाता है तभी जीवन्त साहित्य की रचना हो पाती है ।"[2] 'तलाश ईश्वर की बजरिये अफीम' और 'अराजनीति की राजनीति' "पश्यन्ती" के अन्तिम दो निबन्ध हैं जिनमें आधुनिकता के नाम पर पूँजीवादी देशों में पनपती मूल्यहीनता की उन्होंने कटु आलोचना की है ।

संक्षेप में हम बता सकते हैं कि "पश्यन्ती" के लेख "ठेले पर हिमालय" की अपेक्षा अधिक समस्या-प्रधान और यथार्थवादी हैं । "ठेले पर हिमालय" में भावना की प्रधानता है तो "पश्यन्ती" में वैचारिकता ने वह स्थान ले लिया है । इसीलिए इस संकलन के निबन्धों में प्रौढ़ता आयी है ।

कहनी-अनकहनी

कहनी-अनकहनी डॉ. धर्मवीर भारती के छोटे-छोटे निबन्धों का संग्रह है । सन् 1970 ई. में प्रकाशित इस संग्रह में पैंतालीस निबन्ध हैं जो 5 फरवरी 1961 से लेकर वसंत पंचमी 1963 तक हिन्दी की लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' में संपादकीय के रूप में आये थे । इसके निबन्ध अधिकतर विचार प्रधान हैं । इनमें राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, शिक्षा-पद्धति से संबन्धित और हमारे

---

1. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 65.
2. पश्यन्ती - भारती, पृ: 106.

देश की भाषाओं से संबन्धित अनेक समस्याओं का प्रतिपादन हुआ है । भाषा का संवाल हो, सांस्कृतिक मूल्यों का प्रश्न हो, साहित्यिक समस्या हो, भारती एक नये अन्दाज़ में अपनी बात कहते हैं । इन निबन्धों के संबन्ध में स्वयं भारती की राय है - "समकालीन इतिहासचक्र की कोई छोटी से छोटी घटना हो, सामान्य से सामान्य समाचार हो - लेकिन मानवमूल्यों के निकष पर उसे भी कसा जा सकता है, और बहुत कुछ है जो उसके संदर्भ में कहा जा सकता है - बहुत कुछ जिसका स्थायी मूल्य है । यह लेखन उसी दिशा में एक प्रयोग रहा है ।"[1]

"कहनी-अनकहनी" के अधिकतर निबन्ध भाषा की समस्या से संबद्ध हैं । हिन्दी-उर्दू के साम्य और भेद, भारत में दोनों के लिए एक लिपि के उपयोग की आवश्यकता, आदि पर प्रकाश डालनेवाला निबन्ध है 'तरक्की का तर्क या तर्के-तरक्की' । भारतीय भाषाओं के महत्व पर प्रकाश डालते हुए भारती कहते हैं कि "हमारे देश की आत्मा जिस जिस लंबे और बहुपक्षी इतिहास, विराट् समन्वय और आध्यात्मिक खोज को अपने में समाहित किये हुए हैं, उसकी विविध अनुभूतियों की अभिव्यक्ति उन्हीं भाषाओं के शब्दों से भी हो सकती है जो हमारे देश की हैं । नये शब्द भी उन्हीं शब्दों के आधार पर बनाये जा सकते हैं । विदेश से उधार लिये गये शब्द बहुत से संदर्भों में झूठे और अयथेष्ट साबित होंगे ।"[2] 'सत्याग्रह की अंग्रेज़ी क्या है' शीर्षक निबन्ध में अंग्रेज़ी भाषा के व्यवहार का अनौचित्य स्पष्ट करने की कोशिश की गयी है ।

समसामयिक समस्याओं के प्रति रचनात्मक लेखक पीठ फेरकर नहीं रहेंगे । रचनाधर्मिता के प्रति निष्ठावान भारती इसका अपवाद नहीं है । इसीलिए 'आइखमैन को सजा लेकिन 'एक छोटी खबर एक बडा संदर्भ', 'शराब पीने की आज़ादी' 'संकट और नया रास्ता' आदि निबन्धों में समसामयिक समस्याओं का उल्लेख किया गया है । भारती का सबसे बडा सिद्धान्त मनुष्यता है जिसका समर्थन वे स्थान-स्थान पर करते हैं । 'प्रेमचन्द ने कहा था' निबन्ध में वे कहते हैं - "यह बात दिनोंदिन

---

1. कहनी-अनकहनी - भारती, आमुख ।
2. वही - पृ: 87.

स्पष्ट होती जा रही है कि अगर हमें अपने देश का सफल निर्माण करना है तो वह निर्माण अन्दर से शुरू करना होगा । मनोवृत्तियों और भावनाओं को संस्कार देना होगा तभी बाहर का निर्माण भी सफल हो सकेगा ।"[1] 'मानसरोवर और दिल्ली के हंस' शीर्षक निबन्ध में हमारे देश की शासन-व्यवस्था पर गहरा व्यंग्य करते हैं । इसमें सरकार किसप्रकार नितांत मूर्खतापूर्ण वक्तव्य देती है, इस बात को स्पष्ट किया गया है । 'शब्द बदले प्रकाश में' भारती ने विज्ञान संबन्धी अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है । विज्ञान वास्तव में एक वरदान है । किन्तु आज हर वैज्ञानिक आविष्कार मनुष्य के अस्तित्व को भी खतरे में डालते हैं । इसलिए भारती का सुझाव है कि "आज सबसे पहली ज़रूरत यह महसूस होती है कि वह मशीन जो आदमी के मन में स्थित है और इस हद तक विकृत हो गयी है कि उसमें पडे हुए शब्द घृणा और आग बनकर ही निकलते हैं, उसे दुरुस्त किया जाये ।"[2] 'राजनीतिक नियति और भारतीय लेखक' में भारती ने टाल्स्टाय की विख्यात कृति "वार एंड पीस" को सामने रखकर कुछ बुनियादी सवाल उठाये हैं जिनका संबन्ध इस देश के लेखक से हैं ।

इसप्रकार "कहनी-अनकहनी" के निबन्धों से विभिन्न विषयों पर भारती की आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय हमें मिलता है । धनंजय वर्मा के अनुसार "सामान्य जागृत रुचि के प्रचलित मामलों पर अपने पाठकों की जानकारी बढाने या उन्हें शिक्षित करने के लिहाज़ से इन टिप्पणियों का काफी महत्व हैं ।"[3] सचमुच "कहनी-अनकहनी" में सांस्कृतिक आयोजन, समाचार पत्रों की दुर्दशा, विश्वविद्यालयों की राजनीति, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय लेखक परिगोष्ठियाँ, पुरस्कार और अभिनंदन समारोह इत्यादि विषयों को संतुलित दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है । यह स्पष्ट है कि ये बातें सामयिक संदर्भ में कही जाने पर भी उनका महत्व स्थायी हैं ।

---

1. कहनी-अनकहनी - भारती, पृ: 93.
2. वही - पृ: 81.
3. धर्मवीर भारती - सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 69.

मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे

"मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे" बांगला देश के युद्धविषयक नौ रिपोर्ताजों का संग्रह हैं जिसका प्रकाशन सन् 1971 में हुआ । इसमें बांगला देश की मुक्ति के लिए चलाये गये अभियान का विवरण है । पत्रकार होने के नाते भारती ने युद्ध क्षेत्र का दौरा किया था और इसके बाद उन्होंने यह रिपोर्ताज तैयार किया । इसमें भारती ने सैनिकों के साथ अपनी ढाका-यात्रा का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है । इस यात्रा में उन्हें किन किन परिस्थितियों का सामना करना पडा, मृत्यु कब और कैसे बिलकुल पास आकर निकल गयी, पाकिस्तानी हमलावरों को भारतीय फौज ने किस प्रकार जवाब दिया आदि बातों को बडे ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । युद्ध क्षेत्र से संबन्धित इस रिपोर्ताज में युद्ध का कारण और उसके संबन्ध में जनता की प्रतिक्रिया का अंकन भी किया गया है । युद्ध का विवरण करने के साथ मनुष्यता और पशुता का स्वरूप भी लेखक ने दिखाया है ।

रिपोर्ताज-लेखक पत्रकार के साथ साहित्यकार भी है । इससे प्रस्तुत रिपोर्ताज में कहीं-कहीं लेखक का स्वतंत्र व्यक्तित्व हमारे सामने आता है । "मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे" में नौ रिपोर्ताजों के अतिरिक्त मुक्तिवाहिनी के सेनापति कर्नल उस्मानी के साथ भारती का एक साक्षात्कार भी है । इसमें कर्नल उस्मानी के व्यक्तित्व और उनकी मानवीयता पर प्रकाश डालने के साथ बांगला देश के युद्ध का ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ भी व्यक्त किया गया है ।

समीक्षात्मक ग्रन्थ

प्रगतिवाद एक समीक्षा

भारती ने अपने लेखन के आरंभिक काल में प्रगतिवाद को अपनाया था । प्रगतिवाद के संबन्ध में उन्होंने अपने विचारों को भी व्यक्त किया है । ऐसे विचारों का आलोचनात्मक ग्रन्थ हैं "प्रगतिवाद एक समीक्षा" । इसका प्रकाशन 1949 में हुआ ।

प्रगतिवाद कोरी गतिशीलता का नाम नहीं है । उसकी पहली शर्त सोद्देश्यता होती है । वह राजनैतिक संकीर्णता या संकुचित राष्ट्रीयता की दलीय सीमाओं से परे है । वह मुलतः एक दृष्टिकोण है । प्रगतिवादियों के विचार में मानव से बडा कोई सत्य नहीं है । प्रगतिवादी साहित्यकार प्रायः साम्यवाद को ही प्रगति का आधार मानते हैं ।

भारती प्रगति के समर्थक हैं । किन्तु वे वाद के पचडे से दूर रहते हैं । उनके विचार में "कवि की आवेगप्रवण सृजनात्मकता किसी प्रतिबन्ध का अनुगमन नहीं कर सकती । उसे बलपूर्वक किसी सामयिक राजनीति या दलगत प्रचार के लिए उपकरण के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता । जहाँ यह प्रतिबन्ध है वहाँ कवि की विभाजित मानसिकता तथा खण्डित व्यक्तित्व की आशंका सहज ही की जा सकती है ।"[1] डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम की दृष्टि में "प्रगतिवाद एक समीक्षा" "नितान्त अपरिपक्व तथा आवेगप्रवण है - संतुलन तथा वैज्ञानिकता का उसमें नितान्त अभाव है ।"[2] लेकिन हम इस विचार से सहमत नहीं हो सकते । भले ही भारती के कुछ मंतव्यों से हम असहमत हों, पर उनकी विचारगत ईमानदारी इनकार नहीं की जा सकती ।

मानवमूल्य और साहित्य

"मानवमूल्य और साहित्य" सन् 1960 में प्रकाशित ग्रन्थ है । इसमें भारती साहित्य, समाज, व्यक्ति, इतिहास और संस्कृति आदि के संदर्भ में मानवमूल्यों पर विचार करते हैं । इनमें साहित्य को ही उन्होंने प्रमुखता दी है । उनके अनुसार "साहित्य मनुष्य का ही कृतित्व है और मानवीय चेतना के बहुविध प्रत्यन्तरों (Responses) में से एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रत्युत्तर है । इसलिए हम आधुनिक साहित्य के बहुत-से पक्षों को या आयामों को केवल तभी बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं जब हम उन्हें मानवमूल्यों के व्यापक संकट के संदर्भ में देखने की चेष्टा करें ।"[3]

---

1. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृः 46.
2. वही - पृः 45.
3. मानवमूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती, पृः 10-11.

तीन खण्डों में विभक्त प्रस्तुत पुस्तक में पहले व्यापक सांस्कृतिक संकट का सर्वेक्षण किया गया है और उसके संदर्भ में हिन्दी साहित्य की बात की गयी है । हिन्दी के प्रसंग में लेखक ने छायावाद और प्रगतिवाद दोनों के प्रति असन्तोष व्यक्त किया है । क्योंकि उनके विचार में एक ने मूल समस्या का सामना ही नहीं किया और दूसरे ने समस्या को गलत परिप्रेक्ष्य में उठाकर उलझनें बढा दीं । प्रथम खण्ड में अपनी इस असहमति को लेखक ने खुले तौर पर स्पष्ट किया है । साहित्य हो या राजनीति हो सबको भारती मानवमूल्यों के तुले पर तौलने के पक्ष में हैं । इस दृष्टिकोण से वे मार्क्सवाद की आलोचना करते हैं कि "कम्यूनिज़्म व्यक्ति को पूर्णतया अस्वीकृत कर केवल एक अमूर्त निराकार समूह को प्रतिष्ठित करता है । फिर उस समूह के दायित्व को निर्धारित करने का काम राज के हाथ में होता है । परिणाम यह होता है कि मानवीय मूल्यों का स्थान राजनीतिक दुराग्रह ले लेता है और मनुष्य के बहु-आयामवाले विराट् जीवन को केवल राजनीति के छोटे से पैमाने से मापने की कोशिश की जाती है ।"[1] लेकिन मार्क्सवाद के संबन्ध में भारती का यह दृष्टिकोण कहाँ तक सार्थक है, इसमें सन्देह है । क्योंकि व्यक्ति की अस्मिता समाज में है । इसलिए समाज की भूमिका व्यक्ति से बहुत आगे है । भारती के मत में मनुष्य की नियति का अधिनायक कोई और शक्तियाँ,- जैसे देवी अथवा अतिप्राकृतिक शक्तियाँ-नहीं बल्कि खुद मनुष्य ही है और इसका चयन उसकी अंतरात्मा करती है । उनके अनुसार "अंतरात्मा वस्तुतः आधुनिक संदर्भ में मानवीय गौरव के प्रति हमारी जागरूक संवेदना का पर्याय है ।"[2] यह संवेदनशीलता विवेक और मनोबल से आती है । विवेक और मनोबल से समृद्ध होकर व्यक्ति सामाजिक समता भी लाएगा ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारती की सबसे प्रमुख चिंता सामान्य जन की मुक्ति रही है । उन्हीं के शब्दों में "आज भारत में भी जो साहित्यकार मानव-नियति के संदर्भ में राष्ट्र के नव-निर्माण के प्रति अपना दायित्व अनुभव करता है, उसके लिए

---

1. मानवमूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती, पृः 50.
2. वही - पृः 23.

सबसे प्रमुख चिन्ता हो जाती है - "सामान्य जन की मुक्ति" । भारत की स्वतंत्रता तब तक सार्थक नहीं है जब तक सामान्य जन स्वतंत्र नहीं है ।"[1] उनकी दृष्टि में आर्थिक स्वतंत्रता के बिना व्यक्ति की राजनीतिक स्वतंत्रता एक भ्रम मात्र है । क्योंकि आर्थिक स्तर पर एक वर्ग का व्यक्ति अपना श्रम बेचने को "विवश" है, दूसरा उसे खरीदने को "स्वतन्त्र", एक व्यक्ति पिसने को "विवश" है और दूसरा पीसने को "स्वतन्त्र" । इसलिए उन्होंने शोषण और विकृतियों को बढावा देनेवाली पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध करते हुए कहा है कि "पूँजीवाद ने मानवीय संबन्धों का आधार पारस्परिक प्रेम और सहयोग नहीं रहने दिया । उसने धन संचय को ही प्रमुख स्थान दिया ।"[2]

आज हमारे जीवन में दिखाई पडनेवाले संकट के प्रति भारती बहुत चिंतित हैं । यह संकट केवल आर्थिक या राजनीतिक संकट नहीं है वरन् जीवन के सभी पक्षों में समान रूप से मौजूद है । इसमें पश्चिम या पूर्व का भेद नहीं है । समस्त संसार में विभिन्न धरातलों पर विविध रूपों में प्रकट हो रहा है । इसका कारण भारती के विचार में यह है कि अपनी नियति और इतिहास निर्माण के सूत्र मनुष्य के हाथों से छूट गये हैं । इसलिए भारती जीवन के सभी क्षेत्रों में मूल्यों की ज़रूरत पर बल देते हैं । विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने भारती के इस ग्रन्थ का मूल्यांकन उनकी अन्य रचनाओं को सामने रखकर किया है और कहा है कि भारती की 'कथनी' और 'करनी' में परस्पर विपरीतता है । इधर हमारा लक्ष्य केवल उनके "मानवमूल्य और साहित्य" शीर्षक ग्रन्थ का अवलोकन करना रहा है । हम निस्संदेह कह सकते हैं कि यह ग्रन्थ संपूर्ण विश्व का मार्गदर्शक बन सकता है ।

---

1. मानवमूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती, पृ: 74.
2. वही - पृ: 41.

शोध-प्रबन्ध

सिद्ध-साहित्य

"सिद्ध-साहित्य" धर्मवीर भारती का शोध-प्रबन्ध है । सन् 1948 में भारती ने इलाचन्द्र जोशी द्वारा संपादित संगम साप्ताहिक में दो वर्ष काम किया । इसी काल में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में उन्होंने अपना शोध-कार्य संपन्न किया । सिद्ध-साहित्य पर शोध करके भारती ने प्रयाग विश्वविद्यालय से डी. फिल. उपाधि प्राप्त की ।

तांत्रिक-युग धर्म-साधनाओं की दृष्टि से अत्यंत उलझनों का काल था - सौकडों वर्षों का काल, जिसमें हिन्दू, बौद्ध तथा जैन साधना-पद्धतियाँ परस्पर संक्रमित होती रहीं । उस पर विदेशी प्रभाव भी पडते रहे । अतः सिद्ध साहित्य को अन्य संप्रदायों और साधनाओं से अलग करना मुश्किल का काम है । लेकिन भारती ने यह भार अपने ऊपर ले लिया और सिद्ध-साहित्य का मर्मोद्घाटन किया । साथ ही तत्कालीन समग्र वातावरण, चिन्तनाओं और साधना-पद्धतियों का भी विवेचन प्रस्तुत किया । बौद्ध-तंत्र और योग-साधना का प्रतीकात्मक वर्णन करनेवाले अपभ्रंश दोहों तथा चर्यापदों का श्री राहुल सांकृत्यायन तथा डॉ. काशीप्रसाद जयसवाल तक के विद्वानों ने मूलतः भाषा की दृष्टि से ही अध्ययन किया था । इन्होंने यह स्थापित किया कि इनकी भाषा पुरानी मगही है । धर्मवीर भारती ने पहली बार उनके उपेक्षित-पक्ष यानी सिद्धान्त-पक्ष और काव्य-पक्ष उद्घाटित किया । सिद्ध-साहित्य के इन दोनों पक्षों का प्रभाव हिन्दी के सन्त-साहित्य पर पडा है । डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' और 'कबीर' में इसकी ओर संकेत किया है । "सिद्ध-साहित्य" के संबन्ध में भारती की प्रस्तावना है कि "उपलब्ध सामग्री की अत्यंत अल्प होने पर भी, तथा धर्म-साधनाओं की दृष्टि से वह युग अत्यंत उलझनों से भरा हुआ होने पर भी प्रस्तुत ग्रन्थ में यथासंभव बिखरे हुए सूत्र जोडकर दोहों तथा पदों में

उपलब्ध उनके दार्शनिक सिद्धान्तों की एक रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।"[1] अपने शोध-कार्य का लक्ष्य स्पष्ट करते हुए भारती लिखते हैं - "प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रमुख लक्ष्य बौद्ध सिद्ध-साहित्य का अध्ययन रहा है । अतः परवर्ती प्रभाव-परंपरा को इसमें दूसरे दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया गया है । किन्तु स्थान-स्थान पर यह संकेत अवश्य कर दिया गया है कि इस समस्त विकास का आरंभ-बिन्दु तांत्रिक धर्मान्दोलन है और वैष्णव भक्ति आन्दोलन इसकी परिणति रेखा है ।"[2]

पाँच अध्यायोंवाले इस ग्रन्थ को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है । प्रथम खण्ड 'परिचय तथा पृष्ठभूमि' है जिसके अंतर्गत प्रथम दो अध्याय आते हैं । इसमें सिद्ध-साहित्य का तात्पर्य और उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि का विवरण प्रस्तुत किया गया है । उनके अनुसार "सिद्ध-साहित्य से हमारा तात्पर्य वज्रायानी परंपरा के उन सिद्धाचार्यों के साहित्य से है जो अपभ्रंश दोहों तथा चर्यापदों के रूप में उपलब्ध है और जिसमें बौद्ध तांत्रिक सिद्धान्तों को मान्यता दी गयी है । यद्यपि उन्हीं के समकालीन शैव नाथ योगियों को भी सिद्ध कहा जाता था किन्तु कतिपय कारणों से हिन्दी तथा अन्य कई प्रांतीय भाषाओं में शैव योगियों के लिए 'नाथ' तथा बौद्ध तांत्रिकों के लिए 'सिद्ध' शब्द प्रचलित हो गया । उसी प्रसंग में 'सिद्ध-साहित्य' बौद्ध सिद्धाचार्यों के साहित्य का वाचक हो गया है ।"[3] द्वितीय खण्ड 'समीक्षा' में तीसरा और चौथा अध्याय आता है । इसमें सिद्धों का तत्वचिन्तन और साधना-पद्धति के साथ उनके साहित्य का भावपक्ष और शैली पक्ष का विवेचन किया गया है । तृतीय खण्ड में पाँचवाँ अध्याय आता है । इसमें सिद्धों की सांप्रदायिक परिस्थिति और उनके परवर्ती संप्रदायों की साधना-पद्धति का विवरण है ।

---

1. सिद्ध-साहित्य - धर्मवीर भारती, पृः 6.
2. वही - पृः 477.
3. वही - पृः 19.

इसप्रकार आठवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक भारतीय समाज-व्यवस्था में कौन से परिवर्तन आते रहे हैं और उनके कारण जनता की धर्म-चेतना किन-किन उपधाराओं में विभाजित होकर किन दिशाओं में प्रवाहित होती रही है, आदि बातों का व्यापक अध्ययन सिद्ध-साहित्य में हुआ है ।

सिद्धों का तत्व, दर्शन, साधना, उपलब्धि, साम्प्रदायिक स्थिति, पृष्ठभूमि में स्थित बौद्ध तंत्र, बौद्धेतर तांत्रिक साधनाएँ, हिन्दू योग-साधना - इन सबकी अभिव्यक्ति और सिद्धों तथा नाथों के साहित्य पर शैव और वैष्णव संप्रदायों का प्रभाव आदि का गवेषणात्मक विवेचन इस ग्रन्थ में हुआ है । इस प्रकार वज्रयानी सिद्ध-साहित्य का विस्तृत अध्ययन और नाथ तथा सन्त परंपरा पर उसके प्रभाव का समुचित मूल्यांकन करके भारती ने सिद्ध-साहित्य के आगे का अध्ययन सुगम बना दिया है ।

निष्कर्ष

धर्मवीर भारती की सभी रचनाओं के अध्ययन करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनके आरंभिक लेखन का मुख्य स्वर रोमानी है । उनके परवर्ती साहित्य में भी इसकी कमी-बेशी विद्यमान है । प्रेम के विविध रूपों का जीवन्त तथा आवेगमय चित्रण भारती की रचनाओं में मिलता है ! इनकी यथार्थ जीवन-दृष्टि से प्रेरित रचनाएँ भी रोमानी अनुभूतियों से मुक्त नहीं हैं । लेकिन इनका रोमान, छायावादी रोमान से भिन्न, जीवन की सहज अनिवार्यता के रूप में उपस्थित हुआ है । भारती की काव्य-कृतियों में "अंधायुग" और "कनुप्रिया" विशिष्ट मानी गयी हैं । "अंधायुग" युद्ध की कठोर भूमि में कृष्ण को नये रूप में प्रस्तुत करता है । इसके विपरीत "कनुप्रिया" में उनके कोमल मानवीय रूप के साथ राधा की उदात्त समर्पणमयी वृत्ति का तलस्पर्शी अंकन हुआ है और एक बिन्दु पर दोनों काव्य एक दूसरे के पूरक दिखाई देते हैं । भारती की शैलीगत मौलिकता, नवीन उद्भावना शक्ति और भाषा के जीवन्त प्रयोग प्रायः उनकी सभी कृतियों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं और उनका स्वतंत्र

व्यक्तित्व पाठक को प्रभावित करता है । उनका प्रथम कहानी संकलन चाँद और टूटे हुए लोग" की अपेक्षा दूसरा संकलन "बन्द गली का आखिरी मकान" में जिन्दगी का एहसास ज्यादा प्रखर है । "गुनाहों का देवता" उनका बहुचर्चित उपन्यास है जो उनके परवर्ती उपन्यास "सूरज का सातवाँ घोडा" से भी अधिक लोकप्रिय हुआ । लेकिन एक सृजनात्मक साहित्य की दृष्टि से "सूरज का सातवाँ घोडा" "गुनाहों का देवता" से सफल उपन्यास है । उनकी प्रायः सभी कृतियों में काव्य तत्व की प्रधानता है जो यह स्पष्ट करती है कि भारती मूलतः कवि हैं ।

अध्याय - तीन

धर्मवीर भारती की कविताएँ

धर्मवीर भारती प्रयोगशील नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं । वे सप्तक परंपरा में "दूसरा सप्तक" के कवि हैं । अपने आस-पास की दुनिया के चित्रण की अपेक्षा भारती निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अधिक करते हैं । डॉ. अरुण कुमार लिखते हैं - "नई कविता के स्वरूप-गठन में इनका महत्वपूर्ण योगदान है । "सात गीत वर्ष" के पूर्व उनकी कविताओं में कौशोर्य की कोमल कल्पनाएँ हैं और जन-सामीप्य प्राप्त करने की विरल इच्छा भी । उसके बाद की कविताओं में राग का सरस स्वर है । बीच की कविताएँ विराग की नहीं वरन् विद्रोह मन की है उनकी संपूर्ण रचनाएँ उनके सतरंगे स्वप्नों को उजागर करती है ।"[1] वस्तुतः धर्मवीर-भारती की कविता में नयी कविता के विकास के सभी पंडावों की छाप हैं ।

छायावादोत्तर कविता लघु परिचय

छायावाद के उपरांत हिन्दी कविता प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, प्रपद्यवाद जैसे कई चरणों को पार कर 'नयी कविता' के मंजिल पर पहुँची है । अतः नयी कविता' के कवियों को एकदम स्वतंत्र और निरपेक्ष मानना अनुचित है । उनमें अपनी पूर्ववर्ती काव्य-प्रवृत्तियों के गुणात्मक पक्ष देख सकते हैं । इन्होंने छायावाद की आदर्शवादिता, प्रगतिवाद के अतियथार्थ और प्रयोगवाद के घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद की उपेक्षा की है । नयी कविता' में सामाजिकता और वैयक्तिकता अलग अलग खानों में बंटी नहीं हैं । उसकी दृष्टि में समाज परिधि है और व्यक्ति केंद्र । जीवन के

---

1. नयी कविता कथ्य एवं विमर्श - डॉ. अरुण कुमार, पृः 63.

प्रति स्वस्थ दृष्टि इसमें विद्यमान है और जीवन मूल्यों के प्रति रचनात्मक रुख अपनाया गया है । जीवन के प्रत्येक क्षण की अनुभूतियों को सत्य और अर्थपूर्ण मानती है 'नयी कविता'। लघु-मानव को उसकी संपूर्ण संवेदना के साथ इसमें स्थान दिया गया है । वस्तुतः प्रयोगवादी कविता की परिमार्जित रूप ही है 'नयी कविता'। प्रभाकर श्रोत्रिय ने स्पष्ट किया है कि "अगर हम नयी कविता के प्रमुख कवियों के काव्य को एक समावेशी दृष्टि से देखें तो वह हमें परंपरा को आलोचना और प्रश्न की मुद्रा में देखने और उनके उपयोगी तत्वों को नयी चेतना से संपन्न करने का आश्वासन देता है । शुद्ध परंपरा जैसी कोई चीज़ नहीं होती । उसमें संयोग और विच्छेद की काफी गुंजाइश होती है ।"[1]

प्रयोगवादी कविता की शुरूआत सामान्यतः तारसप्तक (1943) से मानी जाती है । प्रयोगवाद शब्द से 'तारसप्तक' के संपादक अज्ञेय ने अपनी अनिच्छा प्रकट की है । उनका कहना है कि "प्रयोग का कोई वाद नहीं है । हम वादी नहीं रहे, प्रयोग न अपने-आप में इष्ट या साध्य है । ठीक उसी तरह कविता का कोई वाद नहीं है अतः हमें प्रयोगवादी कहना अब उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना ।"[2] ऐसा लगता है कि प्रयोगवाद नाम काव्य में होनेवाले परिवर्तनों के कारण दे दिया गया है । इससे अब एक निश्चित प्रवृत्ति का बोध होता है ।

धर्मवीर भारती की कविता-यात्रा दूसरा सप्तक से प्रारंभ होती है । इनके दो काव्य-संकलन हैं - 'ठंण्डा लोहा' (1952) और 'सात गीत वर्ष (1959) । "ठण्डा लोहा" में 39 कविताएँ संकलित हैं और "सात गीत वर्ष" में 51 कविताएँ । इनके अतिरिक्त दूसरा सप्तक में भी भारती की कुछ कविताएँ हैं । इन कविताओं में कवि की मस्ती, रूमानियत, प्रणयानुभूति और युगबोध की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है ।

---

1. कविता की तीसरी आंख - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृः 8.
2. दूसरा सप्तक - अज्ञेय, भूमिका ।

"कविता के-से माध्यम से ही भारती आज की बेहद पिसती हुई संघर्षपूर्ण, कटु और कीचड में बिलबिलाती हुई जिन्दगी के भी सुन्दरतम अर्थ खोज पाने में समर्थ रहा है । कविता ने उसे अत्यधिक पीडा के क्षणों में विश्वास और दृढता दी है । कविता भारती के लिए शान्ति की छाया और विश्वास की आवाज़ रही है ।"[1]

ठण्डा लोहा

"ठंण्डा लोहा" संकलन में 1946 से 1952 तक की कविताएँ संकलित की गयी हैं । इस संकलन की कविताओं के स्तर भावभूमि, शिल्प और टोन में काफी विविधता है । "किशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन, आत्मसमर्पणमयी वैष्णव भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अहम् का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सचाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भावभूमि की खोज-मेरी इस छन्द-यात्रा के यही प्रमुख मोड रहे हैं ।"[2] प्रस्तुत संकलन की अधिकांश कविताओं का स्वर प्रेम ही है । किशोरावस्था के प्रेम में पायी जानेवाली गहरी भावुकता, तीव्र आवेग और अनंत स्वप्न से ये कविताएँ भरी हुई हैं । अतः डॉ. रघुवंश लिखते हैं - "भारती मूलतः रोमैंटिक मिजाज के कवि हैं, नयी कविता आन्दोलन के साथ संबद्ध रहकर भी उनका सारा विकास एक सक्षम रोमैंटिक कवि के रूप में देखा जा सकता है ।"[3]

रागवृत्ति की रोमानी अभिव्यक्ति

भारती प्रेम और सौन्दर्य के प्रति विशेष रुचि रखते हैं । रोमानियत उनके व्यक्तित्व का ही अंग है । अतः "ठंडा लोहा" संकलन की प्रायः सभी रचनाओं में उन्मुक्त प्रेम और रूपोपासना का आग्रह परिलक्षित होता है । उन्होंने प्रेमोन्माद तथा

---

1. दूसरा सप्तक, पृः 165.
2. ठण्डा लोहा तथा अन्य कविताएँ - धर्मवीर भारती, आमुख ।
3. भारती का काव्य - रघुवंश, पृः 3.

भावावेश की कोमल और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की है । संकलन की 'तुम्हारे चरण', 'उदास तुम', 'उदास मैं', 'डोले का गीत', 'फागुन की शाम', 'बादलों की पांत', 'पीरोज़ी होंठ', 'गुनाह का गीत', 'कच्ची साँसों का इसरार', 'मुग्धा' इत्यादि रचनाओं में प्रणयानुभूति कौशोर्यसुलभ रूपासक्ति और उद्दाम काम-भावनाओं का अंकन होता है । 'गुनाह का गीत' की पंक्तियाँ हैं -

"किसी की गोद में सिर धर
घटा घनघोर बिखराकर, अगर विश्वास सो जाये
धड़कते वक्ष पर मेरा अगर व्यक्तित्व खो जाये?

न हो यह वासना तो जिन्दगी की माप कैसे हो?
किसी के रूप का सम्मान मुझपर पाप कैसे हो?
नसों का रेशमी तूफान मुझपर शाप कैसे हो?"[1]

प्रेम तथा सौन्दर्य के स्वच्छ एवं संश्लिष्ट स्वरूप के स्थान उसके विकृत रूप का प्रवक्ता बन गया है भारती प्रस्तुत संकलन में । 'तुम' शीर्षक कविता में कवि किशोरी के अंग-वर्णन में तत्पर दिखाई पडता है -

"सघन घन अलकों में बरसात
कँवल पर ज्यों भँवरों की पाँत
सुनहली सन्ध्या के चहुँ ओर
नसीली गीली काली रात

नसीली दीठ, लजीले सैन
भरे, ये अरुन गुलाबी नैन
कि जिन से बेहिसाब अन्दाज
छलकती है मस्ती दिन-रैन?"[2]

---

1. ठंडा लोहा, पृ: 22.
2. वही - पृ: 27.

कवि को प्रिया की मुसकुराहट में स्वर्ग और उसके आँसू में भगवान नज़र आता है । यह सब देखकर आलोचक धनंजय वर्मा लिखते हैं कि "ठण्डा लोहा" उत्तरछायावादी गीत-धारा का ही एक आयाम है (अंचल, बच्चन और नरेन्द्र शर्मा के समानांतर) लेकिन उसकी मूल धातु छायावादी ही है और वह भी छायावाद के अवसान-काल की ।"[1] प्रस्तुत संकलन की 'तुम्हारे चरण', 'प्रार्थना की कडी', 'उदास तुम', 'उदास मैं', 'डोले का गीत', 'फागुन की शाम', 'बादलों की पांत', 'बेला महका', 'फीरोजी होठ', 'बसंती दिन', 'गुनाह का गीत', 'कच्ची साँसों की इसरार', 'मुग्धा', 'तुम', 'जागरण', 'पावस गीत', 'कोहरे भरी सुबह', 'मुक्तक', 'एक पत्र', 'घबराहट की शाम', 'प्रथम प्रणय', 'बातचीत का एक टुकडा', 'झील के किनारे' जैसी कविताएँ प्रणय और रोमानी नायिका-वर्णन से ओत-प्रोत हैं । प्रेम के वियोग पक्ष से संबद्ध कविताएँ हैं 'डोले का गीत', 'फागुन की शाम', 'बादलों की पांत' । 'फागुन की शाम' की पंक्तियाँ हैं -

"इस सीढी पर, यहीं जहाँ पर लगी हुई है काई
फिसल पडी थी मैं, फिर बाँहों में कितना शरमायी ।
यहीं न तुमने उस दिन तोड दिया था मेरा कंगन !
यहाँ न आऊँगी अब, जाने क्या करने लगता मन !"[2]

इन कविताओं की एक विशेषता यह है कि इनमें कवि की वैयक्तिक चेतना और अनुभूतियाँ ही उजागर हुई हैं ।

जनवादी भूमिका का आग्रह

भारती ने प्रस्तुत संग्रह में यथार्थ से पूर्णतया मुँह नहीं मोडा है । 'कविता की मौत ; 'सुभाष की मृत्यु पर'; 'निराला के प्रति'; 'थके हुए कलाकार से'; 'कवि और अनजान पगध्वनियाँ' 'दो आवाजें'; 'मेरी परछाँही'; फूल, मोमबत्तियाँ , सपने;

---

1. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 63.
2. ठंडा लोहा, पृ: 12.

'निवेदन' जैसी कविताओं में उन्होंने जीवन की विराट सत्य को आत्मसात करने का प्रयास किया है । 'कविता की मौत' में उन्होंने जीवत के कटु यथार्थ से मुलाकात की है -

"मर गयी कविता, नहीं तुमने सुना'
भूख ने उसकी जवानी तोड दी,
उस अभागिन की अछूती माँग का सिन्दूर
मर गया बन कर तापेदिक का मरीज,
औ" सितारों से कहीं मासूम सन्तानें,
माँगने को-भीख हैं मजबूर !
था पटरियों के किनारे से उठा,
बेचते हैं ,
अधजले
कोयले !"[1]

'सुभाष की मृत्यु पर' कविता में ईश्वर द्वारा अपना अंगूठा चीर कर अभिषिक्त किए गये सुभाष के प्राण का उल्लेख है । "निराला के प्रति" में कवि ने निराला को विप्लव का गुरुतर आदेश देकर युग परिवर्तन करनेवाले नये युग का शिव बताया है । प्रलय, ध्वंस और निराशा के ऊपर है सर्जन की शक्ति । मानवीय मूल्य और आस्था का स्वर 'थके हुए कलाकार से' में गूँज उठता है ।

जीवन के नकारात्मक पक्ष की अधिकता

प्रयोगवाद और नयी कविता में अनास्था, पराजय, निराशा और कुंठा के काफी स्वर मिलते हैं । "एक जमाने में प्रयोग का आग्रह लेकर आगे-बढनेवाली हिन्दी की नयी कविता भी अन्दर-ही-अन्दर छायावादी संस्कारों से ग्रस्त होकर रह गयी और

---

1. ठंडा लोहा, पृ: 44.

उसने जाने-अनजाने अपना एक संकीर्ण काव्य-संसार बना लिया जो धीरे-धीरे वास्तविक संसार से दूर होने लगा ।"[1] "ठंडा लोहा" की कविताओं में कुंठा, निराशा और उदासी पर्याप्त मात्रा में हैं । क्योंकि इन कविताओं में रोमैंटिक प्रेम का विवरण है । रोमैंटिक प्रेम प्रायः असफल होता है । प्रेम की असफलता से निराशा और उदासी सघन होती हैं -

"ओ मेरी आत्मा की संगिनी ।

तुम्हें समर्पित मेरी साँस-साँस थी लेकिन
मेरी साँसों में यम के तीखे नेजे-सा
कौन अडा है?
ठण्डा लोहा !

अगर जिन्दगी की कारा में,
कभी छटपटाकट मुझको आवाज़ लगाओ
और न कोई उत्तर पाओ
यही समझना कोई इसको धीरे-धीरे निगल चुका है,
इस बस्ती में कोई दीप जलानेवाला नहीं बचा है ।"[2]

'ठंडा लोहा', 'उदास मैं,' 'प्रतिध्वनि' शीर्षक कविताओं में कुंठा, उदासी और वेदना का ही अंकन है । 'उदास तुम' कविता में उदासी प्रिया के रूपसौन्दर्य का वर्णन किया गया है । 'प्रतिध्वनि' में कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जीवन में पल-भर के लिए भी दुःख और दर्द से राहत पाना नामुमकि है । डॉ रामदरश मिश्र की दृष्टि में "भारती में आदिम गन्ध की तडप और लोक-जीवन की रूमानी छवि की

---

1. दिशान्तर - सं. परमानन्द श्रीवास्तव, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृः 15.
2. ठण्ड लोहा, पृः 1,2.

पकड है । इसलिए इनकी कविताएँ मूलतः गीतात्मक हैं । इन कविताओं में लोक परिवेश की मस्ती और उल्लास के स्थान पर उदासी और सूनापन ही अधिक उभरता है शायद इसलिए कि भारती में उदासी का बहुत आत्मीय राग व्याप्त है ।"[1]

सात गीत-वर्ष

धर्मवीर भारती का अंतिम काव्य संकलन है "सात गीत-वर्ष" । इसमें 1951 से 1958 तक की 51 कविताएँ संकलित की गयी हैं । प्रस्तुत संकलन में भी व्यापक सच्चाई की कमी और वैयक्तिक अनुभूति एवं प्रणय-स्वर की अधिकता है । इसमें रोमानियत और यथार्थ परिस्थिति की टकराहट से कवि अधिक निराश और अवसादग्रस्त दिखाई पडता है । "सात गीत-वर्ष" में निश्चय ही मनःस्थिति बदल गयी है । वह सहज समर्पित उच्छल और उन्मुक्त प्रेम यथार्थ की आँच में पिघल गया है । कवि कौशोर्योचित प्रेम भावना की असलियत समझ गया है । सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में झूठ, मूल्य-भ्रष्टता और जीवन की बढती जटिलता ने उसे प्रताडित किया है । अब कविता उसके अन्तर के भावोत्कट क्षणों की अबाधित अभिव्यक्ति न रह कर उसके प्रौढ मस्तिष्क और वयस्क हृदय की शंकाओं, व्याकुलताओं, परेशानियों, वंचित होने के दुखों और निर्वासित अकेले पड जाने के कटु अहसास से ऊपर से गतिरुद्ध परन्तु भीतर से गहनता के स्तर को छूनेवाली प्रश्नबहुला हो गयी है ।"[2]

जीवन के सर्गात्मक पक्ष का अभाव

"सात गीत-वर्ष" की अधिकांश कविताएँ इस श्रेणी की हैं । इनका मुख्य स्वर प्रणय-क्षणों की व्याख्या और वैयक्तिक अनुभूति का अंकन है । इस वर्ग की कविताएँ हैं - "नया रस, नवम्बर की दोपहर, उत्तर नहीं हूँ, जिज्ञासा, केवल तन का रिश्ता, प्लेटफार्म, इतने दिन बाद, कस्बे की शाम, धूल-भरी आँधी का गीत, अंगन, अवशिष्ट,

---

1. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम - डॉ. रामदरश मिश्र, पृः 112.
2. कविता की तलाश - चन्द्रकांत बांदिवडेकर, पृः 90-91.

उपलब्धि, स्वयं को दुहरायेगा, साबुत आइने, रात अँधियारी हवा तेज़, दानः प्रभु के नाम, अर्द्धस्वप्न का नृत्य, साँझ के बादल, शामः दो मनस्थितियाँ, यादों का बदन, शाम एक थकी लड़की, एक छवि, दूसरे दिन सुबह, घाटी का बादल" । इन कविताओं में समष्टि चिन्तन की अपेक्षा व्यष्टि की प्रधानता है । व्यक्ति के प्रणय अस्तित्व, ऊब और उदासी को इनमें ज्यादा स्थान है । प्रेम-लीलाओं के वर्णन से पूर्ण एक कविता है "चैत का एक दिन"।

"सूरज में नहाए हुए
नीले कमल-सा यह चैत का नशीला दिन
मैं ने बिताया नहीं
केवल गुज़ार दिया
बेसुध तुम्हारे पास बैठे हुए
रूखी तुम्हारी मुक्त वेणी को
अँगुली में बार-बार प्यार से लिपटा कर
अनबाँधे छोड़ दिया ।"[1]

"ढीठ चाँदनी" में अधखुले झरोखे से तमाम रात दबे पाँव से अन्दर आकर प्रियतम को जगानेवाली चाँदनी का चित्रण है । प्रयोगवादी होने के नाते "घाटी का बादल" में प्रेम के मांसलतापूर्ण वर्णन करने में कवि को कोई हिचक नहीं है -

"प्रातधूप की ज़रतारी ओढनी लपेटे
अभी अभी जागी
खुमार से भरी
नितान्त कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघधूम के
औचक आलिंगन में पिस कर
रतिश्रान्ता सी मलिन हो गयी ।"[2]

---

1. सात गीत-वर्ष - धर्मवीर भारती, पृः 128-129.
2. वही - पृः 137.

"यादों का बदन" भी एक ऐसी कविता है जिसमें प्रियतम प्रिया के बाँहों के घेरे में सो जाता दिखाई पडता है । प्रेम की स्मृतियों पर आधारित ऐसी अनेक कविताएँ प्रस्तुत संकलन में हैं ।

प्रेम-भंग और उससे उद्भूत दर्द, निराशा और ऊब की अभिव्यक्ति "ठण्डा लोहा" की तरह "सात गीत-वर्ष" की कविताओं में भी देख सकते हैं । "जिज्ञासा" शीर्षक कविता में कवि स्पष्ट करता है -

"जिस दिन यह सारा आकुल प्रणयोन्माद
रह जायेगा केवल पिछला अभ्यास
जिस दिन यद्यपि तन होगा तन में लीन
पर मुर्दा होगी मन की सारी प्यास
उस दिन होगा फिर यह सिद्ध
वैयक्तिक सीमा में बद्ध
जितना झूठा है यह दुख
उतना ही झूठा है सुख ।"[1]

उसके जीवन में ऊब इस हद तक पहुँच गया है कि "प्लेटफार्म" शीर्षक लघु-कविता में वह अपने जन्म को भी कोसता है -

"सुनो इतनी अजीब सी किस्मत
ले के पैदा हुए थे क्यों हम तुम ?"[2]

"फागुन के दिन की एक अनुभूति" में कवि को हम आत्मनिर्वासित स्थिति में देखते हैं -

"जैसे शीशे में चटखे दरार
सहसा यह मुझको एहसास हुआ -

---

1. सात गीत-वर्ष - धर्मवीर भारती, पृ: 38.
2. वही - पृ: 54

यह सब है और किसी का
यह पगडण्डी, यह गाँव-खेत, सुग्गों के हरे पंख, गति, जीवन
सबका सब और किसी का
मेरा है केवल निर्वासन, निर्वासन, निर्वासन ..."[1]

भारती के इस आत्मनिर्वासन के संबन्ध में श्री सुलेखचन्द्र शर्मा लिखते हैं - "उसके आत्मपराजय, असन्तोष और टूटने के विषाद में रूपासक्ति और मांसलता का मोह उभर आता है जिसे संत्रास और मृत्युबोध की गहराती परछाइयाँ त्रासदी के सीमांत पर ले जाती है, और यह त्रासदी केन्द्रीय परिस्थितियों के संघर्ष की नहीं खण्डित, पीडित भाव-संस्थितियों की अनुगूंज बन जाती है जिसके आगे होता है एक विराट्शून्य-संदर्भ से कटा चेतना का अवरुद्ध स्वर !"[2]

पौराणिक संदर्भ से युक्त 'बृहन्नला' शीर्षक कविता में व्यंग्यात्मकता से अकर्मण्यता और पुंसत्वहीनता का अपहास किया गया है । महाभारत के अनुसार पाण्डवों के अज्ञातवास के समय अर्जुन राजा विराट के अन्तःपुर में एक नपुसंक के रूप में रहा था । उस समय उनका नाम बृहन्नला था । कवि ने इस कविता में बृहन्नला को युद्धक्षेत्र और कर्मक्षेत्र से तटस्थ एक पाखंडी चरित्र के रूप में उपस्थित किया है । नवयुग लाने के लिए जब उसके चारों भाई लड रहे थे तब स्वयं वह घबराकर किनारे खडा रहता है । वह रणभूमि में रक्तसने, बेबस, दम तोडते शवों के गहने और कपडे लूटने के लिए जाता दर्शाया गया है । पुराण सम्मत अर्जुन के संबन्ध में बृहन्नला का वक्तव्य है कि अर्जुन ने अपने पौरुष का आख्यान बूढे व्यास के पाँव पकडकर, सुबह-शाम उसके यहाँ जा-जाकर लिखाया है । यहाँ कवि का ध्येय आधुनिक रचनाकार है । आज के चाटुकार रचयिताओं पर भारती ने व्यंग्य का तीर चलाया है । उनकी दृष्टि में आधुनिक रचनाकार भीरु और नपुंसक है और वह जीवन संघर्ष से दूर रहता है । वह बृहन्नला-नीति अपनाता है ।

---

1. सात गीत-वर्ष - भारती, पृ: 34.
2. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 82.

सार्थक विचारों का अन्वेषण

"सात गीत-वर्ष" में ऐसी अनेक कविताएँ हैं जिनमें जीवन के प्रति यथार्थ, स्वस्थ एवं रचनात्मक दृष्टि अपनायी गयी है । 'प्रमथ्यु गाथा', संक्रान्ति,' पराजित पीढी का गीत,' 'कौन चरण,' 'आस्था,' 'निर्माण-योजना,' 'गुलाम बनानेवाले,' 'एक वाक्य,' 'बाणभट्ट,' 'टूटा पहिया,' 'एक अवतार में' इत्यादि ऐसी कविताएँ हैं । इन कविताओं में कवि की आस्थावादी और मानवतावादी दृष्टि भी उजागर हुई है ।

'प्रमथ्यु गाथा' यूनानी मिथक पर आधारित एक लंबी कविता है । "प्रमथ्यु एक यूनानी पुराण-पुरुष है जो सृष्टि के आरंभ में पहली बार स्वर्ग से, द्युपितर के महलों से मनुष्यों के त्राण के लिए अग्नि हर लाया था । दण्डस्वरूप द्युपितर ने उसे एक शिला से बँधवा दिया था और एक गिद्ध निरन्तर उसके हृदयपिण्ड को खाते रहने के लिए तैनात कर दिया गया था । प्रस्तुत रचना में प्रमथ्यु द्युपितर, अग्नि, गृद्ध सभी अपना-अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं ।"[1] इनके साथ जन-साधारण का वक्तव्य भी है । इन वक्तव्यों से युगबोध का परिचय होता है । दासता, कायरता, भय, आतंक और अंधेरे से भरे जीवन में अपनी प्रतिभा से प्रकाश लानेवालों को प्रमथ्यु की तरह साहस करना और पीडा भोगनी पडती है । सोक्रेटिस, गलीलियो, मार्टिन लूथर किंग, महात्मा गाँधी जैसे लीक से हटकर चले महारथियों का अनुभव प्रमथ्यु से भिन्न नहीं रहा है ।

प्रमथ्यु जन-साधारण के लिए और मानव-कल्याण के लिए अग्नि लाता है । लेकिन जन-साधारण ज्ञान, प्रकाश, स्वतंत्रता एवं मुक्ति की प्रतीक अग्नि का उपयोग सुबह-शाम चूल्हा सुलगाने, शय्या गरमाने, सोना गलाने और अपने पडोसी का सारा घर फूँकने के लिए कर रहा है । संवेदना, मानवीय गौरव एवं चेतना के विकास के लिए उपयुक्त अग्नि का वे दुरुपयोग करते हैं । यहाँ, भारत की स्वतंत्रता, विज्ञान का दुरुपयोग जैसे विषयों की ओर कवि हमारा ध्यान आकृष्ट करता है । जन-साधारण की इस प्रवृत्ति पर प्रमथ्यु को शिकायत है -

---

1. सात गीत-वर्ष, पृ: 18.

"जिसमें नहीं है साहस प्रमथ्यु बनने का
उसको बिना पीडा के मिल जानेवाली अग्नि
मांजती नहीं है
और पशु ही बनाती है ।
अग्नि मिलने पर भी
वे सब पशु के पशु हैं ।"[1]

जन-साधारण इतने स्वार्थी, विलासी एवं तमाशबीन हैं कि उन्हें प्रमथ्यु के प्रति कोई सहानुभूति नहीं हैं । उनके लिए प्रमथ्यु की पीडा केवल एक तमाशा है । गृद्ध द्वारा प्रमथ्यु के हृदयपिण्ड को नोचने और रात को उसकी देह पूर्ववत् हो जाने के दृश्य देखने मात्र के लिए जन-साधारण उसके पास जाता है । वे केवल करिश्मों के प्यासे हैं । वे इतने स्वार्थ, कृतघ्न और अकर्मण्य हैं कि -

"अग्नि नहीं थी जब
तब हमने नहीं कहा
कि जाओ अग्नि लाओ तुम
और अग्नि जब आई
हमने नहीं कहा कि अग्नि नहीं लेंगे हम ।"[2]

इसप्रकार कवि समाज की मनःस्थिति का नग्न चित्र उपस्थित करते हैं ।

प्रमथ्यु का मांस खानेवाले 'गृद्ध' का कहना है कि सबसे पहले उसने अग्नि देखी थी और उसके पंख भी थे । लेकिन साहस की कमी के कारण वह उसे ला न सका । उसने ही प्रमथ्यु को अग्नि लाने के लिए प्रेरित किया । "गृद्ध उन गुरुजनों का प्रतीक है जो सद्भावना युक्त हैं परन्तु स्वयं निःशक्त हैं और कायर भी । ये साहसिकों को विचारों से उत्प्रेरित करते हैं परन्तु इनके अस्तित्व का मूल्य एवं महत्व साहसी शिष्यों के खून पर ही निर्भर है ।

---

1. सात गीत-वर्ष, पृः 25.
2. वही - पृः 21-22.

यह कुछ ऐसी स्थिति है जो कौरवों का अन्न खानेवाले भीष्म और द्रोण की है जो न्याय और सत्य का साथ नहीं दे सके परन्तु जिनका महत्व कर्ण और अर्जुन द्वारा बहाए खून पर टिका है । ज्ञानी परन्तु कायर चिन्तकों की या बुद्धिजीवियों की स्थिति को यह गृद्ध प्रतिकित करता है ।"[1]

जनसाधारण की तमाशबीन मिज़ाज पर शिकायती प्रमथ्यु में उनके प्रति घृणा नहीं है । उसे जनसाधारण की शक्ति में विश्वास है -

"ये जो जन है, साधारण जन है
उनमें से एक-एक के अन्दर
मूर्छित प्रमथ्यु कहीं बन्दी है !
अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का

कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीडा-सिक्त स्वर
उसके मन को बेध मूर्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे ।
उस दिन
हाँ, उस दिन
अकेला मैं रहूँगा नहीं
सबके हृदयों में मैं जगूँगा ।"[2]

सचमुच "धर्मवीर भारती ने अपनी "प्रमथ्यु गाथा" कविता में इस पुरा पात्र के माध्यम से प्रत्येक युग की समाज चेतना के साथ वर्तमान के समाज की मानसिक स्थितियों को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है ।"[3]

---

1. कविता की तलाश-चन्द्रकांत बांदिवडेकर, पृ: 96.
2. सात गीत-वर्ष, पृ: 27-28.
3. कविता कालयात्रिक - डॉ. लक्ष्मीनारायण, पृ: 51.

'पराजित पीढी का गीत' में कवि का मन द्वन्द्वग्रस्त होने पर भी मनुष्य को विराट शक्ति में विश्वास रखता है -

"हम सबके दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ ।
हम सब सैनिक अपराजेय !"[1]

इसीप्रकार "टूटा पहिया" में कवि नगण्य और त्यक्त समझे जानेवाले व्यक्ति को भी महत्वपूर्ण स्थान देता है । अक्षौहिणी सेनाओं से घिरे अभिमन्यु के हाथों में ब्रह्मास्त्रों से लोहा लेने के लिए रथ का टूटा हुआ पहिया मात्र है । अतः "टूटे पहिये" की उपेक्षा न करके उसे उचित स्थान देना चाहिए । लघु मानव की अभिव्यक्ति नयी कविता की भी एक विशेषता है । जीवन के प्रति अटल आस्था का स्वर 'आस्था' शीर्षक लघु कविता में मुखरित होता है । रात के अंधेरे में वह निडर इस विश्वास के साथ जी रहा है कि कमल की तरह खिलेगा, सूर्य की तरह उदित होगा और जीवन पथ पर आगे बढेगा । तब उनके साथ वे सारे मूल्य होंगे जिन्हें रात ने भटका दिया ।

"बाणभट्ट" में कवि इतिहास पात्र बाणभट्ट के माध्यम से उन आधुनिक साहित्यकारों पर तीखा व्यंग्य करता है जिनका शब्द कूटज्ञों, वधिकों, नगरसेठों और वेश्याओं के सामने बिका हुआ है । बाणभट्ट राजा हर्षवर्धन का राजकवि था । उनके लिए जीवन-सत्य से बडा सत्य हर्षवर्धन ही था । उसी तरह आधुनिक साहित्यकारों के लिए -

"सत्य है एक मणिजटित दुपट्टा, एक
मुद्रा-मंजूषा, एक पालकी !
सत्य है आत्मा पर थोपी हुई सीमाएँ
सीने के जाल की !

---

1. सात गीत-वर्ष, पृः 44.

सत्य है कूटज्ञों, वधिकों, नगरसेठों, वेश्याओं के आगे
बिके हुए शब्दों की यह क्रीडा
सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथों से मिला हुआ
पान का सुगन्धित एक लघु बीडा ।"[1]

कवि इसपर निराश एवं विवश है । इसलिए वह "एक वाक्य" में विश्वास के साथ लिखता है -

"चेक बुक हो पीली या लाल
दाम सिक्के हो या शोहरत
कह दो उनसे
जो खरीदने आये हों तुम्हें
हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता है ।"[2]

'निर्माण योजना' और 'गुलाम बनानेवाले' शीर्षक कविताओं में समता, भाईचारा और लोकतंत्र का स्वर मुखरित है ।

वस्तुतः भारती की कविताएँ "विषयगत आन्तरिक समानता और बाह्याकार की एक रूपता के बावजूद उसकी काव्य चेतना वस्तु या कथ्य के नये तेवर को, स्ट्रक्चर और टैक्स्चर के तनाव को, एक निजी कोण पर तराशती-तलाशती है , समष्टि-चेतना के धरातल पर मानव की आदिम जिजीविषा और सिसृक्षा को निरन्तरता का आयाम और समसामयिकता का संदर्भ देती हैं ।"[3]

---

1. सात गीत-वर्ष, पृः 88.
2. वही - पृः 86.
3. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृः 76.

प्रकृतिचित्रण

भारती के दोनों संकलनों की कविताओं में अनेक प्रसंगों पर प्रकृति की सहजाभिव्यक्ति हुई है । प्रकृति की आड में अपने मन के भावों को प्रकट करने का प्रयास उन्होंने किया है । भारती ने प्रकृति को अधिकतर रोमानी दृष्टि से देखा है । प्रकृति के भावचित्रों में रूपसौंदर्य तथा प्रणय की आकांक्षा व्यंजित की गई है । ठंडा लोहा संकलन की 'तुम', 'पावस गीत' जैसी अनेक कविताओं में प्रकृति के ज़रिए प्रिया के रूप सौंदर्य का चित्रण मिलता है । 'तुम' की पंक्तियों हैं -

"नैन में मंजुल शिशिर प्रभात
वक्ष-स्पन्दन में झंझावत
खुले ये काले-काले केस
सघन घन अलकों में बरसात

सघन घन अलकों में बरसात
कँवल पर ज्यों भँवरों की पाँत
सुनहली संध्या के चहुँ ओर
नसीली गीली काली रात"[1]

"सात गीत-वर्ष" की 'घाटी का बादल', 'नवम्बर की दोपहर', 'साँझ का बादल' आदि कविताओं में भी प्रकृति का आलंकारिक और उद्दीपन रूप देख सकते हैं । प्रकृति के रोमान्टिक एवं मादक चित्रण से भारती की कविताओं में काफी मांसलता आ गयी है ।

प्रकृति का मानवीकरण दोनों संकलनों में हुआ है -

---

1. ठंडा लोहा, पृ: 27.

"दूर तक फैली हुई
मासूम धरती की
सुहागन गोद में सोये हुए
नवजात शिशु के नेत्र-सी
इस शान्त नीली झील
के तट पर
चल रहा हूँ मैं ।"[1]

"अन्धी घाटी में भयभीत भेड के समान
पृथ्वी यह
अंधियारे में थी सहमी खडी"[2]

'घाटी का बादल' में प्रकृति के माध्यम से आस्था की अभिव्यक्ति भी हुई है -

"धीरे धीरे परतें कटने लगीं धूम की
यहाँ वहाँ पर
पिघले सोने के पानी सी
धूप टपकने लगी
गाँव खिल गये फूल से"[3]

भारती ने 'बसन्ती दिन' 'कोहरे भरी सुबह' 'नवम्बर की दोपहर' जैसी शुद्ध प्रकृति से संबन्धित कविताएँ भी लिखी हैं । मेघ, सूर्य, तरंग, नदी, शाम, दोपहर, जूही की कली आदि प्राकृतिक चित्रों को इन कविताओं में विशेष स्थान प्राप्त हुआ है । प्रकृति चित्रण में कहीं छायावादिता है, कहीं अभिनव प्रस्फुटन और कहीं वह बोझिल भी हो गया है ।

---

1. ठण्डा लोहा, पृ: 76.
2. सात गीत-वर्ष, पृ: 20.
3. वही, पृ: 142.

भाषिक संरचना

"ठंडा लोहा" तथा "सात गीत-वर्ष" की अधिकतर कविताएँ प्रेम और रोमान्स से संपन्न हैं । जीवन के वास्तविक पक्ष की अभिव्यक्ति भी कुछ कविताओं में है । कविता की वस्तु चाहे जो भी हो, उसके अनुरूप भाषा-प्रयोग में भारती सिद्ध हस्त हैं । "भाषा के प्रश्न को कभी भारती ने अधिक महत्व नहीं दिया । भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिए, बस । न तो पत्थर का ढोंका बनकर कविता के गले में लटक जाये और न रेशम का जाल बन कर उसकी पाँखों में उलझ जाये ।"[1] "भारती की काव्य-भाषा संवेदना के प्रति समर्पित काव्य भाषा"[2] है । "भारती की काव्य-संवेदना मूलतः रूमानी है, जिसके दो पहलू हैं मादकता और दर्द । एक ओर उनके उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के मांसल गीतों के मूल में मादकता की संवेदना है, दूसरी आरे रूमान के उदासी-भरे स्वरों के मूल में दर्द की संवेदना । राग और कल्पना ने मिल-जुल कर इन संवेदनाओं को रंग-बिरंगी चित्रात्मकता से समन्वित स्वर दिये हैं । उनकी काव्य-भाषा में एक ओर मादकता के उन्माद शब्दों और उसकी लयकारी का ठाठ है, तो दूसरी ओर दर्द की नमी और तडप का सैलाब ।"[3]

दर्दीली भाषा

"ठण्डा लोहा" की 'प्रतिध्वनि' शीर्षक कविता की भाषा में दुख और दर्द का सागर उमड पडता है -

"यह थके कदम, यह हवा सर्द
यह जख्म चीरता हुआ दर्द

---

1. दूसरा सप्तक - सं. अज्ञेय, पृ: 167.
2. भारती की काव्य-भाषा - डॉ. पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु
3. वही - पृ: 18.

तो क्या है यह जिन्दगी, न जिससे मिलता कोई छुटकारा?

क्या कभी जिन्दगी में पल-भर भी राहत पाना मुमकिन है?
{प्रतिध्वनि} नामुमकिन है !
नामुमकिन है !"[1]

बातचीत की भाषा

बातचीत की भाषा का प्रयोग इनकी एक खूबी है जिससे कविता सहज और आत्मीय बन पडी है । "नयी कविता में न केवल" गद्य और पद्य" की भाषा की अभीष्ट निकटता घटित हुई है वरन् उसमें गद्य और पद्य स्वयं एक दूसरे के इतना निकट आ गये हैं कि दोनों की विभाजक रेखा कहीं-कहीं सर्वथा विलुप्त होती हुई दिखाई देती है ।"[2] "सात गीत-वर्ष" की 'प्रमथ्यु गाथा', 'बातें' के अतिरिक्त "ठण्डा लोहा" के 'कच्ची साँसों का इसरार,' 'मुग्धा,' 'बातचीत का टुकडा' आदि इसका स्पष्ट उदाहरण है ।

"पर यह क्या पागल !
मैं बेहतर हूँ, सुख से हूँ,
फिर इसमें ऐसी कौन बात है रोने की?
जाने दो,
लो यह चाय पियो !"[3]

"प्रमथ्यु गाथा की संरचना का सबसे सशक्त तत्व है साहचर्य अर्थात् जक्सटेपोजीशन । एक ही काव्य-कथ्य को विभिन्न पात्रों के संवादों में उतार कर भारती ने निस्संदेह साहचर्य शिल्प का कुशल और प्रभावी उपयोग किया है ।"[4]

---

1. ठण्डा लोहा, पृ: 71.
2. कवितान्तर - डॉ. जगदीश गुप्त, पृ: 55.
3. ठण्डा लोहा, पृ: 75.
4. लंबी कविताओं का रचनाविधान - सं. नरेन्द्र मोहन, पृ: 76.

साधारण और सांस्कृतिक भाषा

जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त शब्दों, उर्दू, फारसी और अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भारती की कविताओं में यत्र-तत्र देख सकते हैं । हमारी परंपरा या संस्कार से संबद्ध प्रभु, देवता, आत्मा, अर्चना, बांसुरी, स्वर्ग, आरती, गंगा-जमुना आदि शब्दों का प्रयोग भी कम नहीं है ।

इतिहास और पुराणों से वस्तुग्रहण

कथ्य-संप्रेषण या संवेदना के फैलाव के लिए कवि ने पौराणिक और ऐतिहासिक संदर्भों का प्रयोग किया है । 'प्रमथ्यु गाथा', 'बृहन्नला', 'टूटा पहिया', 'एक अवतार में,' 'बाणभट्ट' इत्यादि कविताएँ ऐसी हैं । 'प्रमथ्यु गाथा' यूनानी मिथक पात्र प्रमथ्यु द्वारा सृष्टि के आरंभ में स्वर्गाधिपति द्युपितर के यहाँ से अग्नि चुरा लाने की कथा है । 'बृहन्नला' पाण्डवों का अज्ञातवास और अर्जुन के नपुंसक रूप पर आधारित कविता है । महाभारत युद्ध में अक्षौहिणी सेनाओं से घिरे निहत्थे अभिमन्यु रथ के टूटे पहिये से कौरवों का सामना करता है 'टूट पहिया' कविता में । विष्णु के कछुआ अवतार पर आधारित कविता है 'एक अवतार में । ऐतिहासिक पात्र बाणभट्ट को केन्द्र में रखकर लिखी कविता है 'बाणभट्ट' ।

अलंकार-योजना

भारती ने अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक विरोधाभास जैसे अलंकारों के प्रयोग से कविता का सौन्दर्य बढाया है । उपमा उनका प्रिय अलंकार है जिसका प्रयोग सर्वत्र देख सकते हैं -

"तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास ।

मुँह पर ढंक लेती हो आँचल
ज्यों डूब रहे रवि पर बादल"
जार्जेट के पीले पल्ले सी यह दोपहर नवंबर की !"[1]

उत्प्रेक्षा:

"सूनी गहन गुफाओं-सी पलकों में केवल
सात रंग के चमगादड-से
गन्दे सपने उडते-फिरते
अन्धे सपने उडते-फिरते
उडते फिरते !"[2]

(मेरी पर छाँही)

सात गीत-वर्ष की 'अन्धेरे का फूल' रूपकात्मक कविता है -

"रात आधी बीतने पर
डूब जाता चाँद
एक बहुत विशाल जादू-फूल खिलता है
अन्धेरे का ..."[3]

'घाटी का बादल' 'उपलब्धि' जैसी कविताओं में विरोधाभास अलंकार दृष्टव्य है -

"शेष बचा हूँ केवल मैं
या मेरे चारों ओर दूर तक फैला हुआ सफेद अन्धेरा"[4]

(घाटी का बादल)

---

1. सात गीत-वर्ष, पृ: 31.
2. ठण्डा लोहा, पृ: 82.
3. सात गीत-वर्ष, पृ: 112.
4. वही - पृ: 139.

"देखो मुझे
हाय मैं हूँ वह सूर्य
जिसे भरी दोपहर में
अंधियारे ने तोड दिया"[1]

§उपलब्धि§

भारती की भाषा की एक और खूबी है शब्दों, वाक्यांशों और उक्तियों का दुहराव । इसप्रकार पुनरुक्ति से भावों की अभिव्यक्ति में गहनता आयी है । 'कवि और अनजान पगध्वनियाँ' कविता में ऊब और उदासी का चित्रण देखिए -

"लेकिन मेरा अभिशाप यही
हैं साधन मुझको मिले सभी कुछ कहने को
लेकिन मेरी आत्मा में अब
कुछ नहीं रहा है कहने को !
कुछ नहीं रहा है कहने को !
कुछ नहीं रहा है कहने को !"[2]

"ठण्डा लोहा" और "सात गीत-वर्ष" की कविताएँ मुक्त छन्द की हैं । एक खास लयात्मकता उनमें विद्यमान है -

"हम सब के दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ ।"[3]

§पराजित पीढी का गीत§

---

1. सात गीत-वर्ष, पृ: 70.
2. ठण्डा लोहा, पृ: 55.
3. सात गीत-वर्ष, पृ: 42.

नाट्यात्मकता

"सात गीत-वर्ष' की 'प्रमथ्यु गाथा', 'बाणभट्ट', 'घाटी का बादल' जैसी कविताएँ नाट्यात्मक हैं । 'प्रमथ्यु गाथा' में तो प्रमथ्यु, द्युपितर, जन-साधारण, अग्नि, गृद्ध आदि को कथा पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया है । वे अपना वक्तव्य भी प्रस्तुत करते हैं ।

बिंब-विधान

बिंबात्मकता भारती की भाषा की एक उल्लेखनीय खूबी है । उनकी कविताओं में विविध प्रकार के बिंब काफी मिलते हैं । श्री॰ शीतांशु लिखते हैं - "इन्द्रियग्राह्य संवेदना के कवि होने के कारण जहाँ भारती की काव्य-भाषा में ऐंद्रियता का प्रबल आग्रह है वहाँ उनका बिंब-सर्जन भी प्राथमिक रूप में ऐन्द्रियक (सेन्स्यूअस) है । बिंबों का यह ऐन्द्रियक उभार उनकी काव्य-भाषा में चाक्षुष, श्रौत, स्पर्श, घ्रातव्य और आस्वाद्य-पांच रूपों में प्राप्त होता है । किसी-किसी स्थल पर तो एकाधिक ऐन्द्रियक संवेदनाओं को मुखर करनेवाली इसकी चित्रपट्टी-सी ही सज गयी है ।"[1] "ठंडा लोहा" संकलन की 'फीरोज़ी होठ', 'उदास तुम', 'तुम्हारे चरण', 'बेला महका', 'गुनाह का गीत' जैसी कविताओं में इन्द्रियग्राह्य बिंबों की भरमार है । इसके अतिरिक्त उनकी कविता में अनेक प्राकृतिक बिंब, दृश्य बिंब एवं पौराणिक बिंब भी हैं । "सात गीत-वर्ष में नवम्बर की दोपहर, फागुन के दिन की एक अनुभूति, मेघ दुपहरी, कस्बे की शाम, धूल भरी आँधी का गीत, रात अँधियारी हवा तेज़, यह ढलता दिन, शाम दो मनस्थितियाँ, ढीठ चाँदनी, दिन ढले की बारिश, चैत का एक दिन, दूसरे दिन सुबह जैसी अनेक कविताओं की कई-कई पंक्तियाँ बिंबों के हाव-भाव से भरी हैं । उनके इन बिंबों में कलियाँ, कोंपल, सौरभ, लाली, आम्रबौर, चन्दन, गुलाब, बेला, मेघ, घटा, बादल, पाटल, धूप, पुरवैया-झाड, हरियाली, कोहरा, झील, खेत, लता, पत्ती, नदी, झरने- सबका रूपांकन हुआ है ।"[2] ढीठ चाँदनी का प्राकृतिक बिंब है -

---

1. भारती की काव्य-भाषा - डॉ॰ पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु , पृ: 61.
2. वही - पृ: 62.

"आजकल तमाम रात
चाँदनी जगाती है
मुँह पर दे दे छींटे
अधखुले झरोखे से
अन्दर आ जाती है
दबे पाँव धोखे से"[1]

"सात गीत-वर्ष" की 'एक अवतार में' और "ठंडा लोहा" की 'कविता की मौत' में पौराणिक बिंबों का नियोजन हुआ है -

"याद आती है मुझे
भागवत की वह बडी मशहूर बात
जब कि ब्रज की एक गोपी
बेचने को दही निकली,
औ" कन्हैया की रसीली याद में
बिसर कर सुध-बुध
बन गयी थी खुद दही !"[2]

(कविता की मौत)

"आस्था का भाव कि मानवीय इतिहास में मूल्यों की रक्षा हृदय की कोमलता से संभव हुई है, एक अवतार में कच्छप अवतार की पुराण कथा के बिंबविधान से व्यक्त की गयी है ।"[3]

प्रतीक-प्रयोग

भारती ने अपनी कविता में प्रतीकों का प्रयोग भी किया है । बिंबों की अपेक्षा प्रतीक-प्रयोग कम हुआ है । पौराणिक संदर्भों के माध्यम से आधुनिकता की अभिव्यक्ति प्रतीक-पद्धति से हुआ है । "सात गीत-वर्ष" की 'प्रमथ्यु गाथा', 'बाणभट्ट,'

---

1. सात गीत-वर्ष, पृ: 118.
2. ठंडा लोहा, पृ: 44.
3. भारती का काव्य-रघुवंश, पृ: 23.

'बृहन्नला,' 'टूटा पहिया,' 'एक अवतार में' आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । 'प्रमथ्यु गाथा' का प्रमथ्यु साहस और धैर्य का प्रतीक है । बाणभट्ट और बृहन्नला उन साहित्यकारों के प्रतिरूप हैं जिनके सिर सत्ता और वैभव के सामने झुक गये हैं और मुँह पर मुहर लग गये हैं । "टूटा पहिया" नगण्य व्यक्ति का प्रतीक है । वह आस्था को भी व्यक्त करता है जिसके बल पर कोई व्यक्ति ब्रह्मास्त्रों से भी लोहा ले सकता है ।

'बाणभट्ट' और 'बृहन्नला' व्यंग्यात्मक कविताएँ हैं । इनमें जीवन के यथार्थ से दूर रहनेवाले मजूरी लेखकों पर व्यंग्य-बाण चलाया गया हैं ।

भारती की कविताओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि "भारती मूलतः सौंदर्य, प्रेम और यौवन के कवि हैं और उनकी समूची सृजना में प्रसाद की-सी रोमानी प्रवृत्ति, निराला की-सी स्वच्छन्द आवेगमयता और पंत की-सी चित्रयोजना उजागर हुई है । लेकिन विशेषता यह है कि उनकी कलात्मक चेतना समसामयिक परिवेश के संदर्भ में स्थापित हुई है ।"[1]

---

1. धर्मवीर भारती कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ - डॉ. ब्रजमोहन शर्मा, पृः 7.

कनुप्रिया : रागसंबन्ध की अभिनव अभिव्यक्ति

"कनुप्रिया" धर्मवीर भारती की सुप्रसिद्ध काव्य-कृति है । यह राधा-कृष्ण के प्रणय पर आधारित है । इसका रचनाकाल 1959 है । राधा-कृष्ण के प्रणय पर आधारित होने पर भी यह कृति नवीन संवेदना से युक्त है । ऊपरी दृष्टि से "कनुप्रिया" परंपरायुक्त है । क्योंकि पूरी रचना में कनुप्रिया {राधा} की तरल स्मृतियाँ, मनःस्थितियाँ और अनुभूतियाँ ही चित्रित की गयी हैं । कृष्ण के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की जाँच-परख का आधार राधा का सहज मन है । राधा ने सहज मन से जीवन जिया है । उसी सहज की कसौटी पर वह कृष्ण के समस्त जीवन को कसती है ।

भारती "कनुप्रिया" में उस क्षण की खोज करते हैं जहाँ, उन्हीं के शब्दों में - ऐसे भी क्षण होते हैं जब हमें लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है - महत्व उसका नहीं है - महत्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कृत होता है - चरम तन्मयता का क्षण जो एक स्तर पर सारे बाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ है, जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है - इस तरह कि समस्त बाह्य-अतीत, वर्तमान और भविष्य - सिमटकर उस क्षण में पुंजीभूत हो गया है, और हम हम नहीं रहे ।"[1] कवि पाठकों को कनुप्रिया की कोशोर्यसुलभ मनःस्थितियों के ज़रिए उस क्षण से साक्षात्कार कराते हैं ।

प्रस्तुत कृति में कवि युद्ध और संघर्ष के स्थान पर प्रणय की प्रतिष्ठा करता है । जहाँ युद्ध असफल होता है वहाँ प्रेम की जीत होती है । युद्ध के ज़रिए इतिहास-निर्माण के लिए निकले कृष्ण के प्रयत्न को राधा व्यर्थ सिद्ध करती है -

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - आमुख ।

"अन्त में तुम हारकर, लौटकर, थककर
मेरे वक्ष के गहराव में
अपना चौडा माथा रखकर
गहरी नींद में सो गये हो
और मेरे वक्ष का गहराव
समुद्र में बहता हुआ, बडा-सा ताजा क्वाँरा, मुलायम, गुलाबी
वटपत्र बन गया है ।"[1]

युग-प्रवर्तक कृष्ण का स्वरूप राधा की सहज कौशोर्यसुलभ आत्मविभोरता से मेल नहीं खाता । फिर भी वह उसको उसी सहजता के स्तर पर ही ग्रहण करती है । क्योंकि वह जानती है कि यही एकमात्र सत्य है । डॉ. कुमार विमल की दृष्टि में "इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें अतिप्रसिद्ध पौराणिक कथा या लोकप्रिय काव्यरूढि की तरह प्रयुक्त कथारूपक के सहारे आधुनिक मानव की युद्धोत्तर अवश स्थिति को कुरेद-कुरेद कर सामने रखा गया है । इसलिए कनुप्रिया में केवल युगल-विलास का परंपरित चित्रण नहीं है ।"[2]

"कनुप्रिया" में अथ से इति तक कनुप्रिया की कौशोर्य सुलभ मनःस्थितियाँ विद्यमान हैं । इसकी कथा मूलतः पौराणिक है । पौराणिक होने पर भी वह इतिवृत्तात्मक नहीं है । इसमें कनुप्रिया के भावात्मक जीवन का सूक्ष्मचित्रण किया गया है । कृष्ण की प्रिया राधा विवेक से अधिक तन्मयता में और इतिहास-निर्माण की अपेक्षा सहज जीवन में सार्थकता पाती है । असल में "कनुप्रिया" सहज और तन्मय जीवन की व्याख्या है जो राधा के प्रश्नों और आग्रहों से विकसित होती है । श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन के शब्दों में - "कनुप्रिया" में धर्मवीर भारती ने कृष्ण के प्रति राधा के प्रेम को जिस नये रूप में देखा है या दिखाना चाहा है उसका आधार केवल पुरानी बात को नये मुहावरे में ढालने का प्रयत्न भर नहीं है । भारती का

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती, पृः 74.
2. काव्यानुशीलन आधुनिक अत्याधुनिक - डॉ. कुमार विमल, पृः 134.

उद्देश्य इससे बडा है । क्योंकि वह राधा-कृष्ण के प्रेम को भी एक बृहत्तर रूप में देखते हैं - ऐसा रूप, जिसे देश-कालातीत कहा जा सकता है, क्योंकि वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक है ।"[1]

"कनुप्रिया" को पाँच भागों में विभक्त किया गया है - पूर्वराग, मंजरीपरिण्य, सृष्टि-संकल्प, इतिहास, समापन । लेकिन कृतिकार ने भूमिका में स्पष्ट किया है कि "काव्यबोध की दृष्टि से इसके तीन ही चरण हैं - इस कृति का काव्यबोध भी उन विकास-स्थितियों को उनकी ताजगी में ज्यों का त्यों रखने का प्रयास करता चलता है । "पूर्वराग" और मंजरी-परिणय उस विकास का प्रथम चरण, सृष्टि संकल्प द्वितीय चरण तथा महाभारत काल से जीवन के अन्त तक शासक, कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार कृष्ण के इतिहास निर्माण को कनुप्रिया की दृष्टि से देखनेवाले खण्ड - इतिहास तथा समापन इस विकास का तृतीय चरण चित्रित करते हैं ।"[2] इनमें कनुप्रिया की किशोर मनःस्थिति के ज़रिए कृष्ण के साथ जिये गये उसका जीवन एवं विप्रलब्धा नारी की आकुलता और आकांक्षा का यथार्थ चित्रण भी किया गया है ।

स्त्री-पुरुष संबन्ध का चिरंतन गीत

स्त्री और पुरुष का संबन्ध चिर पुरातन है । जीवन का मूल ही यह संबन्ध होता है । यह सार्वदेशिक और सार्वकालिक है । इसकी सफल अभिव्यक्ति "कनुप्रिया" में किया गया है । पौराणिक पात्र राधा और कृष्ण के माध्यम से कवि ने यह कार्य किया है । कृष्ण की जन्म-जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला की एकान्त संगिनी है राधा । वह अपने को कृष्ण के सामने पूर्ण रूप से समर्पण करती है ।

---

1. विवेक के रंग - सं. देवीशंकर अवस्थी, पृः 109.
2. कनुप्रिया, भूमिका ।

"कृष्ण को वह अपना रक्षक, बन्धु और सहोदर मानती है ।"[1] कनु ही उसका एकमात्र अंतरंग सखा है । अपने प्रियतम के पास जाते समय राधा का मुँह लाज से आरक्त हो जाता है और वह कहती है -

"मैं अक्सर तुमसे केवल तम के प्रगाढ परदे में मिली
जहाँ हाथ को हाथ नहीं सूझता था
मुझे तुमसे कितनी लाज आती थी,
पर हाय मुझे क्या मालूम था
कि इस वेला जब अपने को
अपने से छिपाने के लिए मेरे पास
कोई आवरण नहीं रहा
तुम मेरे जिस्म के एक-एक तार से
झंकार उठोगे
सुनो सच बतलाना मेरे स्वर्णिम संगीत
इस क्षण की प्रतीक्षा में तुम
कब से मुझमें छिपे सो रहे थे ।"[2]

कनु की प्रिया कभी कभी चरम साक्षात्कार के क्षणों में बिलकुल जड और निस्पन्द हो जाती है । यह जडता और निस्पन्दता उसकी लाज का ही परिणाम है । लाजवश वह साक्षात्कार के अनूठे क्षण से वंचित भी हो जाती है । फलतः एक मधुर भय, संशय, एक निर्व्याख्या वेदना और उदासी उसे घेर लेती हैं । प्रियतम के सामने अपने को न समर्पित कर सकने से नारी मन में ऐसे भावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है ।

सामाजिक बन्धनों से पीडित हैं मनुष्य, खासकर स्त्रियाँ । वे अपने मन के सहज भावों और आग्रहों को व्यक्त नहीं कर पातीं । उन्मुक्त आचरण की इच्छा मनुष्य में नैसर्गिक है । कनुप्रिया (रोमानियत) हरेक नारी के अन्तर्मन में रहती है ।

---

1. "कान्ह मेरा रक्षक है, मेरा बन्धु है
सहोदर है" (कनुप्रिया, पृः 34).
2. कनुप्रिया, पृः 13.

लेकिन अनेक कारणों से वह उसे बाहर प्रकट करने में असमर्थ है । भारती ने कनुप्रिया (राधा) के माध्यम से उन युवतियों को वाणी दी है जो सामाजिक वर्जनाओं के कारण अपने मन की भावनाएँ व्यक्त न कर सकतीं । "कनुप्रिया" के पूर्वराग और मंजरीपरिणय स्त्री सहज कोमल भावनाओं से भरे पडे हैं । पूर्वराग की राधा भोली-भाली सहज मुग्धा है । समस्त सृष्टि उसे कृष्णमय लगती है । वह यमुना की साँवली गहराई को कृष्ण के श्यामल, प्रगाढ आलिंगन मानती है । कृष्ण के अथाह आलिंगन में आबद्ध रहने के आग्रह से वह घण्टों जल में निहारती रहती है ।

"यह जो दोपहर के सन्नाटे में
यमुना के इस निर्जन घाट पर अपने सारे वस्त्र
किनारे रख
मैं घण्टों जल में निहारती हूँ

मानो यह यमुना की साँवली गहराई नहीं है
यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर
मुझे चारों ओर से कण-कण रोम-रोम
अपने श्यामल प्रगाढ अथाह आलिंगन में पोर-पोर
कसे हुए हो !"[1]

राधा गृहकाज से अलसाकर कदम्ब की छाया में शिथिल, अस्तव्यस्त, अनमनी-सी पडी रहती है । उसे कृष्ण के नील जलज तन की परिक्रमा देकर नाचते रहने की इच्छा है । पर लोकलाजवश राधा रास की रात कृष्ण के पास से लौट आती है । इस पर वह पश्चाताप करती है । हमेशा अपने प्रियतम के पास ही रहने के लिए स्त्रियाँ आकुल हैं । उनकी इस आकुलता को भारती ने यहाँ स्पष्ट किया

---

1. कनुप्रिया, पृ: 16.

कनुप्रिया का दृढ विश्वास है कि एक अज्ञात भय, अपरिचित संशय, आग्रह भरा गोपन और सुख के क्षणों में घिर आनेवाली उदासी को पारकर कृष्ण के पास जाएगी तो कृष्ण उसे अपनी लंबी चन्दन बाँहों में भरकर बेसुध कर देंगे । संयोगकाल में राधा से कृष्ण ने कहा था कि तुम्हारी शोख चंचल विद्युम्बित पलकें, तुम्हारे अधर, बाँहें, चरण, चम्पकवर्णी देह, अंग-प्रत्यंग पगडण्डियाँ मात्र हैं । ये सब प्रेम को जीवंत एवं विकासोन्मुख रखने का माध्यम मात्र हैं । लेकिन राधा इस महान तथ्य से अनभिज्ञ बावली लडकी है और वह इसका लौकिक अर्थ ही ले बैठती है । राधा के बावलेपन पर कृष्ण कभी खिन्न होता है, कभी चुप्पी साध लेता है और कभी हँसता है और राधा को प्यार से अपनी बाँहों में कस लेता है । अब राधा उस सुख के अनुभव के लिए बार-बार नादानी करने का निश्चय करती है । आगे वह कहती है -

"आम का वह बौर
मौसम का पहला बौर था
अछूता, ताजा, सर्वप्रथम !
मैं ने कितनी बार तुममें डूब-डूबकर कहा है
कि मेरे प्राण ! मुझे कितना गुमान है
कि मैं ने तुम्हें जो कुछ दिया है
वह सब अछूता था, ताजा था
सर्वप्रथम प्रस्फुटन था ।"[1]

अपने प्रियतम को समर्पित करनेवाली भेंट के प्रति प्रत्येक नारी सचेत रहती है । राधा के उपर्युक्त शब्दों में समस्त स्त्रियों की सतर्कता छलकती है । स्पष्ट है कि "कनुप्रिया" की राधा "न जयदेव की श्रृंगारप्रिय प्रेम प्रगल्भा नायिका है, न विद्यापति की काम-विमोहिता सौन्दर्यमूर्ति है, न ब्रज की गलियों में कृष्ण के साथ आँखमिचौनी में व्यस्त

---

1. कनुप्रिया, पृ: 30.

सूर की नवल किशोरी है, न बतरस को लालची हो कृष्ण की मुरली लुकाकर रखनेवाली बिहारी की वाक्पटु राधा है बल्कि उसकी अवतारणा इन सबसे भिन्न व्यक्तित्व की धारक राधा के रूप में हुई । वह युगीन संवेदना को वहन करनेवाली, तन्मयता के क्षण पर समस्त को कसनेवाली और मशीनी जीवन-मूल्यों को सर्वथा नकारनेवाली कनुप्रिया के रूप में हमारे समक्ष आई ।"[1]

कनुप्रिया (राधा) प्रेम का प्रतीक है । वह कृष्ण के जीवन की प्रेरणामूर्ति है । उसके सहयोग के बिना कृष्ण इतिहास को सार्थकता नहीं दे सकते । प्रिय को महान बनाने में प्रिया का हाथ सहारा देता है । पुरुष के उत्थान में नारी की सहयोग हमेशा रहता है । कनुप्रिया कृष्ण से कहती है -

"लेकिन जब तुम्हीं ने बन्धु
तेज से प्रदीप्त होकर इन्द्र को ललकारा है,
कालिय की खोज में विषैली यमुना को मथ डाला है
तो मुझे अकस्मात् लगा है
कि मेरे अंग-अंग से ज्योति फूटी पड रही है
तुम्हारी शक्ति तो मैं ही हूँ ।"[2]

कनुप्रिया समझती है कि वह कनु का संबल है, उसकी योगमाया है , इस निखिल पारावार में वह शक्ति-सी, ज्योति-सी, गति-सी फैली हुई है । वह अनन्त काल से अनन्त दिशाओं में कनु के साथ चलती चली आ रही दिग्वधू है, कालवधू है । वह अनन्त काल तक इसी रूप में चलती चली जाएँगी । वह कृष्ण को संबोधित कहती है कि "तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व का अर्थ तुम्हारी सृष्टि मात्र है । तुम्हारी संपूर्ण सृष्टि का अर्थ तुम्हारी इच्छा मात्र है और तुम्हारी संपूर्ण इच्छा का अर्थ केवल मैं ही हूँ ।"[3] राधा अपने को

---

1. धर्मवीर भारती कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ - डॉ. ब्रजमोहन शर्मा, पृ: 63.
2. कनुप्रिया, पृ: 36.
3. वही - पृ: 44.

'सृजन-संगिनी' में प्रकृति ही मानती है । उसका नारी मन कभी-कभी उसे सशंकित बना देता है । 'आदिम भय' से मुक्ति मिलने पर वह 'केलिसखी' बनकर प्रत्यक्ष होती है और निखिल सृष्टि के अपार विस्तार में कनु के साथ ही रहती है ।

पाण्डव-कौरव युद्ध में कृष्ण कभी मध्यस्थ रहा है कभी तटस्थ और कभी युद्धरत भी । इन सभी स्थितियों से वह थककर खिन्न, उदासीन और विस्मित हो जाता है । वह अन्त में राधा के कन्धों से टिककर बैठ जाता है और तसल्ली का अनुभव करता है । कनुप्रिया (राधा) कृष्ण के व्यक्तित्व लीलाभूमि और युद्धक्षेत्र में खण्डित या विभाजित होने से बचाती है । राधा कृष्ण के इन दो व्यक्तित्वों के बीच सेतु के रूप में है ।

"कनुप्रिया" की राधा अपने स्वत्व को पहचानती है । उसे अपने महत्व की पूर्ण जानकारी होती है । अकेले कृष्ण के इतिहास-निर्माण को कनुप्रिया अर्थहीन मानती है । राधा को इतिहास में गूँथने से कृष्ण हिचकता है । इसपर राधा प्रश्नचिह्न लगाती है । प्रगाढ केलिक्षणों में राधा को बाँहों में गूँथनेवाला कृष्ण इतिहास-निर्माण के समय उसकी उपेक्षा करता है । अब राधा जन्मान्तरों की पगडण्डी के कठिनतम मोड पर कृष्ण की प्रतीक्षा कर रही है कि इतिहास बनाते समय कृष्ण अकेले न छूट जाए । यहाँ कनुप्रिया (राधा) ने आत्मबोध से परिपूर्ण आधुनिक नारी का रूप धारण किया है । "कनुप्रिया" की राधा का कमाल इसमें है कि वह रसवन्ती और प्रेममयी होकर भी अन्तः प्रज्ञ है , अपने अस्तित्व, व्यक्तित्व और महत्व के प्रति प्रबुद्ध है तथा समर्पण या आत्मप्रपत्ति के बाद भी मीनमेख और मनःकूत कर सकती है ।"[1]

"कनुप्रिया" की राधा और कृष्ण में नर-नारी संबन्ध का शाश्वत रूप देख सकता हैं । भारती ने स्त्री-पुरुष के चिरंतन संबन्ध का पर्यालोचन ईमानदारी से किया है । कवि ने राधा-कृष्ण को सामान्य नर-नारी के रूप में प्रस्तुत करते समय भी

---

1. काव्यानुशीलन आधुनिक अत्याधुनिक - डॉ. कुमारविमल, पृ: 134.

उनके अलौकिक स्वरूप की उपेक्षा नहीं की है । श्री॰ रमेश कुंतल मेघ ने राधा के स्वरूप के संबन्ध में कहा है कि "कनुप्रिया {राधा} वैष्णव राधा, आधुनिक रोमांटिक राधा और त्रिपुरसुंदरी राधा है । किंवा वह इन तीनों की कान्तमैत्री है । इन स्वरूपों के अंकित करने में रचयिता ने सिद्धरति से वैष्णव समर्पणभक्ति तथा अस्तित्ववादी क्षण भोग तक का प्रयाण किया है ।"[1] "कनुप्रिया" में राधा का व्यक्तित्व कौशोर्यसुलभ मनःस्थिति से उपजकर धीरे-धीरे विकसित हुआ है । "पूर्वराग", "मंजरीपरिणय", "सृष्टि-संकल्प", "इतिहास" और "समापन" उसके व्यक्तित्व का विविध सोपान है ।

युद्ध से टूटते व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

धर्मवीर भारती ने "कनुप्रिया" में राधा की सहज तन्मयता के क्षणों को चित्रित किया है । महाभारतयुद्ध में कृष्ण की भूमिका को राधा तन्मयता के माध्यम से आंकती है । युद्धरत कृष्ण के व्यक्तित्व को सहजता की कसौटी पर कसना विरोधाभास लगने पर भी असंगत नहीं है । क्योंकि "प्रभु का व्यक्तित्व ही इसीलिए असाधारण है कि वह दोनों विरोधी स्थितियाँ बिना किसी सामंजस्य के जी सकने में समर्थ हैं ।"[2] कृष्ण के संबन्ध में श्री विश्वंभरनाथ उपाध्याय लिखते हैं - "कृष्ण की कल्पना पूर्णपुरुष के रूप में की गयी है, इसलिए वह ज्ञान और प्रेम दोनों के आधार हैं । वह गीता रचते है और साथ ही वह ललित कलाओं और कोमल वृत्तियों के स्रोत भी हैं । वह एक साथ सहज और जटिल हैं, मेधावी और सरल हैं, विजेता और "रणछोड" हैं, राजा और ग्वाल हैं, दुराचारी और योगी हैं, कामी और संयमी हैं । दरिद्रता और समृद्धि, अपमान और सम्मान, अलगाव और प्यार सभी विरोधी तत्वों और शक्तियों का उनमें अधिष्ठान दिखाया गया है ।"[3]

---

1. क्योंकि समय एक शब्द है - रमेश कुंतल मेघ, पृ: 443.
2. कनुप्रिया, भूमिका ।
3. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 180.

महायुद्ध की विभीषिका में व्यक्ति के अकेलापन की तीव्र अभिव्यक्ति कनुप्रिया (राधा) के माध्यम से हुई है। वह उन अनेक प्रियतमाओं का प्रतीक है जो समूची इतिहास-प्रक्रिया से अकेली पीछे छूट गयी है। कनुप्रिया कदम्ब के नीचे खडे कनु को प्रणाम करने के लिए जाती थी। लेकिन आज उस रास्ते से कृष्ण की अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ लता-कुंज को रौंदते, धूल फैलाते हुए युद्ध में भाग लेने जा रही हैं। जिस आम्रवृक्ष की डाल पर टिक कनु ने राधा को बुलाया था उस आम की डाल सदा के लिए काट दी जाएगी। क्योंकि कृष्ण के सेनापतियों के वायुवेगगामी रथों की गगनचुम्बी ध्वजाओं में यह नीची डाल न अटकें। राधा पथ के किनारे खडा छायादार पावन अशोक-वृक्ष खण्ड-खण्ड हो जाने पर चिंतित है। यदि ग्रामवासी सेनाओं के स्वागत में तोरण नहीं सजायें तो आशंका है, सारा ग्राम ही उखाड दिया जाय। युद्ध के इस भीड-भाड में कनुप्रिया और उसका प्यार नितांत अपरिचित हो गया है। जमुना में कनुप्रिया अपने को घण्टों निहारा करती थी। वहाँ अब रोज़ शस्त्रों से लदी हुई अगणित नौकाओं की पंक्ति ही है। वह पूछती है -

"हारी हुई सेनाएँ, जीती हुई सेनाएँ
नभ को कंपाते हुए, युद्ध-घोष, क्रन्दन-स्वर,
भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई
अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएँ युद्ध की
क्या ये सब सार्थक हैं?
चारों दिशाओं से
उत्तर को उड-उडकर जाते हुए
गृद्धों को क्या तुम बुलाते हो
(जैसे बुलाते थे भटकी हुई गायों को)"[1]

---

1. कनुप्रिया, पृ: 68.

"कनुप्रिया" के इतिहास चरण में कृष्ण के शासक, कूटनीतिज्ञ और व्याख्याकार स्वरूप पर अधिक बल दिया गया है । अठारह अक्षौहिणी सेनाओं के अधिपति है कृष्ण । उसने कर्म, स्वधर्म, निर्णय और दायित्व की व्याख्या करते हुए अर्जुन को इसकी सार्थकता समझायी है । कृष्ण अपने पैताने जो है उसे स्वधर्म और जो उसके सिरहाने है उसे अधर्म मानते हुए जुए के पाँसे की तरह निर्णय को फेंक देता है और अपनी कूटनीति का परिचय देता है । लेकिन अन्त में कृष्ण भी विक्षिप्त दिखाई पडता है -

"समुद्र के किनारे
नारियल के कुंज हैं
और तुम एक बूढे पीपल के नीचे चुपचाप बैठे हो
मौन, परिशमित, विरक्त
और पहली बार जैसे तुम्हारी अक्षय तरुणाई पर
थकान छा रही है !
और चारों ओर
एक खिन्न दृष्टि से देखकर
एक गहरी साँस लेकर
तुमने असफल इतिहास को
जीर्णवसन की भाँति त्याग दिया है"[1]

यहाँ युद्ध की असफलता और उससे व्यक्तित्व के बिखराव की अभिव्यक्ति है ।

संबन्ध की तलाश और अस्मिता की तडप

"कनुप्रिया" की राधा जीवन के जटिल क्षणों की नहीं तन्मयता के अनूठे क्षणों की आराधिका है । उसके लिए प्रेम ही सबकुछ है । प्रेम की दृष्टि से ही वह सभी कार्यों को देखती है । कृष्ण के युद्ध में भाग लेने से उनके प्रेम में दरार पड जाती है ।

---

1. कनुप्रिया, पृ: 76.

राधा के मन में अनेक प्रश्न उठ खडे होते हैं । वह व्यक्ति (कृष्ण) से ही नहीं, अपने भोगे हुए यथार्थ से या अनुभव से भी प्रश्न पूछती है । उसकी यह प्रश्नाकुल मानसिकता अस्तित्वबोध की तडप है । मैं कौन हूँ? और आगे क्या है? यही बात है उसके प्रश्न के मूल में । जीवन की विसंगति से उत्पन्न ये प्रश्न अस्तित्व-चिंता की उपज हैं । "कनुप्रिया" की राधा समझती है कि कृष्ण ने स्वयं को महान बनाने की प्रक्रिया में उसकी उपेक्षा की है । वह बावली सी होकर प्रणय के क्षणों का स्मरण करती है । तन्मयता के क्षणों में कृष्ण के वक्ष में मुँह छिपाकर कही गयी बातें उसे अब निरर्थक-सी लगती हैं । कृष्ण के महान बनने में राधा का अस्तित्व और व्यक्तित्व टूटकर बिखर गये हैं । "राधा का चरित्र आध्यात्मिक और श्रृंगारिक स्वरूपों की भूल-भुलैयों से बाहर आकर अपनी सनातन उपेक्षा की व्यथा के विषैले घूँट को पचाकर, अपने अस्तित्व की रक्षा की सौम्य चाह प्रकट करनेवाली स्त्री के चरित्र के रूप में अंकित हो गया है ।"[1]

भारती के पाश्चात्य मस्तिष्क ने राधा को क्षणिक सुख-कांक्षी के रूप में प्रस्तुत करके क्षणवादियों को मान्यता दी है । कृष्ण के साथ बीते केलिक्षणों को कनुप्रिया महत्वपूर्ण मानती है ।

"कौन था वह
जिसके चरम साक्षात्कार का एक गहरा क्षण
सारे इतिहास से बडा था, सशक्त था ।"[2]

इसप्रकार क्षणजीविता के प्रति अभिनिवेश प्रकट करनेवाले कवि का भारतीय मानस उस क्षण को चिरंतन का परिवेष देता है और पाश्चात्य अस्तित्ववादियों की सीमा से बाहर आता दिखाई पडता है । अतः "कनुप्रिया" और उसकी राधा को पूर्ण रूप से पाश्चात्य अस्तित्ववाद से प्रभावित मानना उचित नहीं है ।

---

1. कनुप्रिया एक मूल्यांकन - सुलभा बाजीराव पाटील, पृः 88.
2. कनुप्रिया, पृः 58.

कनुप्रिया अन्धायुग की पूरक कृति

"अन्धायुग" के लेखन के चार वर्ष बाद "कनुप्रिया" का सृजन हुआ । 'अन्धायुग' में भारती ने युद्ध की समस्या को बौद्धिक धरातल पर उठाया है । महाभारत युद्ध को इसके लिए उन्होंने आधार बनाया है । "कनुप्रिया" का आधार भी पौराणिक है । लेकिन इसका धरातल नितांत रागात्मक है । प्रेम या रागतत्व की स्थापना रागात्मक ढंग से ही हो सकती है । भारती पूर्णता की तलाश करनेवाला सृजनात्मक साहित्यकार है । वह जानता है कि जीवन में बुद्धितत्व के समान रागतत्व भी है । मानवमूल्यों को चिरंतन बनाये रखने के लिए इन दोनों तत्वों का पूरक होना अनिवार्य है । इनमें एक का पलडा भारी होने पर जीवन का संतुलन ही बिगड जाएगा । भारती ने "कनुप्रिया" की भूमिका में इसको "अन्धायुग" का पूरक स्वीकार किया है । जहाँ "अन्धायुग" की मूलवृत्ति संशय या जिज्ञासा है , वहाँ "कनुप्रिया" की, भावाकुल तन्मयता है । दोनों कृतियों की समाप्ति पर अडिग आस्था का स्वर मुखरित होता है । "अन्धायुग" के अन्त में कृष्ण की मृत्यु को रूपांतर मात्र मानकर उसके बार-बार जीवित और सक्रिय हो उठने की सूचना दी गयी है ।

"पर एक तत्व है बीज रूप स्थित मन में
साहस में, स्वतन्त्रता में, नूतन सर्जन में

मानव-भविष्य को हरदम रहे बचाता ।"[1]

कनुप्रिया का अंत देखिए -

"मैं पगडण्डी के कठिनतम मोड पर
तुम्हारी प्रतीक्षा में
अडिग खडी हूँ कनु मेरे ।"[2]

---

1. अन्धायुग, पृ: 116.
2. कनुप्रिया, पृ: 79.

यहाँ कनुप्रिया प्रेम का प्रतीक है जो जीवन को आगे बढानेवाला तत्व है । "कनुप्रिया का अध्ययन भारती की प्रतिभा के साथ तभी वास्तविक न्याय कर सकता है, जब उसे "अन्धायुग" की उत्तरकृति के रूप में नहीं वरन् पूरक कृति के रूप में पढा जाए । कवि की ये दोनों कृतियाँ एक अनिवार्य युग्म हैं और इस रूप में वे आधुनिक युग की एक जटिल संवेदना को व्यक्त करती है । यह जटिल संवेदना है - व्यक्ति और इतिहास के पारस्परिक संबन्ध की, महायुद्ध के समक्ष एकाकी मनुष्य की अवशता की । इन नितांत आधुनिक समस्याओं का अनुभावन भारती की दोनों रचनाओं में पौराणिक कथा अभिप्रायों के माध्यम से हुआ है ।"[1] दोनों कृतियों में जीवन की विडंबना का चित्रण है, एक प्रकार की त्रासदीय दृष्टि विकसित होती है । लेकिन अंत एक मानववादी दृष्टिकोण से होता है । यह मानववाद विवृतात्मक नहीं है । यह मानववादी दृष्टि भारती के व्यक्तित्व का ही अटूट अंश है ।

दोनों कृतियों के पात्रों में अस्तित्व की तडप देख सकेते हैं । अस्तित्ववाद को स्वीकार करने या अस्वीकार करने की द्विविधाग्रस्त मानसिकता इन दोनों में देख सकते हैं । श्री जगदीश कुमार ने लिखा है कि "अन्धायुग" और "कनुप्रिया" का प्रणयन वैयक्तिकतावाद की सीमाओं में हुआ है । कवि ने इस आयातित चिंतन को पूरी तरह समझने और परिवेश के संदर्भ में परखने के बजाय बाज़ार में फेंकने की जल्दबाजी की है । फलतः उसकी दृष्टि नारों की सतह पर फिसलती रह गयी है । दृष्टि की इस असफलता ने उसकी सृजन-क्रिया को सार्थक नहीं होने दिया ।"[2] "कनुप्रिया" को "अन्धायुग" की पूरक कृति के रूप में स्वीकार करते हुए भारती ने स्पष्ट किया है कि "अन्धायुग लिखने के बाद मुझे लगा कि जीवन का एक पक्ष है जो इसमें नहीं उभर पाया और जो वहाँ उभर भी नहीं सकता था - इसलिए कि अंधायुग में एक युद्ध के संदर्भ में मनुष्य और मनुष्य के बीच जो रिश्ते हैं, उनमें अपने चुनाव, अपने विकल्प और संकल्प और अपनी निष्ठाओं के खिसकते हुए धरातल की बात की गयी थी । लेकिन एक कोई स्थल होता है जहाँ कि

---

1. कवितायात्रा रत्नाकर से रघुवीर सहाय - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृः 71-72.
2. नयी कविता विलायती संदर्भ - जगदीश कुमार, पृः 91.

मनुष्य कर्म से नहीं जुड़ता, बल्कि अपने अन्दर के भावोल्लास से जुड़ता है । वह भावोल्लासवाली स्थिति "अन्धायुग" में उभरने की कोई गुंजाइश नहीं थी । कृष्ण का जो चरित्र रहा है, उसके दो पक्ष हैं और दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । एक ओर वह योगिराज गीता के उपदेशक कृष्ण हैं और दूसरी ओर वह वृन्दावन के कृष्ण हैं । तो वृन्दावन में कृष्ण भावोल्लास के माध्यम से जिस व्यापक जीवन से जुड़े थे उसको व्यक्त करना चूँकि 'अंधायुग' में रह गया था इसलिए "कनुप्रिया" लिखनी मुझे आवश्यक लगी ।"[1]

काव्य-रूप

"कनुप्रिया" का काव्य-रूप काफी विवादास्पद है । कुछ विद्वान इसे प्रबन्धकाव्य मानते हैं, कुछ खण्डकाव्य । कुछ तो इसे गीतिकाव्य स्थापित करते हैं तो कुछ नाट्य-एकालाप । प्रस्तुत कृति का प्रतिपाद्य राधा और कृष्ण का प्रणय है । वह प्रबन्धकाव्य की प्रचलित मान्यताओं का निराकरण करती है । इसमें कोई स्थूल सुबद्ध कथावस्तु नहीं है । "कनुप्रिया में आद्यन्त हल्की-सी सही, कथात्मकता अवश्य है पर घटनाओं का तीव्र उत्थान-पतन, आरोहण-अवरोहण, उतार-चढाव उस सीमा तक प्रकट नहीं हो पाया जिस सीमा तक वांछनीय है । घटनाओं के घात-प्रतिघात के अतिरिक्त पूर्वापर प्रसंगनियोजन भी "कनुप्रिया" में दृष्टिगत नहीं होता । घटनाओं के नियोजन एवं अपेक्षित प्रसंगों की कल्पना के संकल्पन में पाठक की ग्राह्यशक्ति ही शतांशतः माध्यम बनती है । इसलिए "कनुप्रिया" खण्डकाव्य है, यह विवादास्पद विषय है । वास्तव में कनुप्रिया घटना-प्रधान न होकर भावप्रधान है जिसमें राधा ने स्मृति के माध्यम से समूचे जीवन को शब्दों के फूलापाश में उतारकर अपने अन्तर्मन को उंडेल दिया है । गीतिकाव्य की दृष्टि से "कनुप्रिया" में भावप्रवणता, आत्माभिव्यंजना, भावैक्य, संक्षिप्तता, स्वर-लयबद्ध संगीतात्मकता आदि समस्त विशेषताएँ निहित हैं तथा प्रत्येक गीत स्वयं में एक घटना या भाव का अभिव्यंजक है और एक स्वतंत्र इकाई का अधिकारी है ।

---

1. आजकल, 5-5-1980, पृः 9.

इतना होते हुए भी आद्यन्त एक कथा मंगल-कुंकुम की तरह समूची रचना में बिखरी हुई है और जिसने भाव-खण्डों को परस्पर सूत्रबद्ध कर एक लोकप्रिय रचना का स्वरूप दे दिया है । इसलिए यह कृति कथागर्भित गीतिकाव्य के रूप में स्वीकारी जाय तो बहुत दूर तक समीचीत होगा ।"[1]

"कनुप्रिया" के पात्र पौराणिक और विख्यात राधा और कृष्ण है । परन्तु कृष्ण के चरित्र का विकास राधा के संबोधन या मनःस्थिति के ज़रिए हुआ है । इसमें कनुप्रिया (राधा) की भावनाओं का प्रतिपादन है और गीतितत्व की प्रधानता है । अतः इसे गीतिकाव्य की श्रेणी में परिगणित किया जा सकता है । श्री जितेन्द्र सेठी ने गीति और नाट्य एकालाप का विश्लेषण करते हुए लिखा है - "गीति में किसी एक मनःस्थिति को चित्रित किया जाता है किंतु नाट्य-एकालाप में आवेगपूर्ण पुनर्कथनों के द्वारा इस स्थिति को प्रभावी बनाया जाता है । अतः यहाँ द्वन्द्व का होना अनिवार्य है, गीति में नहीं । गीति एक विषयिगत कविता है, जबकि नाट्य-एकालाप का जन्म विषयिगतता और वस्तुगतता के असन्तुलन में होता है । नाट्य-एकालाप की तरह गीति में भी वक्ता की भावनाएँ प्रदर्शित की जाती है । गीति में वक्ता प्रायः स्वयं कवि होता है, लेकिन नाट्य-एकालाप में कोई एक काल्पनिक चरित्र ।"[2] श्री. जितेन्द्र सेठी "कनुप्रिया" को नाट्य-एकालाप ही मानते हैं । किसी भी पात्र स्वयं अपने मन की बात कहना एकालाप है । स्वगत-कथन एकालाप के बहुत निकट आता है । लेकिन दोनों में अंतर है । शर्मिला चटर्जी ने यह अंतर यों स्पष्ट किया है - "स्वगत-कथन रंगमंच पर उपस्थित अन्य पात्रों से अश्रव्यता की अपेक्षा करता है, जबकि एकालाप में इस बात की अपेक्षा नहीं की जाती, क्योंकि इसको कहनेवाले पात्र का ध्यान गोपनीयता की ओर नहीं रहता । दूसरा अंतर यह है कि स्वगत-कथन संवाद का ही एक अंश होता है, अतः प्रत्युत्तर होता है । एकालाप रंगमंच पर प्रायः एक ही पात्र के उपस्थित रहने के कारण संवाद नहीं होता, इसप्रकार प्रत्युत्तर की आकांक्षा नहीं रहती । इसके अतिरिक्त

---

1. धर्मवीर भारती कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ - डॉ. ब्रजमोहन शर्मा, पृः 35.
2. उद्धृत कनुप्रिया एक नाट्य-एकालाप - जितेन्द्र सेठी, पृः 21.

एकालाप का प्रयोग मुख्यतः पात्र की मनोदशा व्यक्त करने में किया जाता है जबकि स्वगत का ऐसा नियम नहीं है । एकालाप पर सीमा का बन्धन नहीं है अर्थात एकालाप कितने भी लंबे हो सकते हैं । स्वगत प्रायः संक्षिप्त रहते हैं । स्वगत में पात्र अपने क्षणिक भावों को ही व्यक्त करता है, जबकि एकालाप से पात्र का पूरा व्यक्तित्व ही दर्शकों के सामने प्रकट हो जाता है ।"[1]

वास्तव में "कनुप्रिया" में सभी काव्यरूपों की विशेषताएँ पायी जाती हैं, चाहे उसकी मात्रा में अंतर हो । वह खण्डकाव्य के स्वीकृत मान्यताओं से दूर है । इसका आंतरिक स्वरूप नाटकीय है । इसको पढते समय एक प्रकार की संवादात्मकता का अनुभव होता है जो इसे नाटकीयता प्रदान करती है । राधा अपने मन के भावों और संदेहों को प्रस्तुत करती है और स्वयं ही उसके समाधान भी । अतः हम कह सकते हैं कि "कनुप्रिया" रूढ काव्यरूपों से परे है ।

काव्यगत (शिल्पगत) विशेषताएँ

"कनुप्रिया" पाँच भागों में विभक्त है - "पूर्वराग", "मंजरी-परिणय", सृष्टि-संकल्प इतिहास और समापन । पूर्वराग में पाँच गीत हैं - पहला गीत, दूसरा गीत, तीसरा गीत, चौथा गीत, पाँचवाँ गीत । "मंजरी-परिणय" में तीन गीत हैं - आम्र बौर का गीत, आम्र बौर का अर्थ, तुम मेरे कौन हो । "सृष्टि-संकल्प" के अंतर्गत सृजन-संगिनी, आदिम भय, केलिसखी शीर्षक तीन गीत हैं । इतिहास खण्ड में विप्रलब्धा सेतु मैं, उसी आम के नीचे, अमंगल छाया, एक प्रश्न, शब्द अर्थहीन, समुद्र-स्वप्न नामक सात गीत हैं । इन गीतों में कृष्ण के प्रति राधा की भावमयता के उत्तरोत्तर विकास का चित्रण हुआ है ।

---

1. नटरंग, अंक-54, जुलाई-दिसंबर-1990, पृः 35-36.

मिथक काव्य

"कनुप्रिया" की मूल संवेदना प्रेम पर आधारित है । इसकी अभिव्यक्ति के लिए राधा-कृष्ण के प्रणय-प्रसंग का उपयोग किया गया है । राधा-कृष्ण अनंत काल से स्वीकृत प्रेम-मूर्ति हैं । राधा और कृष्ण मिथकीय पात्र भी हैं । "कनुप्रिया" में राधा कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को युग-सत्य के परिपार्श्व में व्यक्त करती है । अतः "कनुप्रिया" की राधा केवल प्रियतम के मिलन के लिए आकुल विरहिणी राधा नहीं है । उसका दुःख मात्र नायक से न मिलने का नहीं है । उसकी वेदना के पीछे प्रेम का अभाव है । इतिहास-निर्माण के लिए निकले कृष्ण कनुप्रिया (राधा) को साथ नहीं लेता है । इसलिए राधा अकेली पड जाती है और शून्यता का अनुभव करती है । "कनुप्रिया" की राधा की खूबी यह है कि वह शून्यता और अकेलापन का अनुभव करते समय भी कृष्ण की प्रतीक्षा में अडिग खडी रहती है । इसप्रकार राधा-कृष्ण के प्रेम को भारती ने "कनुप्रिया" में नया आयाम दिया है । युद्ध से अर्थशून्य हो जानेवाले जीवन की सफल अभिव्यक्ति इसमें राधा के माध्यम से की गयी है ।

व्यक्तिकेंद्रीकरण

"कनुप्रिया" में राधा की तरल स्मृतियाँ हैं । इसमें राधा और कृष्ण के अतिरिक्त कोई पात्र नहीं है । कृष्ण भी राधा की स्मृति के अंग बनकर आया है । कृष्ण के अनुपस्थित होने पर भी राधा ने उससे अनेक प्रश्न पूछे हैं । "कनुप्रिया" एक व्यक्तिकेंद्रीकृत रचना है । पात्रों के समुच्चय से वह मुक्त है ।

भाषा

तरल स्मृतियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए सरल भाषा का प्रयोग ही आवश्यक है । "कनुप्रिया" की भाषा क्लिष्टता से मुक्त है । "भाषा की दृष्टि से "कनुप्रिया" अनायास ही अंग्रेज़ी बाइबल का स्मरण दिलाती है । भाषा का

यह ऋजु और तरल प्रवाहयुक्त रूप, जो आदिम संवेदनों को व्यक्त कर सका था, आधुनिक युग के कुछ जटिल संवेगों को उसी सामर्थ्य से प्रकट करता है, यद्यपि नये विकसित संदर्भों के कारण उसके अर्थबोध को कहीं क्षति भी पहुँची है । छोटे छोटे वाक्यों को "और" समुच्चयबोधक द्वारा जोडना मानवीय संवेदना के बिलकुल प्रारंभिक रूप की भाषा से संबद्ध है । भारती ने राधा-कृष्ण के प्रणय को उस शाश्वत भावभूमि में ही पुनराविष्कृत करना चाहा है ।"[1] श्री अज्ञेय ने "कनुप्रिया" में "भारती की भाषा का संस्कार एक मिश्र संस्कार" बताया है । उनके अनुसार "भारती अपने काव्य में साधारण बोलचाल के जिन उर्दू शब्दों का प्रयोग करते हैं, वे उनके रोमानी गीतों में तो न केवल खप जाते हैं बल्कि अतिरिक्त प्रभावशाली होते हैं । राधा-कृष्ण के प्रसंग में उनका प्रभाव विनाशकारी होता है क्योंकि जिस देश-काल को कवि हमारे सामने मूर्त करना चाहता है उसका वे खण्डन करते हैं और अनन्याभिचन्तयन्ती राधा के साथ जो भावैक्य पाठक का होना चाहिए एक झटके से मिटा देते हैं । तत्सम और देशज के जोड भी ऐसा ही प्रतिकूल प्रभाव रखते हैं ।"[2] "शोख चंचल विचुंबित पलकें, आम्र-बौर, महासागर मेरे ही निरावृत जिस्म का उतार-चढाव है, निर्वसना जलपरी, शिथिल गुलाबतन, तुम्हारी मुँहलगी जिद्दी नादान मित्र, वह मेरी तुर्शी है जिसे तुम मेरे व्यक्तित्व में विशेष रूप से प्यार करते हो" इत्यादि "कनुप्रिया" की प्रेषणीयता में बाधा उपस्थित करती है । अरबी शब्द जिस्म के बार-बार प्रयोग को भी वे अनुचित मानते हैं । श्री विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने भी इसपर आपत्ति उठायी है और उन्होंने "कनुप्रिया की भाषा पर छायावादी प्रभाव"[3] स्थापित किया है । धर्मवीर भारती ने डॉ. प्रभात से हुई भेंटवार्ता में "जिस्म" शब्द के बार-बार प्रयोग का सैद्धांतिक स्पष्टीकरण दिया है कि "हमारी भारतीय चिन्तन-पद्धति में दो दिशाएँ थीं एक यह मानती थी कि कर्म, वीरता, कर्तव्य यह सबसे बडी चीज़ है । प्रेम यथासंभव या तो केवल ईश्वर से किया जा सकता है या फिर दाम्पत्य-जीवन में वह संतानोत्पत्ति का कारण होता है, वंशवृद्धि का कारण होता है । दूसरी विचारधारा यह थी कि जो समाज के द्वारा, परिणय-बंधन के द्वारा स्वीकृत प्रेम है, बस वही प्रेम है, बाकी प्रेम गुनाह है और शरीर का तो उसमें इतना महत्व होना ही नहीं चाहिए । मैं इससे सहमत नहीं था । आपको याद होगा कि मैं शरीर को और

---

1. कविता यात्रा रत्नाकर से रघुवीर सहाय - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ: 73.
2. विवेक के रंग - सं. डॉ. देवीशंकर अवस्थी, पृ: 112.
3. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 183.

उसकी अनुभूतियों को उसके संवेदनों को और उसकी तृष्णाओं को पूरा महत्व देने के पक्ष में था ।"[1] जो भी हो, भारती ने भाषा का प्रयोग करते समय काल-खण्ड और संस्कृति की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है । फिर भी "कनुप्रिया" की भाषा उसके भाव-संवेदन में असमर्थ नहीं है ।

भाषा की चित्रोपमता एक उल्लेखनीय विशेषता है । भाषा के ज़रिए पात्र और उसके आन्तरिक भावों को भारती ने चित्रसदृश पाठक के सामने प्रस्तुत किया है -

"तुमने वंशी होठों से हटा ली थी
और उदास, मौन, तुम आम्र-वृक्ष की जडों से टिककर बैठ गये थे
और बैठे रहे, बैठे रहे, बैठे रहे
मैं नहीं आयी, नहीं आयी, नहीं आयी
तुम अन्त में उठे
एक झुकी डाल पर खिला एक बौर तुमने तोडा
और धीरे-धीरे चल दिये ।"[2]

बिंब और प्रतीक

बिंब, प्रतीक और अलंकारों के प्रयोग से "कनुप्रिया" के भावों में गहनता आयी है । बिंब और प्रतीक के ज़रिए कनुप्रिया की दीनता व्यक्त की गयी है -

"बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चाँद
रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण-सा -
मेरा यह जिस्म
कल तक जो जादू था, सूरज था, वेग था

---

1. अक्षरा-19 - अप्रैल-सितंबर 91, सं. प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ:21.
2. कनुप्रिया, पृ: 22.

तुम्हारे आश्लेष में
आज वह जूडे से गिरे हुए बेले-सा
टूटा है - म्लान है
दुगना सूनसान है ।"[1]

चिनगारी का बुझकर राख होना जीवन की जडता का व्यंजक है । संगीत जीवन की सक्रियता के स्पष्ट व्यंजक है । उसका टूट जाना जीवन के विघटन का प्रतीक है । सूरज और चाँद जीवन के उदयास्त की व्यंजना करते हैं । चाँद का डूबना तो प्रतिगति का प्रतीक है ।

उपमा, अतिशयोक्ति, रूपक, विरोधाभास आदि अलंकारों से "कनुप्रिया" की कलात्मकता बढायी गयी है ।

"मन्त्र-पढे बाण से छूट गए तुम तो कनु
शेष रही मैं केवल
काँपती प्रत्यंचा-सी"[2]

दोहराव भारती की भाषा की एक खूबी है । भावों को बल देने के लिए कहीं शब्दों को और कहीं वाक्यांशों को कवि दोहराता है ।

"तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व का अर्थ है
मात्र तुम्हारी सृष्टि
तुम्हारी संपूर्ण सृष्टि का अर्थ है
मात्र तुम्हारी इच्छा
और तुम्हारी संपूर्ण इच्छा का अर्थ हूँ

---

1. कनुप्रिया, पृ: 57.
2. वही - पृ: 58.

केवल मैं
केवल मैं
केवल मैं ।"[1]

अर्थ और ध्वनियों के सामंजस्य "कनुप्रिया" में विशेष दृष्टव्य है । कृति को नाटकीय आयाम देने में यह सहायक सिद्ध हुआ है -

"अब भी जो बीत गया,
उसी में बसी हुई
अब भी उन बाँहों के छलावे में
कसी हुई
जिन रूखी अलकों में
मैं ने समय की गति बाँधी थी
हाय उन्हीं काले नागपाशों से
दिन-प्रतिदिन, क्षण-प्रतिक्षण बार-बार
डँसी हुई ।"[2]

प्रश्नात्मक संवाद के साथ अच्छा, मान लो , हाय मैं सच कहती हूँ आदि के द्वारा कवि ने प्रभावात्मकता बढाई है और सहजता प्रदान की है ।

सचमुच, "कनुप्रिया" में भारती शिल्प के प्रति सावधान दिखाई पडते हैं । लेकिन उतनी सावधानी भाषा-प्रयोग में नहीं है ।

---

1. कनुप्रिया, पृ: 44.
2. वही - पृ: 58-59.

अध्याय - चार

भारती की नाट्य रचनाएँ

धर्मवीर भारती की नाट्यात्मक रचना है - "अन्धायुग"। उनका "नदी प्यासी थी" शीर्षक एक एकांकी संकलन भी है । "अन्धायुग" कविता के माध्यम से प्रस्तुत एक नाटक है जिसे गीति-नाट्य माना जाता है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है । "अन्धायुग" के प्रकाशन के बाद ऐसी अनेक कृतियाँ आयी हैं - जैसे अग्निलीक (भारतभूषण अग्रवाल), सूखा सरोवर (लक्ष्मीनारायण लाल) संशय की एक रात (नरेश मेहता) एक कंठ विषपायी (दुष्यंतकुमार) ।

अन्धायुग

"अंधायुग" का रचनाकाल 1954 है । यह कृति भारती की विशेष मानसिक अवस्था के एक विशिष्ट क्षण की अनुभूति का परिणाम है । उन्हीं के शब्दों में - "अन्धायुग" कदापि न लिखा जाता यदि उसका लिखना - न लिखना मेरे बस की बात रह गई होती । इस कृति का पूरा जटिल वितान जब मेरे अन्तर में उभरा तो मैं असमंजय में पड गया । थोडा डर भी लगा । लगा कि इस अभिशप्त भूमि पर एक कदम भी रक्खा कि फिर बच कर नहीं लौटूँगा ।"[1] ऐसी निरासपूर्ण मानसिकता के रूपायन में रचनाकाल का प्रभाव सर्वप्रमुख है ।

प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से, खास करके हिरोशिमा और नगासाकी पर अणुबम गिरने की त्रासदायक घटना से विश्वमानस विघटित हो गया था ।

---

1. अन्धायुग - धर्मवीर भारती, पृ: 3.

इस घटना ने समस्त नैतिक सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों को ध्वस्त कर दिया । राष्ट्रीय स्तर पर देश के विभाजन और गाँधीजी की हत्या से मूल्यहीनता और अनास्था चरम सीमा पर पहुँच गयीं । इन भीषण घटनाओं के प्रभाव का संचित रूप है "अंधायुग" । डॉ. कमल कुमार ने स्पष्ट किया है कि "अन्धायुग - जिसे रघुवीर सहाय ने आज की कविता की उपलब्धि माना - में कवि ने युद्ध और शाँति की समस्या को वाणी दी थी । इस काव्य में जीवन की गहन विसंगतियाँ, विघटन, टूटन, मूल्य-विछिन्नता, त्रास और द्वन्द्व का चित्रण है जो समग्र रूप से आज के युग और जीवन को ही ध्वनित करता है ।"[1]

मिथकीय संदर्भ और उत्पाद्य तत्व

"अन्धायुग" की भाव चेतना पौराणिक, युगीन और मानवीय स्तर पर प्रतिफलित होती है । पौराणिक स्तर पर महाभारतकालीन युद्ध है तो युगीन स्तर पर विश्व के दो महायुद्ध और मानवीय स्तर पर व्यक्ति-मानस में निरन्तर विद्यमान युद्धवृत्ति की अभिव्यक्ति है । रचनाकार ने इन तीनों का अपूर्व समन्वय किया है । महाभारत भारतीय जन-जीवन के समस्त क्षेत्रों में प्रेरणा का अक्षयस्रोत रहा है । उसने सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करने के साथ हमारे सृजनात्मक साहित्य को भी प्रेरित किया है । महाभारत की घटनाओं को आज के कवियों ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है । "अंधायुग" ऐसी एक रचना है । भारती के ही शब्दों में - "इस दृश्य-काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है । अधिकतर कथावस्तु प्रख्यात हैं, केवल कुछ ही तत्व उत्पाद्य हैं - कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएँ ।"[2]

हिन्दी काव्य के प्रत्येक युग की महत्वपूर्ण कृतियों पर दृष्टिपात करने पर स्पष्ट होता है कि प्रायः समस्त प्रमुख कृतियों का आधार मिथक ही रहा है । यथा -

---

1. काव्य परंपरा और नयी कविता की भूमिका - डॉ. (श्रीमती) कमल कुमार, पृः 98.
2. अन्धायुग - धर्मवीर भारती, निर्देश

प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी, उर्वशी, राम की शक्तिपूजा, अन्धायुग, कनुप्रिया, संशय की एक रात । साहित्यकारों ने आधुनिक काल में मिथक को नये परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है । ऐसी एक अपूर्व रचना है "अन्धायुग"। अतीत और वर्तमान की स्थितियों से परिपूर्ण है यह कृति । "महाभारत के अट्ठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में श्रीकृष्ण की मृत्यु के क्षण तक की घटनाओं पर आधारित 'अन्धायुग' जो कुछ कहा गया है, जो संप्रेषणीय कथ्य है, वह आज का है । इसलिए 'अंधायुग' की मूल कथा-वस्तु यद्यपि पौराणिक है, पर उसका रेशा-रेशा आधुनिक युग की समस्याओं तथा स्थितियों से बना है ।"[1] डॉ. भारती ने "अन्धायुग" को केवल अतीत और वर्तमान की सीमारेखा में न बाँधकर आलोकमयी भविष्य का लेखा-जोखा बनाने का प्रयास किया है -

"युद्धोपरान्त,
यह अन्धायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं अन्धे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अन्तर की अन्धगुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अन्धों की है ,
या कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से"[2]

लेकिन यह एक प्रश्न है कि अन्धायुग ज्योति की कथा बन गयी है या नहीं ।

---

1. हिन्दी नवलेखन - रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ: 85.
2. अन्धायुग, पृ: 10.

"अन्धायुग" में प्रारंभ से अन्त तक महाभारत की घटनाओं का वर्णन है । पाण्डव-कौरव युद्ध और उसके दौरान हुई अमानुषिक घटनाओं का हू-ब-हू चित्रण भारती ने किया है । लेखक का लक्ष्य पाण्डव-कौरवों का पराक्रम दिखाना नहीं है बदले युद्ध के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालना है । भारतयुद्ध में पाण्डवों की विजय और कौरवों की पराजय हुई । लेकिन विजेता पराजितों के समान त्रस्त दिखाई पडते हैं । युधिष्ठिर को सिंहासन निरर्थक लगता है । वे कहते हैं -

"और विजय क्या है?
एक लंबा और धीमा
और तिल-तिल कर फलीभूत
होनेवाला आत्मघात
और पथ कोई भी शेष
नहीं अब मेरे आगे ।"[1]

यह एक विडंबना है और बहुत ट्रेजिक भी है । आधुनिक मनुष्य की स्थिति भी बहुत कुछ ऐसी है । वह दिले हृदय से अपने समय का स्वागत करने में असमर्थ है । वह एक यांत्रिक एवं खोखला जीवन जीता है ।

युद्ध की समस्या को भारती ने केवल महाभारतकाल में सीमित नहीं रखा है । युद्ध प्रत्येक मनुष्य के अंतर घुल-मिल गया है । सत् और असत् का संघर्ष उसके भीतर हमेशा चलता है । इस संघर्ष में प्रायः असत् या बर्बरता की जीत होती है -

"निर्णय के क्षण में विवेक और मर्यादा
व्यर्थ सिद्ध होते आये हैं सदा
हम सबके मन में कहीं एक अन्ध गह्वर
बर्बर पशु, अन्धा पशु वास वहीं करता है
स्वामी जो हमारे विवेक का"[2]

---

1. अन्धायुग, पृः 104.
2. वही - पृः 19-20.

इसके लिए एक हद तक मनुष्य की परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं । अश्वत्थामा का यह कथन इसकी पुष्टि करता है -

"भूल नहीं पाता हूँ
मेरे पिता थे अपराजेय
अर्द्धसत्य से ही
युधिष्टिर ने उनका
वध कर डाला
उस दिन से
मेरे अन्दर भी
जो शुभ था, कोमलतम था
उसकी भ्रूण-हत्या
युधिष्ठिर के
अर्द्धसत्य ने कर दी

उस दिन से मैं हूँ
पशुमात्र, अन्ध बर्बर पशु"[1]

इसका एक और पक्ष भी होता है । मनुष्य बर्बरतापूर्ण व्यवहार को अन्याय, असामाजिक और असभ्य मानता है । फिर भी वह ऐसा कार्य करने में उत्सुक दिखाई पडता है । यह देखकर भारती लिखते हैं -

"उस दिन जो अन्धायुग अवतरित हुआ जग पर
बीतता नहीं रह-रह कर दोहराता है
हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं
हर क्षण अंधियारा गहरा होता जाता है"[2]

---

1. अन्धायुग, पृ:32.
2. वही - पृ: 116.

यहाँ "अन्धायुग" एक त्रिकालदर्शी कृति बन गया है । "क्योंकि हमेशा कहीं न कहीं किसी न किसी मूल्य-मर्यादा (कृष्ण, ईसा, गाँधी, मार्टिन लूथर किंग) की हत्या होती रहती है और अश्वतथामा की अमानुषिक बर्बरता, संजय की निष्क्रिय घातक तटस्थता, युयत्सु, की आत्मघाती घृणा, और प्रहरियों की दासवृत्ति के गहराते अन्धकार से छुटकारा पाना लगभग असंभव ही प्रतीत होता है । इसलिए 'अन्धायुग' किसी विशिष्ट स्थिति अथवा युग विशेष का द्योतक न होकर अतीत, वर्तमान और भविष्य को एक साथ अपने में समाए हुए है ।"[1] जीवन में पशुता और मानवता की होड़ जारी रहेगी । लगता है मानव जीवन ही बर्बरता और भव्यता का तनाव है । व्यक्ति-मानस में निरन्तर विद्यमान युद्धवृत्ति ही बाह्य युद्ध का निदान होती है । ध्यान देने की बात है कि बर्बरता के अतिक्रमण की कोशिश भी अनादिकाल से चली आ रही है । भव्यता या मानवता को उजागर करने के लिए "अन्धायुग" जैसी कृतियों की सृष्टि की गयी है । धर्मवीर भारती लिखते हैं - "पर एक नशा होता है - अन्धकार के गरजते महासागर की चुनौती को स्वीकार करने का, पर्वताकार लहरों से खाली हाथ जूझने का, अनमापी गहराइयों में उतरते जाने का और फिर अपने को सारे खतरों में डालकर आस्था के, प्रकाश के, सत्य के, मर्यादा के कुछ कणों को बटोर कर, बचा कर, धरातल तक ले आने का - इस नशे में इतनी गहरी वेदना और इतना तीखा सुख घुल-मिला रहता है कि उसके आस्वादन के लिए मन बेबस हो उठता है । उसी की उपलब्धि के लिए यह कृति लिखी गयी ।"[2]

"अन्धायुग" के धृतराष्ट्र, गाँधारी, संजय, अश्वत्थामा, युयत्सु, विदुर, कृतवर्मा, कृपाचार्य, युधिष्ठिर, नेपथ्य में विद्यमान श्रीकृष्ण आदि अपने नाम और काम दोनों से मिथक हैं । "इन पात्रों की महाभारतकालीन बाह्यरेखाओं के भीतर ही भारती ने अपने नाटक की मूल भावना और उद्देश्य के अनुरूप मनवांछित रंग भरे हैं । यही कारण है कि अपने ऐतिहासिक अस्तित्व के बावजूद अन्धायुग में गाँधारी का अत्यधिक कठोर पाषाणी-रूप, नर पशु अश्वत्थामा का श्रीकृष्ण के समानान्तर प्रस्तुतीकरण और युयुत्सु का

---

1. अन्धायुग और भारती के अन्य नाट्य-प्रयोग - जयदेव तनेजा, पृ: 19.
2. अन्धायुग, आमुख ।

संपूर्ण दंशित चरित्र भारती की नितान्त अपनी कृति है ।"[1] इनके अतिरिक्त भारती ने "अन्धायुग" में कथा-गायक-जो कथा-गायन करता है - और ग्रीक कोरस के निम्नवर्ग के पात्रों की भाँति प्रतीकात्मक महत्ववाले दो प्रहरियों को भी प्रस्तुत किया है । कृष्ण के वधकर्ता "जरा" का नाम बदल कर उसे एक प्रेतकाया मान लिया गया है । "वास्तव में वृद्धयाचक कवि की एक कल्पना है - यह और कोई नहीं कौरवों के भीतर से उपजा हुआ भावी स्वप्न है जो द्वन्द्व में, लडाई में उनकी विजय देखता था, लेकिन कौरव हार गये । उनका भविष्य, उनका भावी स्वप्न जीर्ण याचक-सा असत्य सिद्ध होकर उन तक ही लौट आया और फिर यहाँ-वहाँ मारा-मारा फिर रहा है ।"[2] नाटकीय संदर्भों की सृष्टि केलिए कृतिकार ने पंगु गूँगा सैनिक को भी प्रस्तुत किया है । भारती की सफलता इसमें है कि उन्होंने आधुनिक संवेदना और उत्पाद्य तत्व को इतिहास पर बोझ न बना दिया है । डॉ. प्रेमपति की दृष्टि में - "दर असल "अन्धायुग" का जो मौलिक "उत्पाद्य" तत्व है, वह है अपने युग के प्रति हर चरित्र का दृष्टिकोण, जैसे धर्मयुद्ध के पदाधरों में कुण्ठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति, कुरूपता, अन्धापन का प्रतिरोपण । भारतीय चेतना और नैतिकता के अनुसार जो असंदिग्ध रूप से धर्मयुद्ध रहा, वह अन्धायुग में अन्धयुद्ध बन गया - और यही है इस कथानक का उत्पाद्य तत्व ।"[3] अन्धायुग को "अभारतीय प्रयोग" माननेवाले डॉ. प्रेमपति इसके स्वकल्पित पात्रों और उनके कृत्यों को स्वकल्पित न मानने का जिद्द करते हैं । यह तो ठीक है कि अन्धायुग के पात्रों को भारती ने "ह्रासोन्मुख भारतीय संस्कृति की फलश्रुति"[4] के रूप में चित्रित किया है । वस्तुतः: कृति की श्रेष्ठता इसीमें निहित है । सृजनात्मक साहित्यिक के नाते भारती का कार्य महाभारत कालीन पात्रों को पुनःप्रतिष्ठित करना नहीं है । "महाभारत के पात्रों के

---

1. अन्धायुग और भारती के अन्ध नाट्य-प्रयोग, पृः: 24.
2. हिन्दी कविता तीन दशक - डॉ. रामदरश मिश्र, पृ 174.
3. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृः 173.
4. समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र-सृष्टि - जयदेव तनेजा, पृः 24.

प्रत्येक कृत्य का 'क्योंकि' धर्म की दृष्टि से पूर्वनियोजित है, जबकि अन्धायुग के पात्रों के सभी कृत्यों का 'क्योंकि' उनकी मानवीयता में छिपा है और मनोविज्ञान पर आधारित होने के कारण अधिक विश्वसनीय तथा स्वाभाविक है ।"[1]

मानवमूल्य का विघटन और उसके आयाम

मानवमूल्यों के प्रतिपादन की दृष्टि से "अन्धायुग" का विशेष महत्व है । धर्मवीर भारती मानवमूल्यों की प्रतिष्ठापना करने में प्रयत्नरत संवेदनशील साहित्यकार हैं । उन्होंने अनुभव किया है कि "यह संपूर्ण सभ्यता जिन मूल्यों पर आधारित थी वे झूठे पड गये हैं, परिणाम यह है कि एक भयानक विघटन उपस्थित है, शब्द और अर्थ के बीच में विघटन है, आचरण और धारणा के बीच में खाई है, भाषा अशुद्ध और अक्षम हो गयी है, अनुभूति के धरातल विक्षुब्ध हो गये हैं और मिथ्या को प्रश्रय देने लगे हैं, और परिणाम यह है कि मानवीय गौरव को कभी प्रजातन्त्रवाद और कभी जनवाद और कभी अध्यात्मवाद और कभी स्वातन्त्र्य, कभी दायित्व और कभी अलौकिकता के नाम पर प्रतिक्षण आहत और पददलित किया जा रहा है ।"[2] भारती के प्रत्येक कर्म के पीछे मानवमूल्यों की संस्थापना का आग्रह निहित है । "वस्तुतः मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा प्रत्येक क्षण हो सके, यही हमारा दायित्व है । पूर्वजों ने किया था, या भावी पीढियाँ उसे करेंगी, अगर इस आशा में हम वर्तमान को विवेकहीन, असंगत, क्रमहीन क्षणों का एक विराट जलप्लावन बना देते हैं तो इस अन्तरात्मा का पुनर्निर्माण कभी भी नहीं हो पायेगा । वस्तुतः मानवीय गरिमा के प्रति संवेदनाजन्य अन्तरात्मा की पुनः प्रतिष्ठा का एक वेदनापूर्ण दायित्व है जिसका निर्वाह हमें प्रतिक्षण करना पडता है ।"[3] "मानवमूल्य और साहित्य" में अभिव्यक्त चिन्तन का दूसरा चरण है "अंधायुग" ।

---

1. अन्धायुग और भारती के अन्य नाट्य-प्रयोग, पृः 98.
2. मानवमूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती, पृः 65.
3. वही - पृः 35.

"अन्धायुग में महाभारत की पृष्ठभूमि में कुछ चुने हुए पात्रों के माध्यम से धर्मवीर भारती ने युद्ध की विभीषिका का आश्रय लेकर मूल्यों के विघटन एवं संघर्ष का प्रश्न बौद्धिक धरातल पर बडी सूक्ष्म और गहनता से उठाया है ।"[1]

"अन्धायुग" की मूल समस्या मूल्यहीनता की है जिसका उग्रतम रूप अश्वत्थामा, गाँधारी, युयुत्सु आदि में मिलता है । ये हमारे परंपरागत मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं । आधुनिक काल से पूर्व मूल्य या आस्था का अर्थ धर्म तथा ईश्वर से जुडा रहता था । किन्तु आज स्थिति बदल गयी है । श्री. कृष्णदत्त पालीवाल के अनुसार "संसार भर में प्राचीन आस्था का धार्मिक अर्थ नष्ट हो गया और मानव-मूल्यों की महत्व-प्रतिष्ठा में ही आस्था को नया अर्थ मिला । आज की आस्था में एक ऐसा आस्तिक भाव निहित हो गया है जो धार्मिकता से मुक्त होकर जीवन-मूल्यों को समसामयिक संदर्भ में परखकर स्थापित करना चाहती है । यह आस्था नवीन जीवन-मूल्यों को आधुनिक दृष्टि से स्वीकारने में है तथा रूढियों को नकारने में सक्रिय है ।"[2] गाँधारी कृष्ण के भगवान रूप को ठुकराती है -

"जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया ।
वंचक है ।"[3]

युयुत्सु ने कौरव वंशज होने पर भी पाण्डवों का पक्ष लेकर कौरवों के विरुद्ध युद्ध लडा था । क्योंकि कृष्ण पाण्डवों का पक्षधर था । लेकिन वह चारों तरफ से तिरस्कृत हो जाता है और आत्महत्या करता है । कृष्ण के संबन्ध में उसका कथन है -

---

1. साहित्य और आधुनिक युगबोध - देवेन्द्र इस्सर, पृः 112.
2. नया सृजन नया बोध - डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल - पृः 10.
3. अन्धायुग, पृः 20.

"कुछ दिन तक कृष्ण की झूठी आस्था के
ज्योतिवृत्त में भटका
किन्तु आत्महत्या का शिलाद्वार खोल कर
वापस लौटा मैं अन्धी गहन गुफाओं में !
आया था मैं भी देखने
यह महिमामय मरण कृष्ण का

जीकर वह जीत नहीं पाया अनास्था
मरने का नाटक रचकर वह चाहता है
बाँधना हमको
लेकिन मैं कहता हूँ

वंचक था, कायर था, शक्तिहीन था वह
बचा नहीं पाया परीक्षित को या मुझको"[1]

इसप्रकार "अंधायुग" में कृष्ण को नयी दृष्टि से देखा गया है । कवि ने उनके मर्यादित सत्यग्राही तथा परब्रह्म रूप को झूठ सिद्ध किया है । डॉ. सुरेश गौतम की दृष्टि में "अन्धायुग" का कृष्ण केवल प्रभु अथवा परब्रह्म ही नहीं हैं बल्कि देवत्व एवं दानवत्व की संधिरेखा पर खडे वह आधुनिक जटिल मनुष्य भी हैं जो परिस्थितियों से प्रेरित होकर सत्य की रक्षा करते हैं तो सत्य का त्याग भी, मर्यादा का वहन करते हैं तो अमर्यादा का ग्रहण भी । इसप्रकार पहली बार कृष्ण को अमर्यादित रूप में चित्रित किया गया है ।"[2]

कृष्ण के परब्रह्म रूप की अवहेलना करते समय भी भारती उसे भविष्य का रक्षक मानते हैं । कृष्ण के सामने नतमस्तक होकर वे लिखते हैं -

---

1. अन्धायुग, पृः 111.
2. अन्धायुग की रचनामानसिकता - डॉ. सुरेश गौतम , डॉ. वीणा गौतम, पृः 48-49.

"तुम जो हो शब्द-ब्रह्म, अर्थों के परम अर्थ
जिसका आश्रय पाकर वाणी होती न व्यर्थ
है तुम्हें नमन , है उन्हें नमन
करते आये जो निर्मल मन
सदियों से लीला का गायन

दो मुझे शब्द, दो रसानुभव, दो अलंकरण
मैं चित्रित करूँ तुम्हारा करुण रहस्य मरण ।"[1]

ये पंक्तियाँ श्रीराम भक्त कवि मैथिलीशरण गुप्त का स्मरण जगाती हैं । कृष्ण के प्रति भारती की अन्ध श्रद्धा का प्रमाण है ये पंक्तियाँ । भारती ने कृष्ण को मूल्य व ज्योति का केन्द्रीय चरित्र माना है । कृष्ण को भविष्य का रक्षक मानकर उसकीमृत्यु को स्थांतरण मात्र बताया गया है । मूल्य और मर्यादा को कृष्ण के माध्यम से अनश्वर स्थापित करने का प्रयास भी किया गया है -

"मरण नहीं है ओ व्याध
मात्र स्थांतर है वह
सबका दायित्व लिया मैं ने अपने ऊपर
अपना दायित्व सौंप जाता हूँ सबको

हर मानव-मन के उस वृत्त में
जिसके सहारे वह
सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए
नूतन निर्माण करेगा पिछले ध्वंसों पर !

---

1. अन्धायुग, पृ: 107.

मर्यादायुक्त आचरण में
नित नूतन सृजन में
निर्भयता के
साहस के
ममता के
रस के
क्षण में
जीवित और सक्रिय हो उठूँगा मैं बार-बार !"[1]

सचमुच "कृष्ण का व्यक्तित्व उस जटिल मनुष्य के व्यक्तित्व के रूप में उभरता है जो पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, मर्यादा-अमर्यादा के झूले पर घडी के पेंडुलम की भाँति सदा दोलायमान रहता है ।"[2] कृष्ण को इसप्रकार प्रस्तुत करके भारती ने संकट में पडे मनुष्य की तडप और उससे मुक्त होने की आकांक्षा को अभिव्यक्त किया है । संकट से मुक्त होने की इच्छा ही आस्था है ।

"अन्धायुग" में मूल्यहीनता और अनास्था का प्रतिरूप है अश्वत्थामा और युयुत्सु । अश्वत्थामा के अस्तित्व का अंतिम अर्थ वध बन गया है । बर्बरता उसके रक्त में लीन हो गयी है -

"वध केवल वध केवल वध
अंतिम अर्थ बने
मेरे अस्तित्व का

वध मेरे लिये नहीं रही नीति
वह है अब मेरे लिये मनोग्रंथि ।"[3]

---

1. अन्धायुग, पृ: 115.
2. अन्धायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि - सुरेश गौतम, पृ: 32.
3. अन्धायुग, पृ: 33-35.

वह वृद्ध याचक की हत्या करता है, पाण्डव शिविर में आग लगा देता है और ब्रह्मास्त्र छोडता है ।

युयुत्सु आस्था को घिसा सिक्का मानता है -

"आस्था नामक यह घिसा हुआ सिक्का
अब मिला अश्वत्थामा को
जिसे नकली और खोटा समझकर मैं
कूडे पर फेंक चुका हूँ वर्षों पहले ।"[1]

कवि एक ओर हमारे परंपरित मूल्यों और मर्यादाओं को नकारता है तो दूसरी ओर मर्यादा तोडने के भयंकर परिणामों की घोषणा करके उसकी वकालत भी करता है । वे विदुर से कहलवाते हैं -

"भीष्म ने कहा था,
गुरु द्रोण ने कहा था,
इसी अन्तःपुर में
आकर कृष्ण ने कहा था -
मर्यादा मत तोडो
तोडी हुई मर्यादा
कुचले हुए अजगर-सी
गुंजलिका में कौरव-वंश को लपेट कर
सूखी लकडी-सा तोड डालेगी ।"[2]

---

1. अन्धायुग, पृः 111.
2. वही - पृः 16.

"इसका अर्थ यह नहीं है कि आदर्श और मर्यादाओं का अंधानुकरण करने का उपदेश कवि ने दिया है, वरन् इसका प्रतिपाद्य तो स्वस्थ मूल्यों के प्रति आदर का भाव जागृत करना मात्र ही है।"[1]

कवि अनास्था घृणा और कृष्णविरोध की प्रतिमूर्ति अश्वत्थामा और गाँधारी से पश्चाताप करवाता है और आस्था की पुनः स्थापना करता है। पुत्रशोक से जर्जर गाँधारी, कृष्ण और उसके वंश के नाश का शाप देती है। कृष्ण वह शाप स्वीकार करता है -

"माता
प्रभु हूँ या परात्पर
पर पुत्र हूँ तुम्हारा, तुम माता हो
मैं ने अर्जुन से कहा
सारे तुम्हारे कर्मों का पाप-पुण्य, योग-क्षेम मैं
वहन करूँगा अपने कंधों पर
अट्ठारह दिनों के इस भीषण संग्राम में
कोई नहीं केवल मैं ही मरा हूँ करोड़ों बार
जितनी बार जो भी सैनिक भूमिशायी हुआ
कोई नहीं था
वह मैं ही था
गिरता था घायल होकर जो रणभूमि में

शाप यह तुम्हारा स्वीकार है।"[2]

इससे गाँधारी विह्वल हो उठती है। वह रोती हुई पश्चाताप-विवश स्वर में पूछती है -

---

1. समकालीन हिन्दी कविता - डॉ. अशोक त्रिपाठी, पृः 176.
2. अन्धायुग, पृः 89-90.

"मैं ने क्या किया विदुर?
मैं ने क्या किया?"[1]

अश्वत्थामा अपने पापों की आत्मस्वीकृति करता है। कृष्ण द्वारा दण्डित होने से वह अपने को मुक्त अनुभव करता है -

"मेरा था पाप
किया मैं ने वध

जिसको तुम कहते हो प्रभु
वह था मेरा शत्रु
पर उसने मेरी पीडा भी धारण
कर ली
जख्म है वदन पर मेरे
लेकिन पीडा सब शान्त हो गयी बिलकुल
मैं दण्डित हूँ
लेकिन मुक्त हूँ!"[2]

इसप्रकार गाँधारी और अश्वत्थामा में भावात्मक जीवनदृष्टि आरोपित किया गया है। आस्थावादी लेखक के असमंजसधर्मी व्यक्तित्व से उभरे पात्र हैं गान्धारी और अश्वत्थामा।

निर्भीक सत्य का प्रतीक युयत्सु अंधेयुग में प्रभु के कायर मरण से मानव-भविष्य की रक्षा होने में संशय प्रकट करता है। लेकिन लेखक को कोई संदेह नहीं है और लिखता है -

---

1. अन्धायुग, पृ: 91.
2. वही - पृ: 113-114.

"पर एक तत्व है बीज रूप में स्थित मन में
साहस में, स्वतन्त्रता में, नूतन सर्जन में

वह अर्द्धसत्य से, ब्रह्मास्त्रों के भय से
मानव-भविष्य को हरदम रहे बचाता
अन्धे संशय, दासता, पराजय से ।"[1]

युयुत्सु का आत्मघात सत्य का आत्मघात है । निष्क्रिय संजय की कोई स्थिति ही नहीं है । वह अन्धों को (धृतराष्ट्र और गाँधारी को) कथा कह-कहकर स्वयं अंधा हो जाता है । वह जीवन की वास्तविकता से याने मानवीयता से अनभिज्ञ रहता है । जन्मान्ध धृतराष्ट्र ममतान्ध भी है । इसप्रकार "अन्धायुग" के सभी पात्र किसी न किसी रूप में मूल्यांधता के शिकार हैं ।

वस्तुतः "अन्धायुग" में मूल्य-संकट के विविध पहलुओं पर दृष्टिपात किया गया है । मूल्य-संकट को अभिव्यक्त करते समय भी भारती मूल्यों के प्रति रूमानी रुझान रखते हैं और पुर्वाग्रह से मुक्त नहीं हैं । यह पूर्वाग्रह "अन्धायुग" को ज्योति की कथा स्थापित करने को उसे विवश करता है । "पूरे नाटक की संरचना द्वन्द्वधर्मी न होकर असमंजसधर्मी है । यह असमंजस ही मूल्य संक्रमण की दुलमुल मानसिकता का लक्षण है ।"[2] कृष्ण के विराट व्यक्तित्व की परिकल्पना करके भारती यह असमंजस से मुक्त हो जाते है । लेकिन "अन्धायुग" कलात्मक द्वैत में पड जाता है जो हमारी संवेदना पर असर डालता है ।

मानवीय अस्मिता का संकट

मानवीय अस्तित्व के खण्डित स्वरूप की अभिव्यक्ति "अन्धायुग" में हुई है । इसके सभी पात्र युद्ध और उसके उपरांत उपस्थित निरर्थकता से पीडित हैं । युद्ध की बर्बरता और भयानकता विजित और विजेता दोनों को बुरी तरह तोडती हैं । विजयी पाण्डवों की स्थिति देखिए-

---

1. अन्धायुग, पृः 116.
2. आधुनिक हिन्दी काव्य रूप और संरचना - निर्मला जैन, पृः 325.

"सब विजयी थे लेकिन सब थे विश्वास-ध्वस्त
थे सूत्रधार खुद कृष्ण किन्तु थे शाप-ग्रस्त
इस तरह पाण्डव-राज्य हुआ आरम्भ पुण्यहत, अस्त-व्यस्त ।"[1]

"अन्धायुग" के प्रहरियों के वार्तालाप में सर्वत्र निरर्थकता, ऊब और अनास्था के दर्शन होते ही हैं । वरण की स्वतंत्रता से वंचित प्रहरियाँ अन्धी, ह्रासोन्मुख संस्कृति की रक्षा करते-करते थक गये हैं । वे कहते हैं -

"मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का
साहस का
श्रम का
अस्तित्व का हमारे
कुछ अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था ।"[2]

सत्रह दिनों के लोमहर्षक संग्राम में प्रहरी भाग तो नहीं लेता है, किन्तु राजमहल के सूने गलियारे में पहरा देता रहा । इनका जीवन एक यांत्रिक जीवन है । "ये प्रहरी व्यापक परिप्रेक्ष्य में आधुनिक मानव की नियति के प्रतीक बन जाते हैं, उस मानव की नियति के जिसके समक्ष आज न तो कोई मार्ग है, न चुनाव की स्वतंत्रता । जो अन्धेरे में जीवन के सूने गलियारे में निरुद्देश्य भटक रहा है और निरुद्देश्य भटकाव थकान को जन्म देता है । आधुनिक जीवन पर इस रिक्तता ने भंवर डाल दिया है ।"[3]

---

1. अन्धायुग, पृ: 92.
2. वही - पृ: 13.
3. अन्धायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि - सुरेश गौतम, पृ: 48.

अस्मिता की खोज में भटकता पात्र है युयुत्सु । वह स्वेच्छा से कौरवों का पक्ष छोड पाँडवों की ओर से लडता है । असत्य से समझौता न करने के कारण भीड उस पर ताने कसती है और पत्थर मारती है । पाण्डव पक्ष से भी उसे उपेक्षा ही मिलती है । वह अत्यंत विवश हो जाता है और अनुभव करता है -

"अब यह माँ की कटुता
घृणा प्रजाओं की
क्या मुझको अन्दर से बल देगी ?
अन्तिम परिणति में
दोनों जर्जर करते हैं
पक्ष चाहे सत्य का हो
अथवा असत्य का !"[1]

भयानक संग्राम-ग्रस्त युयुत्सु अंत में बिलकुल गूँगा बना रहता है । वह जगत् को सबसे गहन अन्धलोक समझता है । जीवन और जगत् की विसंगति से मुक्त होने केलिए वह आत्महत्या करता है । "युयुत्सु के माध्यम से भारती ने आज के बुद्धिजीवी तथा विशेषकर प्रतिबद्ध बुद्धिजीवी की त्रासदी को प्रस्तुत किया है ।"[2] आत्महत्या करनेवाले युयुत्सु को अन्धी गहन गुफाओं में भटकता बताया गया है । इसके पीछे भारती का लक्ष्य आत्महत्या को निष्प्रयोजन घोषित करना रहा है और उसके प्रति चेतावनी देना भी ।

"अन्धायुग" का केन्द्रीय चरित्र अश्वत्थामा को भी कवि ने संकट और द्विविधाग्रस्त दिखाया है । गुरु द्रोण की हत्या युधिष्ठिर अर्द्धसत्य से करता है तो अश्वत्थामा अपने अस्तित्व को तुच्छ और घृणित अनुभव करता है -

---

1. अन्धायुग, पृ: 52.
2. अन्धायुग और भारती के अन्य नाट्य-प्रयोग - जयदेव तनेजा, पृ: 68.

"कायर अश्वत्थामा
शेष हूँ अभी तक
जैसे रोगी मुर्दे के
मुख में शेष रहता है
गन्दा कफ
बासी थूक
शेष हूँ अभी तक में
आत्महत्या कर लूँ
इस नपुंसक अस्तित्व से"[1]

अश्वत्थामा बाद में पशुता और बर्बरता में अपना अस्तित्व देखता है ।

युद्ध में विजयी युधिष्ठिर की विसंगति बहुत भयानक है । युद्ध-विजय एक वस्तु-सत्य है । उस वस्तु-सत्य को स्वीकारने में युधिष्ठिर असमर्थ हो जाता है । वह विजय को भी पराजय मानता है और हिमालय शिखरों पर गल जाने के लिए विवश दिखाई पडता है -

"जाने दो
मुझको गल जाने दो हिमालय के शिखरों पर"[2]

यथार्थ को उसी रूप में स्वीकार करने में असफल युधिष्ठिर की स्थिति अत्यंत त्रासदीय है ।

गाँधारी के शाप को पुत्रवत् स्वीकार करके मानवीय मूल्यों की संस्थापना करनेवाले कृष्ण अंत में पशुवत् मरता है । निष्क्रिय संजय अपने जीवन को निरर्थक समझते हुए कहता है -

---

1. अन्धायुग, पृ: 32.
2. वही - पृ: 104.

"मैं दो बडे पहियों के बीच लगा हुआ
एक छोटा निरर्थक शोभा-चक्र हूँ
जो बडे पहियों के साथ घूमता है
पर रथ को आगे नहीं बढाता
और न धरती ही छू पाता है
और जिसके जीवन का सबसे बडा दुर्भाग्य है
कि वह धुरी से उतर भी नहीं सकता"[1]

संजय के समान विदुर भी अपने को उस निकम्मी धुरी मानता है जिसके सारे पहिये उतर गये हैं । इसीलिए वह धुरी घूम नहीं सकता है । अतः वह बेकार है । संजय और विदुर अर्थहीन जीवन जीते हैं ।

"अंधायुग" के सभी पात्र अस्तित्व-दुख झेलते दिखाई पडते हैं । इसकी खूबी यह है कि भारती ने अपने पात्रों के ऊपर नीत्शे, सार्त्र, कामू, कीर्केगादी आदि के चिन्तनों का भार नहीं लगा दिया है । "अन्धायुग" में अस्तित्ववादी चिन्तन के अनेक संकेत मौजूद हैं जिन्हें भारती ने पात्रों और स्थितियों के मूलस्वरूप तथा आन्तरिकता से जोडकर सृजनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है । इसे हम किसी भी दृष्टि से नकल या अनुकरण नहीं मान सकते ।"[2] वस्तुतः "अन्धायुग" में भारती पाश्चात्य चिन्तन और भारतीय संस्कृति के बीच झूलते हुए दिखाई पडते हैं । यह उनके द्विवीधापूर्ण व्यक्तित्व का ही अंश है ।

रूप-विधान और संरचना के नये क्षितिजों की खोज

"अन्धायुग" का काव्य-रूप विवादास्पद है । आलोचकों ने उसे गीति-नाट्य, नाट्य-काव्य, थीसिस-नाटक आदि कई नाम दिये हैं और उसके मुताबिक विश्लेषण भी किया है । "अन्धायुग" को काव्य-नाटक मानते हुए जयदेव तनेजा लिखते हैं -

---

1. अन्धायुग, पृः 67.
2. अन्धायुग और भारती के अन्य नाट्य-प्रयोग - जयदेव तनेजा, पृः 71.

"इस रचना ने हिन्दी साहित्य में पहली बार कविता और नाटक, साहित्य और रंगमंच तथा अतीत और वर्तमान का गहरा सार्थक व अभिन्न संबन्ध पूरी तीव्रता एवं सच्चाई से स्थापित किया ।"[1] आश्चर्य की बात यह है कि स्वयं भारती को अपनी रचना के विधागत स्वरूप के संबन्ध में कोई निश्चय नहीं हैं । उन्होंने "निर्देश" में इसके लिए दृश्य-काव्य, लंबा-नाटक, नाटक, गीति-नाट्य और काव्य शब्द का प्रयोग किया है । दरअसल, काव्य और नाट्य के परस्पर संघात से कृति का जो संश्लिष्ट रूप बनता है वही है "अन्धायुग" । कविता या नाटक के अभीष्ट आलोचक अपनी रुचि के अनुसार इस कृति को शुद्ध कविता या शुद्ध नाटक मानते हैं । डॉ॰ सुन्दरलाल कथूरिया की राय में "अन्धायुग" के सटीक काव्य-रूप की तलाश अभी जारी है - इसका रूप-विधान नाट्य-रूपों की पारिभाषिक शब्दावली को किसी-न-किसी बिन्दु पर अधूरा छोड देता है या उनकी सीमा का अतिक्रमण कर जाता है ।"[2]

सामान्य रूप से "अन्धायुग" गीति-नाट्य माना जाता है । "गीत-नाट्य रूपक का ही एक भेद है जिसका प्राण-तत्व है भावना-अथवा मन का संघर्ष और माध्यम है कविता ।"[3] गीति-नाट्य में गीति-तत्व का महत्व होता है । कथानक की सारी घटनाएँ और पात्रों के संवाद गीतों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं । इसमें नाट्य-तत्व का स्थान अप्रतिम है । नाट्य-शक्ति को तीव्र बनाने में गीति-तत्व समर्थ होता है । टी॰ एस॰ इलियट ने नाटक में काव्य-तत्व के प्रयोजन के संबन्ध में लिखा है - "छन्दोबद्धता सिर्फ एक बाह्याचार या आडंबर नहीं है । पर वह नाटक को तीव्रता प्रदान करती है । वह हमारे ऊपर कविता के अचेतन-प्रभाव की प्रमुखता की ओर भी संकेत करती है । अंत में, मेरा यह विश्वास नहीं है कि यह प्रभाव उन्हीं सदस्यों या श्रोताओं तक ही सीमित

---

1. हिन्दी रंगकर्म दशा और दिशा - जयदेव तनेजा, पृ: 324.
2. हिन्दी कविता अद्यतन भूमिका - डॉ॰ सुन्दरलाल कथूरिया, पृ: 16.
3. हिन्दी नाटक और रंगमंच पहचान और परख - सं॰ इन्द्रनाथ मदान, पृ: 101.

नहीं जो कविता पसन्द करते हैं, अपितु जो केवल नाटक ही देखा करते हैं, उन पर भी पडता है।"[1] गीति-नाट्य की भाषा गद्य-नाटक की भाषा से भिन्न होती है। वह न तो पूर्णतः पद्य की होती है और न पूर्णतः गद्य-नाटक की। गीति-नाट्य में पात्रों के व्यवहार और भाषा में अत्यंत संतुलन की आवश्यकता है। पात्रों के भाव-परिवर्तन को भाषा की लय और टोन के परिवर्तन से भी परिचित कराता है। इतिवृत्तात्मकता से मुक्त होने केलिए लेखक गीति-नाट्य में कई बार गायक-वृन्द का उपयोग भी करता है।

"अन्धायुग" के रूप-विधान की अपनी विशेषताएँ होती हैं। इस रचना को "थीमिस नाटक" माननेवाले डॉ. प्रेमपति भी यह स्वीकार करते हुए लिखते हैं - "इसमें कुछ स्पष्ट शिल्पगत विशेषताएँ मौजूद हैं, वे हैं - (1) संवादों का मुक्तछंद में होना (2) आवश्यकतानुसार लय, परिवर्तन करते रहना (3) ग्रीक कोरस के निम्नवर्ग के पात्रों की भांति दो प्रहरियों को पेश करना (4) अन्तराल में वृत्तगंधी गद्य का प्रयोग करना और (5) कथानक में कुछ उत्पाद्य तत्वों का समावेश। इसमें कोई शक नहीं है कि हिन्दी नाट्य-परम्परा में अन्धायुग पहला नाटक है जिसमें इन पांचों तकनीकी विशेषताओं को एक जगह काम में लाया गया है।"[2]

पुराण-प्रयोग

"अंधायुग" में आधुनिक युगबोध की अभिव्यक्ति के लिए पुराणकथा का प्रयोग किया गया है। "अन्धायुग के सीमित कलेवर में महाभारत की दीर्घकाय उत्तरार्ध की कथा के चुने हुए सभी मार्मिक प्रसंगों को नाटकीय गत्वरता एवं काव्यत्मक भाव-

---

1. "Verse is not merely a formalization, or an added decoration, but that it intensifies the drama. It should indicate also the importance of the unconscious effect of the verse upon us And lastly, I do not think that this effect is felt only by those members of an audience who like poetry but also by those who go for the play alone".
   Selected Prose - T.S.Eliot, p.70.

2. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 167.

संकुलता के साथ संयोजित किया गया है ।"[1] अतीत की कथा प्रभविष्णुता और साधारणीकरण में सहायक बन गयी है ।

कथा-गायन

कथा-गायन इसकी एक और विशेषता है । इसमें "दृश्य परिवर्तन के समय कथा-गायन की योजना है । यह पद्धति लोक-नाट्य परंपरा से ली गयी है । कथानक की जो घटनाएँ मंच पर नहीं दिखाई जातीं, उनकी सूचना देने, वातावरण की मार्मिकता को और गहन बनाने या कहीं-कहीं उसके प्रतीकात्मक अर्थों को भी स्पष्ट करने के लिए यह कथा-गायन की पद्धति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है ।"[2] कथानक को शिथिलता से बचाने में कथा-गायन का महत्वपूर्ण स्थान है । कृष्ण के वध की सूचना कथा-गायन द्वारा दिया गया है -

"कुछ दूर कंटीली झाडी में
छिप कर बैठा था एक व्याध
प्रभु के पग को मृग-वदन समझ
धनु खींच लक्ष्य था रहा साध"[3]

महाभारत युद्ध के अंतिम दिन कौरव नगरी में व्याप्त मार्मिक वातावरण को कथा-गायन के ज़रिए व्यक्त करता है -

"अंतःपुर में मरघट की-सी खामोशी
कृश गान्धारी बैठी है शीश झुकाए

---

1. अन्धायुग निकष पर - संजीव कुमार, पृः 61.
2. अन्धायुग, पृः 6.
3. वही - पृः 109.

सिंहासन पर धृतराष्ट्र मौन बैठे हैं
संजय अब तक कुछ भी संवाद न लाए ।"[1]

प्रतीकात्मक अर्थ को कथा-गायन के माध्यम से स्पष्ट किया गया है -

"अन्धों से शोभित था युग का सिंहासन
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा
दोनों ही पक्षों में जीता अन्धापन
भय का अन्धापन, ममता का अन्धापन
अधिकारों का अन्धापन जीत गया ।"[2]

भाषा-प्रयोग

"अन्धायुग" भाषा-प्रयोग की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है । इसमें पात्रों के अंत:संघर्ष और तनाव को अभिव्यक्त करने में सक्षम भाषा का प्रयोग किया गया है । इसके संवाद मुक्तछंद में हैं । गद्य-पद्य मिश्रित इसकी भाषा काव्यात्मकता से युक्त भी है । यथा -

"सूने गलियारे में
जिसके इन रत्न-जटित फर्शों पर
कौरव वधुएँ
मन्थर-मन्थर गति से
सुरभित पवन-तरंगों सी चलती थीं
आज वे विधवा हैं ।"[3]

---

1. अन्धायुग, पृ: 15.
2. वही - पृ: 11.
3. वही - पृ: 12.

सामयिक जीवन के यथार्थ को व्यंजित करने के लिए यथार्थ भाषा की तलाश की गयी है । "अन्धायुग" में भारती की भाषा के संबन्ध में गोविन्द चातक लिखते हैं - "वे समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति के लिए अतीत की ओर उन्मुख होते हैं, उसी प्रकार भाषा की तलाश भी मात्र अपने युग में नहीं करते । युग की मात्र बोलचाल की भाषा को चुनने की अपेक्षा उसके साथ अतीत की शब्दावली का योग कर वे अपने लिए एक मिली-जुली भाषा को गढते हैं, जिसमें कि परंपरागत रूप को ही पर्याप्त माना गया है और न बोलचाल की समसामयिक भाषा को ।"[1] नफरत, फर्श, खबर, जिम्मा, जख्म, दर्द जैसे अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग भाषा को अधिक निकटतम बनाता है ।

बिंब-विधान

बिंब-विधान इसकी भाषा की उल्लेखनीय विशेषता है -

"मर्यादा मत तोडो
तोडी हुई मर्यादा
कुचले हुए अजगर-सी
गुंजलिका में कौरव-वंश को लपेट कर
सूखी लकडी-सा तोड डालेगी ।"[2]

अन्धों को दृष्टि देनेवाला संजय अपने वर्णनों में बिंबग्रहण कराता चलता है । वह अपने अन्ध श्रोताओं की कल्पना के लिए चित्र खडा करता है ।

प्रतीकात्मकता से परिपूर्ण है "अन्धायुग" । इसका कथ्य महाभारत-युद्ध ही आधुनिक युग के अन्धेपन के प्रतीक रूप में चित्रित किया गया है । "अन्धायुग" के

---

1. आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और संवादीय संरचना - गोविन्द चातक, पृ: 120.
2. अन्धायुग, पृ: 16.

पात्रों में धृतराष्ट्र और गान्धारी अन्धी ममता के प्रतीक हैं । अश्वत्थामा बर्बरता का, युयत्सु निर्भीक सत्य का, संजय निष्क्रियता का और प्रहरियाँ सामान्य जनता के प्रतीक हैं । कुरुक्षेत्र की ओर उडनेवाले नरभक्षी गिद्ध मृत्यु के प्रतीक हैं ।

भीम के साथ द्वन्द्व युद्ध में आहत होते दुर्योधन का रूप चित्रात्मक भाषा में भारती ने अंकित किया है -

"टूटी जाँघों, टूटी कोहनी, टूटी गर्दनवाले
दुर्योधन के माथे पर रखकर पाँव
पूरा बोझ डाले हुए भीम ने
बाँहें फैलाकर पशुवत् घोर नाद किया
कैसे दुर्योधन की दोनों कनपटियों पर
दो दो नसें सहसा फूली और फूट गयीं
कैसे होठ खिंच आये
टूटी हुई जाँघों में एक बार हरकत हुई
आँखों खो
दुर्योधन ने देखा
अपनी प्रजाओं को ।"[1]

"अन्धायुग" में भाव-विशेष पर पाठक का ध्यान केन्द्रित करने के लिए शीर्षक सदृश शब्द का संवाद रूप में प्रयोग हुआ है ।

"प्रहरी 1. मर्यादा !
प्रहरी 2. अनास्था !
प्रहरी 1. पुत्रशोक !

---

1. अन्धायुग, पृ: 58.

प्रहरी 2. भविष्यत् !

प्रहरी 1. ये सब

राजाओं के जीवन की शोभा हैं ।"[1]

संवाद शैलीबद्ध वक्तव्यों के रूप में भी होते हैं -

"प्रहरी 1. कोई विक्षिप्त हुआ

प्रहरी 2. कोई शापग्रस्त हुआ

प्रहरी 1. हम जैसे पहले थे

प्रहरी 2. वैसे अब भी है

प्रहरी 1. शासक बदले

प्रहरी 2. स्थितियाँ बिलकुल वैसी है

प्रहरी 1. इससे तो पहले के ही शासक अच्छे थे

प्रहरी 2. अन्धे थे ।"[2]

मौन-मुद्रा

प्रभावोत्पादकता के लिए संवादों में कभी कभी शब्दों को अनुच्चरित छोडता है और कभी कभी शब्द का एक अक्षर मात्र उच्चरित करता है मौन और विराम का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है । तीसरे अंक में युयुत्सु को देखते समय गाँधारी उस पर तीक्षण व्यंग्य करती है -

"बेटा

भुजाएँ ये तुम्हारी

पराक्रम भरी

---

1. अन्धायुग, पृ: 24.
2. वही - पृ: 95.

थकी तो नहीं
अपने बन्धुजनों का
वध करते-करते ?"[1]

अब युयुत्सु मौन ही रहता है । उसका मौन अत्यंत अर्थपूर्ण, प्रभावशाली एवं नाटकीय बन पडा है ।

पुनरावृत्ति

शब्द, वाक्य और वाक्यांशों की पुनरावृत्ति अन्धायुग की खास विशेषता है । बलाघात या पात्रों की उद्विग्नता की अभिव्यक्ति के लिए इसका प्रयोग किया गया है । भाव या अर्थ चेतना को गहराने में पुनरावृत्ति की महत्वपूर्ण भूमिका है । विक्षिप्त संजय अपने आप को आश्वस्त करते हुए कहता है -

"फिर भी रहूँगा शेष
फिर भी रहूँगा शेष
फिर भी रहूँगा शेष
सत्य कितना कटु हो
कटु से यदि कटुतर हो
कटुतर से कटुतम हो
फिर भी कहूँगा मैं
केवल सत्य, केवल सत्य, केवल सत्य ।"[2]

कहीं एक पात्र की उक्ति दूसरा पात्र दुहराता है और कहीं एक की उक्ति का ही अन्तिम सूत्र पकडकर दूसरा अपना वक्तव्य प्रारंभ करता है । प्रहरियों के संवाद इसके नमूने हैं ।

---

1. अन्धायुग, पृ: 34.
2. वही ।

डॉ॰ प्रेमपति ने भारती की पुनरावृत्ति पद्धति की तुलना शेक्सपियर और इलियट की पद्धति से करके इसकी अवहेलना की है । उनकी दृष्टि में इससे "संवाद काव्य न बन कर कोरा गद्यात्मक वार्तालाप जैसा बन गया है ।"[1] हमारी दृष्टि में कहीं-कहीं पुनरावृत्ति आवश्यकता से अधिक हुई है ।

लय

"अन्धायुग" में लय का विशेष स्थान है । नाटकीय स्थिति और पात्रों के संवेग के अनुरूप लय का प्रयोग इसमें देख सकते हैं । कथा-गायन की लय प्रसंगानुसार बदलती रहती है । "अन्धायुग" के निर्देश में लय की काफी विस्तृत जानकारी दी गयी है । प्रहरियों के वार्तालाप को छोड शेष सभी पात्रों के संवाद प्रायः अलग अलग लय में है । पात्रों के मानसिक उद्वेलन के अनुरूप लय में आरोह-अवरोह देख सकते हैं । अश्वत्थामा के संवादों में लय का आवेग ही मुख्य है । पंख, पहिये और पट्टियाँ शीर्षक के अन्तर्गत " मैं हूँ युयुत्सु, मैं संजय हूँ और मैं विदुर हूँ से शुरु होनेवाले उद्घोषात्मक संवाद का बाद में एक तीव्र लय का उन्मेष करते हैं और यति तीव्र लय को जैसे एक ठहराव देती है जिससे त्रासद अनुभव को बहुत दूर तक फैलाने का अवसर मिलता है ।"[2] पात्रों के संवाद के बीच में भी लय-परिवर्तन किया गया है जो पाठकों को चौंकाने में समर्थ हुआ है ।

विस्मय-चिह्न एवं प्रश्न-चिह्न

प्रस्तुत रचना में विस्मय चिह्नों और प्रश्नचिह्नों का काफी प्रयोग हुआ है । इससे कृति की वैचारिकता और गहन बन जाती है ।

---

1. धर्मवीर भारती, पृः 171.
2. आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और संवादीय संरचना - गोविन्द चातक, पृः 128.

अलंकार

"अन्धायुग" में अलंकारों का समुचित प्रयोग किया गया है । अर्थ-व्याप्ति और चमत्कार के लिए उपमा, रूपक, विरोधाभास, श्लेष जैसे अलंकारों का प्रयोग भारती ने किया है । उपमा और रूपक का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है । यथा -

"कुंजर की भांति
मैं केवल पदाघातों से
चूर करूँगा धृष्टद्युम्न को !
पागल कुंजर
से कुचली कमल-कली की भाँति ।"[1]

अश्वत्थामा का यह कथन -

"जख्म हैं बदन पर मेरे
लेकिन पीडा सब शान्त हो गयी बिलकुल
मैं दण्डित
लेकिन मुक्त हूँ ।"[2]

विरोधाभास अलंकार का स्पष्ट उदाहरण है ।

श्लेषालंकार का निदर्शन है संजय का निम्नांकित कथन -

"अन्धों को सत्य दिखाने में क्या
मुझको भी अन्धा ही होता है ।"[3]

---

1. अन्धायुग, पृ: 64.
2. वही - पृ: 114.
3. वही - पृ: 77.

नाटकीय क्षण और अभिनेयता

"अन्धायुग" में नाटकीय विडम्बना के अनेक उदाहरण मिलते हैं । पात्र अवास्तविक स्थिति को वास्तविक मानने पर विडंबना होती है । नेपथ्य से वृद्ध याचक की दुर्योधन की जय हो ध्वनि सुनकर गाँधारी कहती है -

"जीत गया
मेरा पुत्र दुर्योधन
मैं ने कहा था
वह जीतेगा निश्चय आज"[1]

लेकिन स्थिति इसके विपरीत है । दुर्योधन युद्ध में हार जाता है । यह कृति रंगमंच के अनुकूल है । अनेक स्थलों पर इसका मंचन हो चुका है ।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस रचना के संबन्ध में लिखा है - "अन्धायुग" में गद्य और पद्य के माध्यम से उचित संगीत की परिकल्पना की गयी है जो इस नाट्य कृति में महत्व रखती है । हिन्दी गीति-नाट्य को, प्रायः भावनात्मक भूमियों पर फैल रहा था, गंभीर वैचारिकता का माध्यम बनाने में भारती सफल हुए है । हिन्दी के क्षेत्र में यह कार्य उसी भूमिका का है जिस भूमिका का कार्य टी. एस. इलियट की "मर्डर इन द केथेड्रल नामक कृति का हैं ।"[2] डॉ. प्रेमपति एक कदम आगे बढकर "अन्धायुग" को इलियट की कृतियों का अनुकरण मानते हैं । वे लिखते हैं - ""अन्धायुग" में भारती ने जो उपस्थित किया, उसका एक तत्व अर्थात् सार द वेस्टलैंड से, लगता है, लिया और शिल्प मर्डर इन द कैथीड्रल से । द वेस्टलैंड और अन्धायुग - ये शब्द कितने समानार्थी हैं । अपने समकालीन यूरोपीय धर्मनिरपेक्ष अथवा धर्महीन (अथवा गैर-एंग्लोकैथलिक) समाज को एलिट ने वेस्टलैंड कहा । और धर्मवीर भारती ने मर्यादा-निरपेक्ष अथवा मर्यादाहीन युग को अन्धायुग बताया ।"[3] जो भी हो "अन्धायुग" की भावगत और शिल्पगत विशेषताएँ सुधी पाठकों को अकृष्ट करने में सक्षम हैं ।

---

1. अन्धायुग, पृः 21.
2. नयी कविता - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृः 64.
3. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृः 175.

भारती के एकांकी : एक झाँकी

धर्मवीर भारती के पाँच एकांकी हैं - नदी प्यासी थी , नीली झील , आवाज़ का नीलाम संगमरमर पर एक रात सृष्टि का आखिरी आदमी । ये एकांकी "नदी प्यासी थी" संकलन में संगृहीत हैं । इनमें लेखक ने जीवन के कई पहलुओं का अंकन किया है । "मानव-जीवनधारा को पूर्णतः झकझोरकर मनोभूमि की अटल गहराई में सुप्त भावनाओं को जगाकर मानसिक उद्वेलन उत्पन्न करनेवाले मार्मिक क्षणों को लेकर डॉ. भारती ने एकांकियों की रचना की है । ऐसे क्षणों के चुनाव में कलाकार ने बडी ही सहृदयता और मार्मिकता का परिचय दिया है ।"[1]

नदी प्यासी थी

संकलन का प्रथम एकांकी है 'नदी प्यासी थी'। इसका प्रतिपाद्य असफल प्रेम और तज्जन्य पीडा है । संपूर्ण घटना शंकर, शीला, राजेश शर्मा, पद्मा तथा डॉ. कृष्ण स्वरूप कक्कड के इर्द-गिर्द घूमती है । शंकर और राजेश मित्र हैं । एक दिन राजेश बहुत निराश होकर शंकर के घर आता है । राजेश इसलिए निराश है कि कामिनी के साथ उसका रोमांटिक प्रेम असफल हो गया । उन दोनों ने निश्चय किया था कि वे जीवन भर एक दूसरे से प्रेम करते रहेंगे । लेकिन उनका वह निर्णय सफल नहीं हो सका ।

पद्मा शंकर की पत्नी शीला की बहिन है । वह बडी चंचल औरत है । डॉ. कृष्णा और पद्मा के बीच प्रेम होता है । लेकिन राजेश से मिलने पर वह उसपर आकृष्ट होती है । परंतु राजेश कृष्णा के मार्ग से अपने को हटाना चाहता है और आत्महत्या के विचार से निकल जाता है । पर पद्मा यह सोचकर कृष्णा से घृणा करने लगती है कि उसने ही राजेश को उसके रास्ते से हटाया । आत्महत्या के विचार से

---

1. एकांकी और एकांकीकार - रामचरण महेन्द्र, पृ: 149.

घर से निकलनेवाला राजेश नदी के किनारे पर पहुँचने पर सूर्यास्त की शोभा से मुग्ध होता है और जीवित रहने का संकल्प कर लेता है । पर डॉ. कृष्णा नदी में कूदकर आत्महत्या करता है ।

यह एकांकी कुछ ऐसे पात्रों को हमारे सामने प्रस्तुत करता है जो जीवन के ठीक रास्ते से भटक गये हो । प्रत्येक रचना का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है । परंतु पता नहीं इस एकांकी की रचना में लेखक का उद्देश्य क्या है । लगता है दुर्बल-हृदय व्यक्तियों की मानसिकता का चित्रण ही भारती का उद्देश्य है । इसमें शायद लेखक की मानसिकता भी झलकती है ।

नीली झील

प्रस्तुत एकांकी में अतीत के गौरव और मशीनी सभ्यता से खोखले बने वर्तमान जीवन के भेदभाव का अंकन है । एकांकीकार ने इसके लिए कल्पना में एक आदर्शपूर्ण नीली झील की सृष्टि की है । एकांकी का प्रधान पात्र है तान्त्रिक । वह नीली झील के पास रहता है और वहाँ के लोगों की आत्मा की देखभाल करता है । नीली झील की एक विशेषता है कि जब लोग इसके किनारे से चलते हैं तो उनकी परछाई झील में लहराती है । जिस दिन कोई अपना आत्मा खो आता है उस दिन झील क्रुद्ध हो जाती है और झील में उसकी परछाई नहीं झलकती । तब तान्त्रिक उस व्यक्ति को अन्धी घाटियों से अपनी आत्मा खोजने के लिए भेज देता है । उनमें कोई भी नहीं लौट आता है । वहाँ आधुनिक पोशाक पहनकर एक व्यक्ति आता है । पर्वतों और झीलों को भेंट करने के लिए आगन्तुक सोना लाता है । वह उस देश का है जहाँ नदियों को बाँधकर बिजली पैदा की जाती है और अधिकार के लिए लडाई होती है । मशीनों के ज़रिए वह अन्न, बल और वैभव बहुत कुछ पाता है । किंतु उसके पास आत्मा नहीं है । उसने राजदण्ड से अपनी आत्मा की हत्या कर दी और उसे सोने के मकबरे में दफन दिया । नीली झील के दो व्यक्ति आगन्तुक के सोने पर मुग्ध होते हैं और अपनाना चाहते हैं ।

इसके लिए दोनों आपस में लडते हैं । तान्त्रिक उनका पाप अपने ऊपर लेता है । वह आगन्तुक को आत्मा की खोज के लिए आदेश देता है । "नई आत्मा ढूँढने के लिए वापस जाओ उसी देश में जहाँ युद्ध हो रहे हैं, जहाँ प्रजाएँ रक्तपात कर रही हैं । जहाँ फौलाद की भट्ठियाँ धधक रही हैं । जाओ, उस संघर्ष का अर्थ समझो । अन्धेरे से विद्रोह करो, प्रकाश पर आस्था रखो, तुम्हें नयी आत्मा मिलेगी ।"[1]

सारहीन बने आधुनिक जीवन को अर्थपूर्ण बनाना लेखक का लक्ष्य है । इसके लिए वह कल्पना और इन्द्रजाल का सहारा लेता है । आधुनिक मनुष्य भौतिकता को ही सर्वस्व मानता है । भौतिकता की होड में वह मानवीय गौरव एवं संवेदना की उपेक्षा करता है । एकांकी का संदेश है कि अंतरात्मा के बिना मनुष्य का जीवन अन्धी घाटियों का भटकाव है ।

आवाज़ का नीलाम

यह एकांकी स्वतंत्र्योत्तर भारत की पत्रकारिता से संबद्ध है । आज पत्रकार अपने धर्म से कोसों दूर है । सत्ताधारियों की चापलूसी ही उसका धर्म बन गया है । सेठ बाजोरिया एक ऐसा पत्रकार है । वह पाँच पत्रों का मालिक भी है । लेकिन जो पत्रकार मानवीय मूल्य और संवेदन को महत्व देकर पत्रधर्म पर अडिग रहता है, उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडता है । आवाज़ का पत्रकार दिवाकर की स्थिति ऐसी है । दस वर्षों की कडी मेहनत से, अपनी हड्डियाँ गलाकर उसने अपना अखबार बन्द होने से बचा लिया । किंतु पत्नी की बीमारी से उस पर सेठ बाजोरिया का इतना कर्ज चढ गया कि उसे आवाज़ बेचना पडा । आवाज़ की खरीदी-बिक्री के कागज़ों पर दस्तखत करने के तुरंत बाद दिवाकर को अपनी पत्नी शीला की मृत्यु का खबर मिलता है । इससे दिवाकर खुश हो उठता है । क्योंकि, वह सोचता है, अब उसे आवाज़ बेचने की ज़रूरत नहीं है । लेकिन बाजोरिया उसके पास से कानूनी कागज़ात लेकर कार पर जाता है । दिवाकर चीखता हुआ भागता है कि "मैं आवाज़ नहीं बेचूँगा" ।

---

1. नदी प्यासी थी - धर्मवीर भारती, पृ: 48.

एकांकीकार ने आधुनिक पत्रकारिता का नंगा चित्र प्रस्तुत किया है । जो बडा धनी होता है वह एक साथ अनेक पत्रों का प्रकाशन कर सकता है , पत्रकारों को खरीद सकता है , सरकार और समाज को अपने विचारानुसार प्रभावित कर सकता है । पर पत्रकार के धर्म पर अडिग रहनेवाला पराजित होता है । उसकी कोई नहीं सुनता । यही हमारे देश की पत्रकारिता का वास्तविक चित्र है । भारती ने बडी सफलता के साथ इस अवस्था का चित्रण किया है ।

संगमरमर पर एक रात

यह एक ऐतिहासिक एकांकी है । शेरअफगान की पत्नी मेहरुन्निसा और मुगल सम्राट जहाँगीर के प्रेम का वर्णन है इसमें । मेहर-आगे नूरजहाँ - जब पन्द्रह वर्ष की थी, शाहजादा सलीम-आगे जहाँगीर - उस पर मुग्ध हो गया था । किंतु सम्राट अकबर ने इनके प्रेम का विरोध किया । अतः दोनों को अपना प्रेम मन में ही दफनाना पडा । मेहर की शादी शेरअफगान से होती है । शादी के सत्रह वर्ष बाद शेरअफगान की हत्या होती है तो जहाँगीर मेहर और उसकी बारह वर्ष की बेटी लाडली को राजमहल ले आता है । राजमहल में होने पर भी मेहर कसीदारी से अपना गुज़ारा करती है और जहाँगीर से कोई सहायता नहीं लेती है । जहाँगीर अपना कौमार स्वप्न मेहर के सामने प्रस्तुत करता है । मेहर का मन द्वन्द्वग्रस्त हो जाता है कि शेरअफगान के प्रति एकनिष्ठ रहे या बादशाह के अनुराग को स्वीकार कर ले । अंत में मेहर जहाँगीर का सम्राज्ञी-पद स्वीकार करती है ।

मेहर की बेटी लाडली शाहजादा परवेज के प्रेम में पड जाती है । लेकिन मेहर द्वारा सम्राज्ञी-पद स्वीकार करने पर शाहजादा सोचता है कि "माँ-बेटी दोनों एक सी है । माँ ने बादशाह पर जाल डाला, बेटी ने शाहजादे पर ! सल्तन्त की प्यास भी आदमी को कितना जलील बना देती है ।"[1] इससे दोनों का प्रेम-संबन्ध टूट जाता है और लाडली अपने जीवन को असहाय समझने लगती है ।

---

1. नदी प्यासी थी - धर्मवीर भारती, पृ: 96.

सृष्टि का आखिरी आदमी

"नदी प्यासी थी" संकलन का अंतिम एकांकी है सृष्टि का आखिरी आदमी । यह रेडियो के लिए लिखा गया था । लेखक ने इसे रेडियो-छन्द-नाट्यघट कहा है । मुक्तछंद में लिखा एक काव्य नाटक है यह । अतः इसमें कथातत्व क्षीण है । यांत्रिक सभ्यता से ध्वस्त जीवन पर प्रकाश डाला गया है । साथ ही एक उद्घोषक और एक मुर्दे के ज़रिये एकांकीकार ने आस्था का स्वर मुखरित किया है । एकांकी का अधिकांश भाग उद्घोषक द्वारा वर्णित है । वह अपने वर्णन-विवरण के माध्यम से नयी सृष्टि के आगमन की उद्घोषणा करता है । संवेदनाशून्य भौतिकवादी सभ्यता के कारण मनुष्य के सपने हत्या से और हथकड़ियों से तोले जाते हैं । शासकों को अपनी शक्ति का गर्व है । वे वैज्ञानिक की आवाज़ को उन्हीं के द्वारा निर्मित बन्दूकों से दबाते हैं । लेकिन जब मुर्दा जनता की भूख की ज्वालामुखी धधक उठती है तो उसे रोकने की ताकत शोषक शासकों के पास नहीं होती । एकांकी का एक प्रमुख पात्र है मुर्दा जो मानवीयता से संपन्न व्यक्ति का प्रतीक है ।

शिल्प-विधान

धर्मवीर भारती के एकांकियों में पात्रों की संख्या कम है । प्रत्येक एकांकी में एक न एक पात्र आदर्श वा आस्था का प्रतिनिधि है । 'नदी प्यासी थी' का राजेश, 'नीली झील' का तांत्रिक , 'आवाज़ का नीलाम' का दिवाकर, 'संगमरमर पर एक रात' की लाडली और 'सृष्टि का आखिरी आदमी' का मुर्दा इसका नमूना है । इनके संवाद कभी कभी लंबे हो गये हैं । यह एकांकी के प्रभाव पर असर डालता है । भारती ने विषय और पात्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है । भावुक पात्र राजेश, कटु यथार्थ का सामना करनेवाला पत्रकार दिवाकर और 'नीली झील' के बूढ़ा तांत्रिक की भाषा इसका प्रमाण है । 'संगमरमर पर एक रात' की कथा मुगलकालीन है । इसलिए इसकी भाषा उर्दू और फारसीमय है । 'सृष्टि का आखिरी आदमी' ध्वनिप्रधान रेडियो रूपक है । मंचन की दृष्टि से 'आवाज़ का नीलाम' को छोड शेष एकांकी सफल नहीं है । 'नीली झील' ऐन्द्रजालिक है । 'नदी प्यासी थी' और 'संगमरमर पर एक रात' में ऐसे दृश्य हैं जिन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है । हमारा निष्कर्ष है कि जितनी सफलता भारती ने अन्य साहित्यिक विधाओं में हासिल की है उतनी एकांकी विधा में नहीं ।

अध्याय - पाँच

धर्मवीर भारती की कहानियाँ

डॉ. धर्मवीर भारती सामाजिक यथार्थ का सच्चा चित्र खींचनेवाला कहानीकार है । उन्होंने वैयक्तिक अनुभूतियों का अंकन भी अपनी कहानियों में किया है । "भारती का दृष्टिकोण समाज सापेक्ष है, पर वे व्यक्ति सापेक्षता की भी उपेक्षा नहीं करते और इन्हीं दोनों बिन्दुओं के मध्य उनकी कहानीकला विकसित होती है ।"[1] उनके दो कहानी-संकलन हैं - "चाँद और टूटे हुए लोग" और "बन्द गली का आखिरी मकान" । इन दोनों संकलनों में कहानीकार ने निकट से देखे और अनुभव किये ठोस यथार्थ चित्रित किया है । साथ ही इनमें कल्पना की उडान भी देख सकते हैं विशेषकर "चाँद और टूटे हुए लोग" की कुछ कहानियाँ कल्पना और रोमांस से ओतप्रोत हैं । अपनी कहानियों में भारती ने अपने परिवेश का समग्र निरूपण किया है ।

चाँद और टूटे हुए लोग

"चाँद और टूटे हुए लोग" धर्मवीर भारती का प्रथम कहानी संकलन है । तीन भागों में विभक्त इस संकलन में पच्चीस कहानियाँ हैं । संख्या की दृष्टि से अधिक होने पर भी इसमें कलात्मक सौन्दर्य कम है । लेखकीय जीवन की प्रारंभिक रचनाएँ होने से भारती के इस संकलन में काफी अविदग्धता है । प्रस्तुत संकलन की कहानियों में जीवन के विविध प्रसंगों का चित्रण है । समाज के उपेक्षित वर्ग को उभारने का प्रयास इनमें द्रष्टव्य है । आदर्श, कल्पना और रोमानियत की अधिकता से यह प्रयास कोरी

---

1. धर्मवीर भारती और कमलेश्वर की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन - कृष्ण कमलेश, पृ: 59.

प्रचारवादिता रह गया है । अज्ञेय ने स्पष्ट किया है कि "वास्तव और आदर्श में कोई मौलिक विरोध नहीं होता, यह कहना शायद आवश्यक नहीं है । इतना ही है कि जो आदर्श वास्तव की भूमि से नहीं उठता, वह निराधार ही रहता है, उसे पाया नहीं जा सकता, उसकी ओर बढा नहीं जा सकता, वह जीवन नहीं देता ।"[1]

कस्बे का जीवन

"चाँद और टूटे हुए लोग" के प्रथम खण्ड में सात कहानियाँ हैं - 'हरिनाकुस और उसका बेटा', 'कुलटा' 'मरीज नंबर सात' 'धुआँ', 'युवराज', 'अगला अवतार' 'चाँद और टूटे हुए लोग'। इन कहानियों में कहनीकार ने कस्बा और वहाँ के जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है । 'हरिनाकुस और उसका बेटा' एक ऐसी कहानी है जिसमें एक जल्लाद के हृदय-परिवर्तन चित्रित किया गया है । जल्लाद हरिनाकुस के माध्यम से कहानीकार यह स्पष्ट करना चाहता है कि आदमी ऊपर से क्रूर और कठोर दीखने पर भी उसमें सहज आदमियत विद्यमान है । हरिनाकुस का जल्लादवृत्ति से इस्तीफा देना इसका प्रमाण है । कस्बाई जीवन में विवाहिता के पास आनेवाले को प्रेमी समझा जाता है । इससे स्त्री की खूब पिटाई होती है और उसे कुलटा समझा जाता है । 'कुलटा' में ऐसी मनोवृत्ति का चित्रण है । लाली को उसका पति नंदराम रोज़ पीटता है । क्योंकि वह सोचता है कि लाली के नाम आनेवाला खत अवैध व्यक्ति का है । वस्तुतः वह उसके पहले पति के बच्चे का खत है । नारी की शोचनीय स्थिति उजागर करने के साथ माँ के महत्व का प्रतिपादन भी 'कुलटा' में है ।

असहाय व्यक्ति का मज़ाक करना और उसकी उपेक्षा करना समाज की आदत है । अस्पताल में मरीजों की शुश्रूषा के लिए प्रतिबद्ध नर्स भी उनकी उपेक्षा करती है और उनके मरने की कामना करती है । 'मरीज नंबर सात' में भारती ने इस

---

1. आत्मनेपद - अज्ञेय, पृः 71.

मनोवृत्ति को अभिव्यक्त किया है । 'धुआँ' कहानी में एक सराय में आग लग जाने का व्यंग्यात्मक प्रतिपादन है । गली से उठते धुएँ को देखकर लोगों के मन में उठनेवाली भावनाओं को इसमें व्यक्त किया गया है । "आग और धुएँ में बच्चों के लिए एक अनोखा आकर्षण होता है । उन्हें आग और धुएँ से बेहद उल्लास मिलता है । अपनी उम्र और ज्ञान-विज्ञान, अनुभव वगैरह के बावजूद हम सभी कहीं न कहीं बच्चे होते हैं । आप भी हैं । मैं भी हूँ ।"[1] आग लगने की दारुण स्थिति में भी पाशविक वृत्तियों के जाग उठने की अमानवीय स्थिति का पर्दाफाश करती है यह कहानी । 'युवराज' और 'अगला अवतार' में आदर्श, नैतिकता एवं धर्म का आवरण धारण किये ढोंगी लोगों पर प्रहार किया गया है । अस्पताल की अव्यवस्था रिपोर्ट करने के लिए संवाददाताओं को बुलानेवाला युवराज उनका सिगरेट चुरा लेता है । इसी प्रकार अवतार और ईश्वर के नाम पर अधिकतर सन्यासी अपना उल्लू सीधा करते हैं । 'अगला अवतार' कहानी के बाबा से लेखक और उसके दोस्त ने होटल में मिला और झुककर श्रद्धा से प्रणाम किया । आगे - "भगवान आत्म-प्रशंसा और वरदान भरे नेत्रों से हमारी ओर देखकर हम दोनों के हिस्से का दूध अपने प्याले में उँडेलकर चम्मच से चीनी मिलाने लगे ।"[2] इस खंड की अंतिम कहानी 'चाँद और टूटे हुए लोग' में दो युवकों - राजेश और कुँवर - के बीच की काल्पनिक प्रेम-चर्चा है । वस्तुतः यह कहानी प्रस्तुत संकलन के तृतीय खंड में जोडनी थी । इसका स्वरूप उस खंड से मिलता-जुलता रहता है ।

अकाल के यथार्थवादी चित्र

प्रस्तुत संकलन का द्वितीय खण्ड है 'भूखा ईश्वर' । इसमें नौ कहानियाँ हैं - 'भूखा ईश्वर', 'मुर्दों का गाँव', 'एक बच्ची की कीमत', 'आदमी का गोश्त', 'बीमारियाँ', 'कफन-चोर' 'एक पत्र', 'हिन्दू या मुसलमान', और 'कमल और मुर्दे' । इन कहानियों का

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग - धर्मवीर भारती - पृ: 38.
2. वही - पृ: 56.

आधार 1943 के बंगाल का अकाल है । अकाल में लाखों लोगों की मृत्यु हुई थी । संवेदनशील साहित्यकार भारती के मन पर इस घटना ने गहरी चोट पहुँचायी । तत्कालीन मानसिकता को उन्होंने व्यक्त किया है कि "एक और पीड़ा मन को कचोट रही थी । वह थी सन् 42 के आन्दोलन की 'निष्फलता और बंगाल का अकाल । मन में एक तीखा गुस्सा था - और वह अकस्मात् व्यक्त हुआ एक नयी तरह की कहानियों में जो उतनी ही यथार्थ थी जितनी दूसरे प्रकार की कहानियाँ कल्पनापरक थीं ।"[1]

प्रस्तुत खण्ड की सारी कहानियाँ अकाल का नंगा और अतिरंजित चित्र प्रस्तुत करती हैं । अकाल के विकराल रूप के साथ कई संबद्ध समस्याओं की ओर भी लेखक ने इशारा किया है । पहली कहानी 'भूखा ईश्वर' में भूख से ईश्वर भी दुर्बल हो जाता है । स्वर्ग में उसे स्थान नहीं मिलता है । पृथ्वी पर आने पर वह देखता है कि पुजारी लोगों को स्वर्ग-प्रवेश का परवाना दे रहा है । इसके विरुद्ध वह आवाज़ उठाता है जिससे वह गिरफ्तार हो जाता है और उसे जेल जाना पडता है । यहाँ कहानीकार ने धर्म के ठेकेदारों पर प्रहार करने के साथ अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले लोगों की स्थिति का ब्योरा भी दिया है । अकाल को रेखांकित करते समय 'मुर्दों का गाँव' में भारती ने सहज आदमियत की अभिव्यक्ति भी की है । लेकिन 'एक बच्ची की कीमत' में बिन्दो और रामी अपनी अपनी बेटियों को बेचती हैं , जो अठन्नी कीमत के रूप में मिलती है वह रामी के हाथ से बनिया हडप लेने का निष्ठुर दृश्य भी हम देखते हैं । गरीबी से पति चंदन की लाश दफनाने के लिए पत्नी बेला के विवश होकर अपना शरीर बेचने का वर्णन है 'बीमारियाँ' कहानी में । 'कफन-चोर', 'एक पत्र', 'हिन्दू या मुसलमान', 'कमल और मुर्दे' इत्यादि कहानियों में भी गरीबी का बीभत्स रूप चित्रित है । 'हिन्दू या मुसलमान' कहानी में सांप्रदायिकता के घृणित पक्ष का भी उद्घाटन हुआ है । "यद्यपि सरकारी अस्पतालों के कार्य से भुखमरों की संख्या में भारी कमी है, फिर भी अभी मौतें बराबर हो रही है । मुस्लिम धाबे के नज़दीक एक बुढिया की लाश पाई गयी है जो ठीक वक्त से अस्पताल न पहुँच पाने के कारण मर गयी ।

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग - धर्मवीर भारती - भूमिका ।

यह नहीं समझ में आता कि लाश जलाई जाय या दफनाई जाय, क्योंकि यह पहचान नहीं हो पाई है कि बुढिया हिन्दू थी या मुसलमान ...'"[1] इसी प्रकार 'कमल और मुर्दे' में हिन्दुस्तानियों के प्रति अंग्रेज़ों के घिनौने कृत्यों और विचारों को स्पष्ट किया गया है ।

भारती ने अकाल संबन्धी अपनी कहानियों में समाज के शोषक सेठों पर प्रहार किया है । एक ओर भूखे बच्चे प्यास से दम तोड रहे हैं तो दूसरी ओर अमीर लोग अपने बच्चों को मना-मनाकर हार्लिक्स पिला रहे हैं । दूकानदार लोग अनाज की कमी से इतने लाभ उठाते हैं कि चार आने सेर से खरीदे हुए चावल दो रुपये सेर के भाव बेच रहे हैं । इसीप्रकार कपडे की कमी से गरीब लोग सुन्न पड जाते हैं । अमीर लोग उनके नंगे कन्धों पर आसानी से हाथ जमाकर सोने और चाँदी की सीढियों पर चढते हैं । सचमुच इस खण्ड की कहानियों की भावभूमि प्रगतिवादी और यथार्थवादी है ।

स्वप्नलोक और स्वप्नावस्था की कहानियाँ

"चाँद और टूटे हुए लोग" का तृतीय खण्ड है 'कलंकित उपासना'। इसमें 'पूजा', 'स्वप्नश्री और श्रीरेखा' 'शिंजिनी', 'कला: एक मृत्युचिह्न' 'नारी और निर्वाण', 'तारा और किरण', 'कुबेर' मंजिल और 'कलंकित उपासना' शीर्षक नौ कथाएँ हैं । ये भारती की प्रारंभकालीन रचनाएँ हैं । परियों और देवताओं से संबन्धित हैं ये सारी कथाएँ । इन्हें देखकर श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है - "कहानी के में भारती ने जीवन में पहली बार अपना सजग चरण अस्तित्व की अटपटी भूमि भारती को सिद्ध करना है कि मेरी पंक्तियाँ मेरा पक्षपात नहीं हैं । घा से नहीं, साँस की कलम से ।"[2] स्वयं भारती ने स्वीकार किया है कि आज कथाओं को पढकर उन्हें आश्चर्य होता है । तब पाठक की स्थिति कैसी रहे

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग - धर्मवीर भारती - पृ: 130.
2. वही - पृ: 263.

सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । स्वस्थ और सुबुद्ध पाठक को ये कहानियाँ ‘ ’ संतुष्ट नहीं करती हैं । इस खण्ड में भारती की कल्पना पृथ्वी का आश्रय छोड देती है , अन्न की सीढियों से संबन्ध तोड़ देती है वह आकाश की नीली झाडी में चाँदी के काँटों में बिंध कर ऊपर ही उलझी रह जाती है - भूखी, प्यासी, दुर्बल, निकम्मी व्यर्थ ।"[1]

अभिव्यक्ति-पक्ष

"चाँद और टूटे हुए लोग" का अभिव्यंजना-पक्ष भी दुर्बल है । सतही दृष्टि से कथा कही गयी है और तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है । अतः संकलन की अधिकांश कहानियाँ रेखाचित्र का रूप धारण करती हैं । वह पाठक की संवेदना से बहुत दूर रहती हैं । 'एक पत्र' जैसी कहानी पत्रात्मक शैली की होने पर भी उसकी तथ्यात्मकता प्रभावान्वयन में बाधा उपस्थित करती है । प्रस्तुत संकलन की भाषा काव्यात्मकता और रोमांस से ओतप्रोत है । "उन्मुक्त नीला आसमान था, जिसमें रात को रुपहली चाँदनी हँसती थी, दिन को सुनहली धूप लहराती थी, सुबह को शबनम झरती थी, रात को तारे जगमगाते थे ।"[2] इसमें प्रकृतिचित्रण आवश्यकता से अधिक है । लेखक की दृष्टि इसमें रोमांटिक और आदर्शवादी है । आदर्श समाज की स्थापना ही उनका एकमात्र लक्ष्य प्रतीत होता है "चाँद और टूटे हुए लोग की कहानियों में उपस्थित किया गया सामाजिक यथार्थ आदर्श के संकेत से युक्त है । इन कहानियों में सामान्यतः निम्न एवं मध्यवर्ग का चित्रण हुआ है । इनमें समाज की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों की आलोचना करते हुए लेखक ने समाज-परिवर्तन की प्रेरणा दी है ।"[3]

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग - धर्मवीर भारती - पृः 262.
2. वही - पृः 252.
3. धर्मवीर भारती का साहित्य सृजन के विविध रंग - डॉ. चन्द्रभानु सोनवणे - पृः 127.

संकलन के तृतीय खण्ड में पात्र परियाँ और ईश्वर हैं । कल्पना की ऊँची उडानों से पूर्ण प्रस्तुत संकलन के संबन्ध में श्री रामदास नादार ने लिखा है कि "चाँद और टूटे हुए लोग संकलन की कहानियों को कहानी कहना शायद गैरवाजिब हो इनमें से कुछ रचनाएँ ललित निबन्धों के निकट हैं । ऐसी रचनाओं में किसी वस्तु या भाव के संबन्ध में उठनेवाले विचारों को लेखक ने छायावादी कल्पनालोक के धरातल पर बाँध कर उनमें कहीं-कहीं दार्शनिक कथ्य के संदर्भ अनुस्यूत कर दिये हैं । कथ्य के धरातल पर भी ये कहानियाँ काफी कमज़ोर हैं । इन कहानियों की सबसे बडी सीमा यह है कि इनके पात्र कम बोलते हैं, भारती स्वयं ज्यादा । परिणामतः उनकी कहानियाँ कहानी न रहकर बतकही बनकर रह जाती है और समूचा संकलन बतकहियों का एक पुलिंदा ।"[1] हमारा निष्कर्ष है कि सामाजिक कुरीतियाँ, अकाल और रोमांस से युक्त प्रस्तुत संकलन की कहानियाँ पाठकीय संवेदना को जागरित करने में सक्षम नहीं हैं । इसका मुख्य कारण लेखक में अभिव्यक्ति-कुशलता का अभाव है । पर कालांतर उन्होंने अपनी कमी को पहचान लिया और अपनी कला वास्तविकता के धरातल पर लाने में सफलता पाई । फिर भी रोमानी प्रवृत्ति के मायाजाल से वे कभी मुक्त नहीं हो पाये ।

बन्द गली का आखिरी मकान

धर्मवीर भारती का दूसरा और अंतिम कहानी-संग्रह है "बन्द गली का आखिरी मकान" । इसका प्रकाशन 1969 में हुआ । इसमें 1955 से लेकर 1969 तक के चौदह वर्ष की लंबी अवधि में लिखी गयी 'गुलकी बन्नो', 'सावित्री नंबर दो' 'यह मेरे लिए नहीं', 'बन्द गली का आखिरी मकान' शीर्षक चार ही कहानियाँ हैं । इन कहानियों के ज़रिए भारती को हिन्दी के नये कहानीकारों में महत्वपूर्ण स्थान मिला है । इनमें उनकी कहानी-कला निखर उठी है ।

---

1. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृः 102.

भारती की प्रारंभिक कहानियाँ स्थूल कथानक एवं भावुकता से युक्त हैं। लेकिन प्रस्तुत संकलन की कहानियाँ उनसे भिन्न एवं विशिष्ट हैं। इनमें लेखक ने हमारे जीवन के परिचित पर अछूते प्रसंगों का उद्घाटन किया है, साथ ही जीवन की विसंगतियों पर प्रकाश भी डाला है। भारती विसंगतियों का चित्रण करते समय भी अपनी मूल्यवादी दृष्टि बदलने को तैयार नहीं हुए हैं। यही उनकी कहानियों की श्रेष्ठता है और कमज़ोरी भी। भारती कहानी लिखने के लिए बडे बडे नगरों की ओर नहीं गये हैं। रचनाकार की प्रतिबद्धता ही उसे जीवन के संगत या असंगत प्रसंगों से जोडे रखती है। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम है कि हमारा परिवेश पश्चिमी परिवेश से बिलकुल भिन्न है। हमारे यहाँ कुंठा, अकेलापन और ऊब आर्थिक दबाव एवं परिवार के टूटन से उद्भूत हैं। यह जानते हुए उन्होंने अपनी कहानियों का ताना-बाना बुना है। अतः उनकी इन कहानियों के संबन्ध में जटिलता का प्रश्न और सपाटता का आक्षेप नहीं है। भारती अपनी कहानियों में केवल बौद्धिक समस्याओं को खडा करके आरोपित सामाजिकता की ओर नहीं जाते हैं। इनमें अनुभूतियों को अपनी समग्रता में पेश किया गया है व्यक्ति की चेतना में प्रवेश करने के लिए भारती ने कहानी में कथानक को एक अनिवार्य चीज़ माना है। कमलेश्वर ने स्पष्ट किया है कि "नयी कहानी का यह एक सशक्त पक्ष है कि उसने उलझे हुए जीवन को संप्रेषित करते हुए भी, अपनी आन्तरिक गठन को बहुत सुलझाकर रखा है और इसी लिए उसका कथ्य और भी अधिक शक्ति-संपन्न रूप में अभिव्यक्त हुआ है।"[1]

संक्रमणकाल और नयी कहानी

प्रस्तुत संकलन की कहानियों का रचनाकाल हिन्दी कहानी के संबन्ध में असाधारण महत्व का है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई कारणों से देश के लोगों की चेतना में गंभीर परिवर्तन आये। मानवीय मूल्य और रागात्मक संबन्ध में आमूल फेर-बदल हुआ है। मनुष्य और मनुष्य के आत्मीय संबन्ध औपचारिक और ठंडा हो गये।

---

1. नयी कहानी दशा दिशा संभावना - सं. सुरेन्द्र, पृः 156.

त्याग, बलिदान जैसी ऊँची भावनाएँ केवल भाषणों तक सीमित रह गयीं । स्त्री-पुरुष संबन्धों में असन्तुलन दिखाई पडने लगा । पारिवारिक भूमिकाओं के निर्वाह में भी बदलाव उपस्थित हुआ । निष्ठा और ईमानदारी जैसे मूल्यों का कोई विशेष अर्थ नहीं रह गया । व्यक्ति की आस्था डगमगाने लगी । मोहभंग का एक नैरंतर्य समाज में उभरता दिखायी देने लगा ।

जीवन के बदलते संदर्भों और क्षणों को कहानी में अत्यंत बारीकी से संश्लिष्ट रूप में अंकित करने का प्रयास आज़ादी के बाद के कथाकारों ने किया । इससे हिन्दी कहानी में एक नये दौर की शुरूआत हुई जिसे नयी कहानी नाम से अभिहित किया जाने लगा । इसका मतलब यह नहीं कि यह धारा अपने अतीत से एकदम कटी हुई है । जैनेन्द्र, अज्ञेय, जोशी जैसे स्वतंत्रता से पूर्व प्रतिष्ठित कहानीकारों की रचना-प्रक्रिया निरन्तर जारी रही । आज़ादी के बाद नये बोध को लेकर राजेन्द्रयादव, मोहनराकेश, निर्मलवर्मा, कमलेश्वर, अमरकान्त, भीष्मसाहनी, उषा प्रियंवदा, फणीश्वर-नाथ रेणु धर्मवीर भारती जैसे अनेक कहानीकार सामने आये । इन कहानीकारों ने अपने परिवेश और उसमें जूझते व्यक्ति का समग्र चित्रण किया है । "नयी कहानी परिवेश के माध्यम से व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम से परिवेश को पाने की एक प्रक्रिया है और हर कथाकार ने इस प्रक्रिया को अपने ढंग से ग्रहण किया है ।"[1] नयी कहानी का लक्ष्य सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों से पेचीदा बन गये जीवन में मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा करना ही है । नये कहानीकार किसी बाद विशेष में विश्वास न कर व्यक्ति के संदर्भ में व्यापक जीवन पर दृष्टिपात करने की चेष्टा करते हैं । उन्होंने वैयक्तिक, अनुभूति को विशाल दायित्वबोध से संपृक्त कर ईमानदारी के साथ उसे व्यक्त करने का प्रयास किया है । "नयी कहानी ने अपने जातीय राष्ट्रीय संदर्भों से अपने को अधिक जोडा था अपने समाज के मानसिक, आर्थिक और नैतिक रूप से प्रताडित, दलित, बुझे और टूटे हुए पात्रों को ही सहानुभूति और संवेदना दी थी लोक-जीवन से सीधा संबन्ध जोडा था ।"[2] मनुष्य के जटिल जीवन की अभिव्यक्ति तटस्थ भाव से नयी कहानी में होती है ।

---

1. कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्रयादव , पृ: 45.
2. नयी कहानी की भूतिका - कमलेश्वर, पृ: 71.

नयी कहानी ने शैली की पृथक सत्ता को अस्वीकार किया । अब कहानी को स्वतंत्रता के पूर्व की कहानियों की तरह कथावस्तु, कथोपकथन, पात्र, वातावरण, भाषा, उद्देश्य आदि दृष्टियों से मापना आसान नहीं है । नयी कहानी में ये सभी तत्व इतने मिले हुए हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता । अब कहानी बनाती नहीं, वह स्वयं बनती है । उसका उद्देश्य मनोरंजन करना या उपदेश देना नहीं है । अतः उसमें स्थूल कथानक नहीं के बराबर है । कथानक का ह्रास जैनेन्द्र, जोशी जैसे कहानीकारों में भी देख सकते हैं । लेकिन वह जीवन-धारा से असंपृक्त, पलायनवादी और आत्मपरक प्रतीत होता है । "कथानक का ह्रास" से यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि नये कहानीकार कथानक को बिलकुल हेय समझते हैं । सफल संप्रेषण के लिए वे इसका भी उपयोग करते हैं ।

नयी कहानी का प्रारंभ और अंत भी बदल गया है । किसी एक जिन्दगी को स्वीकार करके उसके लिए जीने और मरने से कहानी का आरंभ और अंत होने की प्रवृत्ति अब समाप्त हो गयी । नयी कहानी का प्रारंभ वस्तुतः वहाँ से होता है जहाँ वह समाप्त होती है । यह प्रवृत्ति प्रेमचन्द की 'कफन' जैसी कुछ कहानियों में देख सकते हैं । लेकिन नयी कहानी ने इस प्रवृत्ति को और भी सूक्ष्मतर बनाने की चेष्टा की है । नये कहानीकार पाठकों से कहानी के अंत में चरित्रों के संबन्ध में कल्पना कर लेने और अपने-अपने निष्कर्ष निकाल लेने की मांग करते हैं । नयी कहानी में चरम सीमा जैसी बात नहीं है । इसकी भाषा संश्लिष्ट है । वह जडता से मुक्त है । उसने किताबी भाषा से पृथक होकर भावों के समानान्तर भाषा को अपनाया और उसमें नये नये अर्थों की तलाश की । संक्षेप में "नयी कहानी का शिल्प मन्नू और अमरकान्त की कहानियों-सा कभी सीधा-सादा हो जाता है, कभी सर्वेश्वर और रघुवीर सहाय की कहानियों-सा चित्रभाषायुक्त, कभी निर्मलवर्मा की कहानियों-सा सर्वथा विदेशी, कभी रेणु की कहानियों-सा सर्वथा देशी, कभी श्रीकान्तवर्मा की कहानियों-सा शैलीहीन, तो कभी राजकमल की कहानियों-सा शैलीग्रस्त । इसके बाद भी नयी कहानी एक रास्ता है, एक दिशा है - मंजिल या ध्रुवतारा नहीं ।"[1]

---

1. नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति- सं. देवीशंकर अवस्थी, पृः 109.

गुलकी बन्नो

नारी जीवन से संबद्ध एक बहुचर्चित कहानी है 'गुलकी बन्नो'। इसमें नारी के अंतरमन में निहित आग्रहों को सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। संपर्कों के लिए लालायित पर संपर्कों से कटी गुलकी की आन्तरिकता का उद्घाटन सामाजिक संदर्भ में नयी संवेदनात्मक दृष्टि से कहानीकार ने किया है। "गुलकी बन्नो" में पति-पत्नी के टूटते हुए संबन्ध और नारी की पुनः उन संबन्धों को बनाने की ललक का चित्रण है। संबन्धों की पुनःस्थापना की ललक है, किन्तु नवीन संबन्धों का चित्रण नहीं। पुनःस्थापना की ललक भी बौद्धिक स्तर की न होकर भावुकता के स्तर की है।"[1] अपने पति की कठोर मारपीट से, विवाह के पाँच साल बाद गुलकी कुबडी बन गयी। कुबडी गुलकी को पति ने घर से बाहर निकाल दिया और रखैल रख ली। तब गुलकी अपने नैहर आकर वहाँ पडोसिन घेघा बुआ के चबूतरे पर दूकान लगाती है। किराया न मिलने पर घेघा बुआ ने उसकी दूकान बहुत बेरहमी से उजाड दी। तब पडोसिन साबुनवाली सत्ती ने गुलकी को अपने यहाँ आश्रय दिया। कुछ दिन बाद उसका पति अपनी दूसरी स्त्री और उसके बच्चे की सेवा-शुश्रूषा के लिए उसे ले जाने के लिए आता है। सत्ती ने उसे निष्ठुर पति के गाल पर तमाचा लगाने की प्रेरणा दी। पर वह "उस आदमी के पाँव पर गिरके फफक-फफक कर रोने लगी, हाय! हमें काहे को छोड दिया। तुम्हारे सिवा हमारा लोक-परलोक और कौन है। अरे, हमरे मरै पर कौन चुल्लू-भर पानी चढाई "[2] गुलकी के पिता ने सौ रुपये के लिए अपना घर और ज़मीन गिरवी रखी थी। घेघा बुआ सौ रुपया ड्राइवर बाबू से दलाली वसूल करके गुलकी की ज़मीन उसका हवाला कर देती है। अंत में गुलकी अपने पति के साथ जाती है।

---

1. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डॉ. रमेशचन्द्र लवानिया, पृः 237.
2. बन्द गली का आखिरी मकान - धर्मवीर भारती, पृः 16-17.

नारी जीवन की ट्रेजडी

प्रस्तुत कहानी के केन्द्र में गुलकी अपने संपूर्ण बाह्य और आंतरिक जगत् के साथ उपस्थित है । पति द्वारा उसका नारीत्व अपमानित और उपेक्षित है । आसपास के लोगों - घेघा बुआ, ड्राइवर बाबू, बच्चे आदि - से उसका व्यक्तित्व भी । मरा हुआ बच्चा पैदा होने पर पति ने उसे सीढी पर से ढकेल दिया और घर से निकाल दिया । कहानीकार ने यहाँ नारी-जीवन की ट्रेजडी चित्रित की है ।

भारतीय नारी की कमज़ोरी है कि चाहे पति कितना भी क्रूर क्यों न हो, उसे देवता मानकर उसकी पूजा करना अपना धर्म मानती है । गुलकी पुरानी मान्यताओं से चिपटी हुई भारतीय नारी का प्रतिनिधि है । जब पति उसे वापस ले जाने आता है तो वह उससे प्रतिशोध करने के बदले उसके पैरों पडकर बिल-बिलाती है । वह भली-भाँति जानती है कि दासी बनाने के लिए पति उसे लेने आया है । फिर भी उसमें आशा है कि सौत का राज नहीं चल पाये । वह कहती है - "पति से हमने अपराध किया तो भगवान् ने बच्चा छिना लिया, अब भगवान हमें छमा करेंगे । छमा करेंगे तो दूसरी संतान देंगे? क्यों नहीं देंगे? खोट तो हमीं में है । फिर संतान होगी तब तो सौत का राज नहीं चलेगा ।"[1] इसप्रकार प्राकृतिक और शारीरिक अभिशाप से युक्त भारतीय नारी के अभिशप्त जीवन का नमूना है 'गुलकी बन्नो'।

आदिम बोध की तडप

'गुलकी बन्नो' में भारती ने मनुष्य में विद्यमान जीवनेच्छा की अभिव्यक्ति की है । जीवन की विषम परिस्थिति में जिजीविषा ही उसका संबल है । प्रस्तुत कहानी की गुलकी में भी यह जिजीविषा देख सकते हैं । पति द्वारा परित्यक्त गुलकी

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान - धर्मवीर भारती, पृ: 18.

अपने जीवन बनाये रखने के लिए बच्चों और पडोसियों की अवहेलन और उपेक्षा सहती है और तरकारियों की दूकान चलाती है । जीवन में अडिग रहने की इच्छा ही उसे ससुराल वापस जाने को मज़बूर करती है ।

प्रस्तुत कहानी में गुलकी और उसका समस्त परिवेश उपस्थित है । मुहल्ले के बच्चे, गुलकी, घेघा बुआ, ड्राइवर बाबू, साबुनवाली सत्ती, झबरी कुत्तिया सब मिलकर मुहल्ले के जीवन, समस्याओं और रुचियों का एक संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करता है । सचमुच "गुलकी बन्नो भारती की गहरी अनुभवशीलता, प्रवृत्ति और सारी रचनात्मक शक्ति की पहली प्रौढ अभिव्यक्ति है । इसलिए वह रचनात्मक स्तर पर तो उपलब्धि प्राप्त करती है, ऐतिहासिक दृष्टि से भी विशिष्ट हो उठती है ।"[1]

सावित्री नंबर दो

युद्ध, स्वतंत्रता और तेजी से बढते औद्योगीकरण ने समाज को बहुत-कुछ परिवर्तित किया । वह स्त्री-पुरुष रिश्तों, परंपरागत मूल्यों और पारिवारिक संकल्पनाओं में बदलाव लाया । स्वतंत्र भारत में नारी अपना स्वतंत्र अस्तित्व खोजने में लगी हुई है जिससे स्त्री-पुरुष संबन्ध में बदलाव और दरार आता है । परिवार में संबन्धों का विघटन प्रायः पिता-पुत्र, माँ-पुत्र और पति-पत्नी के बीच देखा जा सकता है । इस विघटन का कारण कहीं अर्थिक है तो कहीं मूल्यों से संबन्धित है । यह विघटन कभी क्रिया में परिणत हो जाता है तो कहीं मानसिक उदासीनता तक सीमित है ।

पच्चासोत्तर कहानी ने स्त्री-पुरुष संबन्धों को अच्छी तरह पकडा है । "आज की नयी कथा-चेतना नारी-पुरुष के आपसी संबन्धों के संक्रमण और संकट को ही चित्रित नहीं करती, या उन्हें अलग अलग स्थितियों में ही नहीं पकडती - उन्हें एक

---

1. हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान - रामदरश मिश्र, पृः 127.

दूसरे से अलग होने और रहने की स्थिति में भी जाँच लेना चाहती है ।"[1] राजेन्द्र यादव की कहानी 'टूटना', मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी', कमलेश्वर लिखित 'राजा निरंबसिया', भारती की 'सावित्री नंबर दो' इस तरह की कहानियाँ हैं ।

"सावित्री नंबर दो" में पति-पत्नी के टकराव को एक नयी दृष्टि से देखा गया है । सावित्री एक पढी-लिखी, लंबी बीमारी से ग्रस्त विवाहिता है । लंबी बीमारी से उसकी मानसिकता भी जटिल बन जाती है । वह पति के निस्वार्थ प्रेम को भी संदेह की दृष्टि से देखने लगती है । वह सोचती है कि "रोज़ एक एक कण कर पति के मन में प्यार मरता जा रहा है । रह गया है केवल एक सौजन्य, एक भलमनसाहत कि आखिर जिस औरत को अब जीना नहीं है उसका दिल क्यों दुखाया जाये मेरे प्रति मेरे पति का यह आदर भाव भी वैसा ही है जैसा मृत शरीर के प्रति होता है ।"[2] उसकी अहं जाग्रत होती है और वह पति को छोटा करने के लिए हीन तंत्रों का प्रयोग करती है । सावित्री पति से कहती है कि पति को उसके घरवालों के प्रति कोई स्नेह नहीं है, वह अपने दोस्तों की बीवियों के चक्कर में फँसा है, पति की बहिन सरला फर्स्ट पोज़ीशन के लिए मास्टरों के यहाँ घूमती-फिरती है और पति को उसकी बहन सित्तो से लगाव है । इससे उनके संबन्ध में ऊब, उदासी और ढीलापन आता है । परिणामस्वरूप सावित्री आत्मनिर्वासित हो जाती है । सावित्री का यह आत्मनिर्वास-बोध भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' की माँ और उषा प्रियंवदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' के भाई के बोध से प्रखर लगता है । "क्षयग्रस्त सावित्री भारतीय नारी के पवित्रता-बोध के संदर्भ में एक साक्षात् व्यंग्य जैसी चित्रित है । वह दो प्रकार के क्षय से एक साथ लड रही है । एक शरीर का क्षय रोग और दूसरा मानसिक क्षय । संस्कारों और परंपरित मूल्यों के रूप में तथा इन दोनों ही मोर्चों पर वह बुरी तरह पराजित होकर बिखर रही है ।"[3]

---

1. एक दुनिया समानांतर - राजेन्द्र यादव, पृ: 34.
2. बन्द गली का आखिरी मकान, पृ: 26.
3. हिन्दी कहानी समीक्षा और संदर्भ - डॉ. विवेकीराय, पृ: 63.

सावित्री नंबर दो में पति-पत्नी संबन्ध के अतिरिक्त माँ-बेटी संबन्ध का भी निरूपण है । पति के प्रति असामान्य व्यवहार करने के मूल में सावित्री की माँ भी है जो उसके प्रति बचपन में भी क्रूर रही है । लेकिन पिता उसे बहुत प्यार करता था । पिता के प्यार का प्रतिशोध लेने के लिए माँ उसे पीडती थी । अब माँ सावित्री को परिवारवालों के रास्ते की बाधा समझती है वह सित्तो को उसके सारे गहनों के साथ सावित्री के पति को सौंप देने का आग्रह भी करती है । इसीलिए माँ जब पूजा की थाली सावित्री से छुआने के लिए लाती है तो वह बहाने से आँख मूँदकर तकिये से टिककर लेटती है ।

इनके अतिरिक्त सावित्री और राजाराम के अवैध संबन्ध का टूटन भी प्रस्तुत कहानी में है । राजाराम एक चपरासी का लडका है । सावित्री को अपना जीवन शून्य लगता है । तब- डूबनेवाले को तिनके के समान राजाराम के प्रति उसके मन में लगाव उत्पन्न होता है । राजाराम हर रोज़ आता है और उसकी सेवा-शुश्रूषा करता है । लेकिन मुहल्ले में इनके संबन्ध को लेकर अफ़वाहें फैलने लगीं तो राजाराम का आना भी बन्द होता है ।

कामजनित अहं और मूल्यसंक्रमण

'सावित्री नंबर दो' में काम भावना से उत्पन्न अहं का चित्रण है । इसके मुख्य पात्र सावित्री को अपने सौन्दर्य पर बडा गुमान था । लेकिन शादी के दो वर्ष बाद वह लंबी बीमारी से ग्रस्त हो जाती है । उसका सौन्दर्य और यौवन मुर्झा जाता है । उसे लगता है कि अब वह पति को आकर्षित करने में असमर्थ है और न उसे पति की तरफ से प्रेम भी मिलता है । वह सोचती है कि पति दूसरी शादी का इच्छुक है । ऐसे बेमूल विचारों के पीछे उसका हीनताबोध और अतृप्त काम भावना निहित है ।

सावित्री बीमारी से पस्त अपने शरीर का श्रृंगार करके पति की प्रतीक्षा करती है । वह सोचती है कि "ये आएँगे दफ्तर से । फिर किसी बहाने सित्तो और छोटे भइया को बाहर भेज देंगे और मुझे मुग्ध अपलक देखते हुए बिभोर मुझ में डूब जाएँगे । पुकारेंगे ।"[1] लेकिन पति उसे देखकर आश्चर्य में पड जाता है । क्योंकि वह रूखे बाल और क्रोध से कुरूप सावित्री के चेहरे पर हाथ फेरकर गया था । इसलिए वह उसके श्रृंगार की ओर बडी अपरिचित निगाह से देखता है । इससे सावित्री का अहं आहत होता है और उसमें बदला लेने की भावना जाग्रत हो उठती है । वह चपरासी का लडका राजाराम के साथ अनैतिक संबन्ध स्थापित करती है । इसप्रकार प्रस्तुत कहानी में कामजनित अहं और रुग्ण मनःस्थिति का उतार-चढाव देख सकते हैं ।

प्रस्तुत कहानी में सावित्री के चरित्र के दो छोर हैं । उसके एक ओर कैप्टन मुरारी है तो दूसरी ओर राजाराम है । इनमें एक परंपरागत और मूल्यात्मक स्वरूप है । दूसरा आधुनिक और मूल्यशेषण का है । विवाह के बाद पति के साथ चलते समय जब कैप्टन मुरारी ने सावित्री पर हाथ रखा तो उसने मुरारी पर चोट किया और अपना स्त्रीत्व साबित किया । वही सावित्री रोगी बन जाने पर राजाराम के साथ अनैतिक व्यवहार करती है और पति पर लांछन लगाने का प्रयत्न करती है । अब वह अपने ही नाम की पौराणिक सावित्री की सारी निष्ठा से मुक्त हो जाती है । पौराणिक सावित्री पति-भक्ति के लिए प्रसिद्ध है । इन दोनों सावित्रियों का अंतर मूल्य संक्रमण का प्रमाण है ।

यह मेरे लिए नहीं

आधुनिक काल में जीवन के पुराने प्रतिमान टूट रहे हैं और नये जीवन-मूल्य उभर आने लगे हैं । नयी पीढी को सारे पुराने प्रतिमान रूढ और अव्यावहारिक प्रतीत होते हैं । लेकिन पुरानी पीढी अविश्वास और आशंका से इन नये उभरनेवाले मूल्यों को देखती है । ऐसी स्थिति में दोनों पीढियों के बीच संघर्ष छिड जाता है

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, पृ: 35.

जिसका अंत प्रायः पुरानी की पराजय में होता है कभी कभी किसी की भी विजय और पराजय न होकर यह संघर्ष एक तीसरी स्थिति पा लेता है। नयी कहानी ने पीढ़ी-संघर्ष के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है ।

'यह मेरे लिए नहीं' एक ऐसी कहानी है जिसमें दो जीवन-मूल्यों के संघर्ष का चित्रण है । इसमें नये मूल्य का प्रतिनिधि दीनू है और पिछले का प्रतिनिधि है उसकी माँ । दीनू एक पितृहीन गरीब बालक है । उसकी छोटी आयु में ही उसके पिता का निधन हो गया था । उसने डाक्टर चाचा और चाची के यहाँ रहकर शिक्षा पायी । नौकरी मिलने पर वह माँ के साथ रहकर रिसर्च करने लगा । उसकी माँ पुराने विचारोंवाली है । वह अपने पुराने टूटे-फूटे मकान को पति का निशान मानती है और उसकी मर्मत के लिए बहुत सारे रुपये खर्च करती है । माँ की इस प्रवृत्ति से दीनू को अपनी साइकिल भी बेचनी पडती है ।

दीनू को डाक्टर चाचा और चाची के प्रति अपार श्रद्धा है । चाचा दीनू के ही मकान में किरायेदार है । अपनी शिक्षा के समय दीनू चाचा के यहाँ से भोजन करता रहा । इसके बदले में दीनू की माँ किराये में से बारह रुपये प्रतिमाह चाचा को दिया करती थी । वह किसी की भी सहायता नहीं चाहती है । चाचा और चाची से दीनू का संबन्ध सगा आदमी जैसा है । ऐसे चाचा और चाची को माँ पराया मानती है । वह उनपर बेमूल आरोप लगाती है कि चाचा ने दीनू को बहकाया है ।

पिता की मृत्यु के बाद रिश्तेदार लोग दीनू को विविध प्रकार से तंग करते रहे । इसलिए दीनू उनसे नफरत करता है । लेकिन माँ इन रिश्तेदारों को दीनू के सिर थोपना चाहती है । उसके विचार में ये अपने खून के हैं । इन सबके अतिरिक्त वह दीनू पर विवाह लादना चाहती है । दीनू इसपर अपना एतराज प्रकट करता है तो माँ साँजी और अपर्णा के साथ उसके स्नेह-संबन्धों पर अपनी कटुता प्रकट करती है ।

इन सभी बातों पर क्षुभित होकर, कैदखाना बने अपने घर से मुक्त होने के लिए दीनू होस्टल चला जाता है । अब माँ डाक्टर चाचा और अपर्णा से मिन्नत करती है कि दीनू को किसी न किसी प्रकार वापस बुला लाएँ । आगे दीनू को तंग न करने का वादा भी वह देती है । बीस दिन बाद होस्टल से आने पर दीनू देखता है कि माँ बहुत परिवर्तित हो गयी है , वह एकदम बूढी, मूक और दीन हो गयी है । यह देखकर दीनू कहता है - "ओ माँ ! ओ माँ ! यह दृष्टि नहीं सही जाती । दीनू ने विजय चाही थी, अपनी निष्ठा, अपनी ईमानदारी, अपने स्वाभिमान को प्रतिष्ठित करने के लिए । तुम्हारी आँखों में इस दृष्टि के लिए नहीं । तुम्हारी दृष्टि में विजयी-सा, स्वामि-सा, शासक-सा दीनू अपनी दृष्टि में और छोटा लगने लगता है ।"[1]

दीनू और माँ के टकराव में यानी नये और पुराने मूल्य के संघर्ष में दोनों बिखर जाते हैं । किसी की भी विजय नहीं होती है । "पश्चिमी सभ्यता में बुरा क्या है?" पूछनेवाला दीनू और भारतीय परंपरा पर अडिग रहनेवाली माँ, दोनों टूट जाते हैं और जीवन को व्यर्थ समझने लगते हैं । "दीनू की पीडा और बहुत से मोर्चों पर लडी जानेवाली उसकी लडाई इसलिए इतनी असरदार बन सकी है क्योंकि न तो वह पीडा नकली पीडा है और न ही वह लडाई एक नकली लडाई और बनावटी लडाई है । दीनू और माँ की लडाई में दो जीवन-मूल्यों की सक्रियता वर्तमान है, और लेखक की सफलता इसमें है कि न तो इसमें नये के प्रति पूर्वाग्रहता का भाव है और न ही पुराने के प्रति अकारण श्रद्धा और भावुकता का अतिरेक ।"[2]

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, पृ: 75.
2. सिलसिला - मधुरेश, पृ: 210.

प्रेम और आत्मनिर्वासन

प्रस्तुत कहानी के दीनू के जीवन में दो लडकियाँ जिस तरह आती हैं और उसी तरह चली भी जाती हैं । पहली लडकी साँजी की ओर वह अपने कालेज जीवन में आकृष्ट हुआ था । वह लडकी दीनू की सबकुछ थी । जब माँ के कडवे व्यवहार पर दीनू का मन चोट खाता था तब साँजी उसका माथा सहलाती थी । लेकिन किसी दूसरे पुरुष के साथ उसका विवाह हो जाता है । दीनू के लिए यह बडा आघात था । वह विदेश चले जाने का निश्चय तक करता है ।

साँजी के बाद पद्मा दी (अपर्णा बनर्जी) उसके संपर्क में आयी । वह दीनू की पडोसिन है । हर सुबह वह दीनू के यहाँ हरसिंगार चुनने आती है और एक मुट्ठी फूल दीनू के लिए माँ के पास रख जाती है । पद्मा दीनू और माँ के बीच के अलगाव में एक सेतु का काम करती है । लेकिन अपर्णा घरवालों से डरकर अपने प्रेम को विवाह में परिणत कर पाने का साहस नहीं दिखाती है । वह अपने पिता के साथ चंदन नगर चली जाती है । इसप्रकार साँजी और अपर्णा से अलग होने पर दीनू अपने जीवन को व्यर्थ समझने लगता है । जीने की उसकी इच्छा नष्ट हो जाती है । फिर भी वह जीता है । लेकिन उसकी अंतरात्मा मरती रहती है ।

लोक जीवन की समग्रता

"यह मेरे लिए नहीं" में मुहल्ले के जीवन और लोगों की क्रिया-प्रतिक्रियाअ को गूँथ दिया गया है । दीनू और माँ के संबन्ध में दरार पडने पर मुहल्ले के लोग दीनू पर आरोप लगाते हैं कि वह माँ को सताता है । लेकिन दीनू के घर छोड जाने पर लोग माँ को दोषी ठहराते हैं और गन्दे पानी में मछली पकडने की कोशिश करते हैं । बचई महाराजिन माँ से कहता है कि मकान के पीछे क्लेश है तो मकान उसे दे दें । लेकिन

दीनू मकान न बेचने का निश्चय करता है । दीनू के रिश्तेदारों की स्वार्थमय दृष्टि का भी चित्रण कहानी में है । इसप्रकार मुहल्ले के जीवन को सहज रूप में कहानीकार ने प्रस्तुत किया है । दीनू का जीवन धर्मवीर भारती के जीवन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है ।

बन्द गली का आखिरी मकान

आधुनिक मनुष्य यंत्र की तरह जीते हैं । परिणामस्वरूप उसके जीवन में एक प्रकार का एकाकीपन व्याप्त है । गाँव और कस्बे के जीवन में भी यह दृश्य देख सकते हैं । नयी कहानी परिवेश के दबाव में बनते-बिगड़ते मानवीय रिश्तों और मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति करती है । 'बन्द गली का आखिरी मकान' एक ऐसी कहानी है ।

कहानी का केन्द्रीय पात्र मुंशीजी एक बडे वकील का मुंशी है । एक बहिन बिटौनी के अतिरिक्त उसका कोई नातेदार नहीं है । बिटौनी की छोटी आयु में उसकी माँ मर गयी थी । बहिन के पालन-पोषण के लिए मुशीजी अविवाहित रहा । इसके पीछे उसका यह विचार था कि गैरखून की लडकी आकर बिटौनी को न सताये । सतसहाय के साथ बिटौनी का विवाह होने पर मुंशीजी अकेला बन गया ।

बिरजा पति द्वारा परित्यक्त ब्राह्मण स्त्री है । मुंशीजी बिरजा को उसके दो बच्चों समेत अपने यहाँ आश्रय देता है इसपर बिटौनी और मुहल्ले के लोग मुंशीजी के प्रति विरोध प्रकट करते हैं ।

बिरजा के दो पुत्रों में बडा राधोराम मुंशीजी की सहायता से पढ-लिखकर नौकरी पा लेता है । वह मुंशीजी को पिता के समान मानता है । लेकिन कनिष्ठ पुत्र हरिया आवारा है । वह सारंगी बजाते हुए इधर-उधर घूमता रहता है ।

राधोराम के जब विवाह का प्रस्ताव आता है तो मुंशीजी और बिरजा का अनैतिक संबन्ध बाधा बनता है । इससे बिरजा रोती रहती है । हरिया आग में घी डालते हुए मुंशीजी पर नकली बाप का लांछन लगा देता है इससे मुंशीजी के मन में धक्का लगता है और वह तीर्थाटन के लिए जाने का निश्चय करता है । उसके आशामहल पर पानी फिर जाने से वह रोगी बन जाता है ।

बिरजा की माँ हरदेई एक कन्या पाठशाला में दाई है । पाठशाला की ओर से नैनी में गूँगे-बहरों का एक स्कूल खुलने पर हरदेई वहाँ चली जाती है । हरदेई के जाने से मुंशीजी का अकेलापन सघन हो जाता है । अब "मुंशीजी बिलकुल तनहा है, बिलकुल अकेले । इस अन्धेरी, कच्ची, असुरक्षित कोठरी में सारी दुनिया की दुश्मनी और धिक्कार से घिरे हुए और बिरजा, अनजान अपरिचित बिरजा, उनके अकेलापन का एक दरपन है, उनकी कोठरी में लगा हुआ । बिटौनी को जिस दिन डोली में बिठाया, उस दिन से अकेले हैं ।"[1]

बिरजा और राधोराम हरदेई की तबीयत खराब होने से रोगी मुंशीजी को छोड नैनी चले जाते हैं । अब मुंशीजी की मृत्यु होती है । बुढापे में अकेलापन को भरने की आकांक्षा लिये मुंशीजी अपने जीवन की बन्द गली में आखिरी सहारे के रूप में बिरजा की बाँह थामना चाहता था । लेकिन अपने अन्तिम क्षणों में इस आखिरी मकान की छाँह भी उसे नहीं मिलती । वह खुले आसमान के नीचे अपनी आँख मींच लेता है । उसके स्नेह के दोनों केन्द्र बिरजा और राधोराम दूर नैनी में हैं । उसके पास केवल हरिया है जिससे उन्हें हमेशा विरोध और उपेक्षा ही मिली है । अब हरिया मुंशीजी को पिता मानकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करता है ।

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, पृ: 92.

संबन्ध के असंबन्ध का सम्यक् निरूपण

आज के जीवन की एक बडी विडंबना है संबन्धों का विघटन । पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ-पुत्र, भाई-बहिन आदि के बीच दरारें पडने लगी हैं । इसका कारण एक ओर परंपरागत मान्यताओं और मूल्यों में आया बदलाव है तो दूसरी ओर धन है । 'बन्द गली का आखिरी मकान' में मुंशीजी और उसकी बहिन बिटौनी के बीच अर्थ दीवार खडा करता है । बिटौनी की छोटी आयु में माता की मृत्यु होने से मुंशीजी अविवाहित रहकर उसकी देखभाल करता है । बिटौनी का विवाह सतसहाय से होता है । उनकी आर्थिक स्थिति मुंशीजी से बेहतर हो जाती है । इसलिए वह (बिटौनी)मुंशीजी और बिरजा के संबन्ध पर रोष प्रकट करती है और कहती है कि भैया उसकी आबरू खाक में मिलाता है । वह मुंशीजी के यहाँ से खाने-पीने से भी इनकार करती है , पडोस से पानी पीती है । रोगशय्या पर पडे मुंशीनी की शुश्रूषा करने के लिए वह नहीं आती है ।

बिरजा को उसका पियक्कड पति घर से निकाल देता है और उनका संबन्ध टूट जाता है । इसके अतिरिक्त मुंशीजी, बिरजा, राधोराम, हरिया आदि के ज़रिए संबन्ध का असंबन्ध और असंबन्ध के संबन्ध का संश्लिष्ट निरूपण कहानीकार ने किया है ।

शैल्पिक विशेषताएँ

भारती ने अपनी कहानियों में शिल्पगत चमत्कार नहीं दिखाया है । पर वे कथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं । कहानी में आयी घटनाओं और पात्रों की मन:स्थितियों का वर्णन वे अधिकतर एक तटस्थ द्रष्टा की भाँति देते चलते हैं ।

प्रस्तुत संकलन की चारों कहानियाँ प्रायः ऐसी हैं । 'यह मेरे लिए नहीं' के दीनू और माँ के संघर्ष के वर्णन में नाटकीयता भी देख सकते हैं । 'सावित्री नंबर दो' में नायिका सावित्री मिथ के पात्र सत्यवान और सावित्री को संबोधित करके अपना आत्मविश्लेषण स्वयं करती है । इस आत्मकथात्मकता से कहानी का प्रभाव दुहरा हो गया है ।

मिथक और अन्य संदर्भों का प्रयोग

'सावित्री नंबर दो' में सत्यवान-सावित्री के मिथक के ज़रिए आधुनिक मध्यवर्गीय पढी-लिखी लडकी सावित्री का जीवन चित्रित किया गया है । पौराणिक सावित्री यमराज का पीछा करके अपने पातिव्रत्य के बल पर सत्यवान को जीवित करती है । लेकिन आधुनिक सावित्री अपने पातिव्रत्य की उपेक्षा करती है और पति पर लांछन लगाती है । दो भिन्न युगों की सावित्रियों की कथा दो रेखाओं की तरह एक दूसरे को छूती-काटती चलती है । इसलिए कहानी अधिक मार्मिक बन पडी है ।

ससुराल और मायके से तिरस्कृत सावित्री की दयनीय स्थिति चित्रित करने के लिए कथाकार ने गुबरैल की लोककथा का प्रयोग किया है । संकलन की अंतिम कहानी में मुंशीजी की मानसिकता को स्पष्ट करने के लिए आद्यंत गीता-प्रसंगों का उल्लेख किया गया है । इसीप्रकार मुंशीजी के अस्वस्थ मन का चित्रण कबीरवाणी के ज़रिए होता है - "सुखिया सब संसार है खावे और सोवे, दुखिया दास कबीर है जागे औ रोवे ।"[1]

भाषा

भारती की भाषा नयी कहानी की भाषा के अनुकूल है । "नयी कहानी की भाषा में न केवल ग्राम्य परिवेश के शब्द आये हैं, बल्कि नगर परिवेश के

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, पृः 107.

शब्द आये हैं, बल्कि अपर प्रदेश के शब्द भी । अतः एक ओर यदि ग्राम्य प्रयोग की ताजगी-सादगी है तो दूसरी ओर नगर प्रयोग की चलित-स्वाभाविकता भी , और तीसरी ओर मार्जित हिन्दी की परिनिष्ठता भी ।"[1] कहानियों में पात्रानुकूल भाषा विशेष द्रष्टव्य है । बच्चों के लिए तोतली भाषा है तो मुहल्ले के अशिक्षितों के लिए गंवारू भाषा और शिक्षितों के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है । कहीं कहीं भाषा में नाटकीय और कवित्वमयी लहजा देख सकते हैं ।

संकेत

भारती की कहानियों में इधर-उधर संकेतों का प्रयोग देख सकते हैं । 'सावित्री नंबर दो' और 'बन्द गली का आखिरी मकान' जैसे शीर्ष सांकेतिक लगते हैं । 'सावित्री नंबर दो' एक दूसरी सावित्री की ओर संकेत करता है तो 'बन्द गली का आखिरी मकान' जीवन की गतिहीनता की ओर । 'यह मेरे लिए नहीं' की माँ और दीनू का संघर्ष और उसमें माँ के टूट जाने का सांकेतिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । कहानी को मार्मिक बनाने के लिए पूर्वदीप्ति पद्धति का भी उपयोग कहानीकार ने किया है । कहानियों का आरंभ चमत्कारी है । प्रस्तुत संकलन की कहानियों की एक और विशेषता उनकी लंबाई है ।

"बन्द गली का आखिरी मकान" संकलन की कहानियाँ ज़िन्दगी के बहुत निकट हैं । इसमें बनावटी मूल्य या संकट का परामर्श नहीं है । इसीलिए ये कहानियाँ बहुत अच्छी उतरी हैं ।

---

1. कल्पना - अगस्त-सितंबर, 1969, पृ: 175.

अध्याय - छः

भारती की औपन्यासिक रचनाएँ

उपन्यास जीवन के अनुभव-अनुभूतियों, आशा-निराशाओं इच्छा-अनिच्छाओं और आकांक्षाओं का आकलन है । हिन्दी में प्रेमचन्द के आगमन से पहले जासूसी, तिलस्मी एवं ऐयारी उपन्यासों का बोलबाला था । प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास में मानव-जीवन का यथार्थ चित्र अंकित करना प्रारंभ किया । वे व्यक्ति और समाज को अभिन्न मानते थे और उनके उपन्यासों में परिस्थितियों के यथार्थ चित्रण के साथ आदर्शवाद का आग्रह भी दिखायी पडता है । उन्होंने व्यक्ति-मन के अन्द्वन्द्व की उपेक्षा नहीं की । लेकिन आदर्शवाद के आग्रह ने उनके उपन्यासों को एक सीमा तक अपूर्ण बना दिया है । प्रेमचन्द के बाद उपन्यासकारों ने सामाजिक तथा वैयक्तिक समस्याओं के प्रति एक संवेदनशील दृष्टि अपनायी । अतः हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्द के उपरान्त कई मोडों से गुज़रता दिखाई पडता है । आलोचकों ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास के विकास-क्रम के प्रत्येक चरण को प्रत्येक नाम दिया है । जैसे सामाजिक उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, आँचलिक उपन्यास, आधुनिकता-बोध के उपन्यास।स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश-काल-वातावरण जैसे परंपरा से चले आ रहे प्रतिमानों की अवहेलना करता है । "आज के उपन्यास में नये जीवन की जो खोज है, उसमें सूक्ष्मता और गहराई के साथ जो विस्तार है, परिवेश की जो मुखरता है, मोहभंग की जो अनुभूति है, जीवन की जो दुरूहता है, उससे उबरने का जो प्रयास है वह सब आधुनिकता के विभिन्न स्तरों के संदर्भ में है । सामयिक उपन्यास मनुष्य के टूटने और बनने की गाथा है । वह उसके अन्तर और बाह्य को उजागर करता है ।"[1] अश्क, अमृतलाल नागर, यशपाल, नागार्जुन, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी,

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृः 89.

फणीश्वरनाथ रेणु, श्रीलाल शुक्ल, मोहन राकेश, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, रामदरश मिश्र, निर्मल वर्मा, धर्मवीर भारती जैसे उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को आगे बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । इन्हें किसी एक धा या खेमे में बाँधा रखना अनुचित है । अत: हम धर्मवीर भारती के उपन्यासों का विवेचन स्वतंत्र रूप से करेंगे ।

भारती के उपन्यास

डॉ. धर्मवीर भारती के दो उपन्यास हैं - "गुनाहों का देवता" और "सूरज का सातवाँ घोडा" । हिन्दी उपन्यास जगत में ये दोनों उपन्यास काफी विख्यात हैं । "गुनाहों का देवता" अपनी मनोरम एवं करुणासजल प्रेम-कथा के कारण प्रसिद्ध है तो "सूरज का सातवाँ घोडा" अपने नूतन शिल्प के कारण । जीवन की विषमताओं और जटिलताओं का सहज चित्रण इनमें भारती ने किया है । श्री. महेन्द्र चतुर्वेदी के अनुसार "अपने दोनों उपन्यासों में भारती ने मध्यवर्गीय समाज के परिस्थिति-वैषम्य, रूढिग्रस्तता तथा विकृतियों का निरूपण करने का प्रयास किया है ।"[1] भारती की इन दोनों कलाकृतियों की मूल संवेदना प्रेम है । स्त्री-पुरुष संबन्ध के विविध पहलुओं का आदर्शपरक और यथार्थपरक चित्रण इन दोनों उपन्यासों की खूबी है । "गुनाहों का देवता" के प्रमुख व्यक्तित्व चन्दर और सुधा के ज़रिए आदर्श का भरपूर अंकन हुआ है । स्वच्छन्द और वैयक्तिक माने जानेवाले इस उपन्यास में यथार्थ भी मार्मिकता से उभरा है । "सूरज का सातवाँ घोडा" सामाजिक यथार्थ पर आधारित एक सशक्त लघु-उपन्यास है । इसमें लेखक ने निम्न-मध्यवर्गीय लोगों के, खास करके युवक-युवतियाँ की कुण्ठा, खोखले वैवाहिक जीवन, झूठी नैतिकता, धर्माचार और घोर निराशा को समाविष्ठ किया है । श्री कैलाश जोशी के शब्दों में ""सूरज का सातवाँ घोडा" भी रोमांटिक कलाकार भारती की प्रेम से ही जुडी दूसरी कृति है जिसकी ज़मीन पहली कृति से बिलकुल अलग है । अन्तर

---

1. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ: 202.

इतना ही है कि इसमें प्रेम एक तीखी समस्या के रूप में आया है जिसपर कोई आवरण नहीं है । शुरू से अन्त तक समस्या अविराम चली है और अन्त में थक कर, हार कर सुस्ताने बैठ गयी है । लेकिन इसके बाद भी समस्या, समस्या ही रही है ।"[1] दोनों उपन्यासों का विषय-वस्तु प्रेम, विवाह या नर-नारी संबन्ध है । "गुनाहों का देवता" में प्रेम केवल एक भावानुभूति के रूप में चित्रित है तो "सूरज का सातवाँ घोडा" में इसका स्वरूप सहज मानवीय है । आगे इन दोनों उपन्यासों का अलग-अलग विवेचन विस्तृत रूप में हम करेंगे ।

गुनाहों का देवता

"गुनाहों का देवता" धर्मवीर भारती का प्रथम उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1949 में हुआ । यह एक प्रेम कथा पर आधारित उपन्यास है । भावना और वासना का द्वन्द्व इसका केन्द्रबिन्दु है । प्रेम के आदर्शवादी, अशरीरी रूप तथा उसके भौतिक, शरीरी रूप की द्वन्द्वात्मक प्रवृत्तियों से उत्पन्न कुंठा और व्यक्तित्व के टूटन को कथाकार ने तन्मयता से प्रस्तुत किया है । भावना और वासना, प्रेम और विवाह, आदर्श और यथार्थ प्रस्तुत उपन्यास का प्रधान विषय रहा है चाहे अन्य समस्याएँ भी इसके साथ जुडी हो । शिक्षित मध्यवर्गीय समाज के युवक-युवतियों के स्नेह, प्रेम, विवाह, वासना जैसे विषयों के विविध आयामों को सामाजिक परिस्थितियों से अलग हटकर देखने का प्रयास कथाकार ने किया है । श्री प्रेमप्रकाश गौतम लिखते हैं - "जिस जीवन का अंकन उपन्यास में किया गया है वह उपन्यासकार का अपना देखा-परखा और भोगा हुआ जीवन है । पात्र जीते-जागते मानवों के प्रतिरूप हैं । चित्रण में सहजता और सजीवता है । जीवनांकन और शीलनिरूपण की क्षमता भी उपन्यासकार में है । आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व के मध्यवर्गीय शिक्षित समाज का उपन्यास में जीवंत चित्रण है । परन्तु उपन्यास है व्यक्तिवादी ही, सामाजिक यथार्थ से काफी दूर ।"[2]

---

1. धर्मवीर भारती उपन्यास साहित्य - कैलाश जोशी, पृ: 58-59.
2. धर्मवीर भारती - सं. डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 93.

वस्तु योजना

"गुनाहों का देवता" एक दुःखान्त प्रेम-कथा है जो एक प्रतिभावान छात्र चन्द्रकुमार कपूर को घेरकर चलती है । चन्द्र कपूर याने चन्दर प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी का विद्यार्थी रहा है और अब इकनॉमिक्स में डॉ. शुक्ला के निर्देशन में रिसर्च कर रहा है । डॉ. शुक्ला का तो चन्दर पर पिता का सा स्नेह है । उनकी कृपा से चन्दर सामाजिक जीवन की कई सीढियाँ चढता रहा और वह डॉ. शुक्ला के परिवार का सदस्य सा हो गया ।

सुधा डॉ. शुक्ला की इकलौती बेटी है जो अपनी छोटी आयु में ही माँ के स्नेह से वंचित हो गयी थी । दस साल तक वह अपनी बुआ के पास गाँव में रही थी । सुधा तेरह वर्ष की होने पर गाँववाले उसकी शादी पर ज़ोर देने लगे तो डाक्टर साहब उसे अपने साथ इलाहाबाद बुला ले आये और आठवीं कक्षा में भरती करा दिया । यहीं से सुधा-चन्दर के स्नेह-शासन में रही है । चन्दर के साथ हँसते-खेलते, लडते-झगडते, रीझते-खीझते उसका दिन बीतने लगा और उसका व्यक्तित्व चन्दरमय हो उठा है ।

चन्दर और सुधा के बीच घनिष्ठता स्वाभाविक रूप से बढती रही और वह घनिष्ठता प्रेम में परिवर्तित होने लगी । लेकिन दोनों ने यह प्रेम गुप्त रखा और अंत तक उसमें पंकिलता आने नहीं दी । प्रेम के संबन्ध में वे रोमांटिक धारणाएँ रखते थे । उनके मानसिक जगत पर इसका प्रभाव पडकर ही रहा । सुधा के लिए विवाह का प्रस्ताव आ जाता है तो वह विवाह-बन्धन में बन्धने से इनकार करती है । वह कहती है कि "मैं ब्याह नहीं करूँगी, कभी नहीं करूँगी, किसी से नहीं करूँगी । तुम सभी लोगों ने अगर मिलकर मुझे मार डालने की ठानी है तो मैं अभी सिर पटककर मर जाऊँगी । और मारे तैश के सचमुच सुधा ने अपना सिर दीवार पर पटक दिया ।"[1]

---

1. गुनाहों का देवता - धर्मवीर भारती, पृः 135.

जीवन की एक विचित्र विडंबना है कि सुधा को मनाने और उसे विवाह के लिए प्रेरित करने का दायित्व डॉ. शुक्ला चन्दर पर सौंप देता है । चन्दर सुधा को समझाने का प्रयास करते हुए कहता है - "अगर अब तुम इनकार कर देती हो तो एक तरफ पापा को तुमसे धक्का पहुँचेगा दूसरी ओर मेरे प्रति उनके विश्वास को कितनी चोट लगेगी । हम उन्हें क्या मुँह दिखाने लायक रहेंगे भला"[1] अन्त में सुधा विवाह के लिए राजी हो जाती है और कैलाश से उसका विवाह संपन्न हो जाता है ।

सुधा के विवाह के पश्चात् चन्दर और सुधा, दोनों का व्यक्तित्व बिखर जाता है । सुधा अपने पति से संतुष्ट नहीं है । वह जितनी आदर्श एवं कल्पनामयी है, कैलाश उतना ही व्यावहारिक । सुधा को सेक्स से चिढ है जोकि विवाह की अनिवार्य परिणति है । वह अपने मन को भागवत और मानस जैसे धर्मग्रन्थों में रमाने का प्रयत्न करती है । सुधा कैलाश के साथ शारीरिक संबन्ध तो रखती है पर मानसिक स्तर पर वह चन्दर की ही रह जाती है ।

चन्दर में एक विचित्र परिवर्तन आ जाता है । वह पम्मी नामक स्त्री के शारीरिक आकर्षण में डूबा रहता है और वासना को ही जीवन का सर्वस्व मानने लगता है । सुधा से मिलने पर वह उसके प्यार का घृणा-पूर्वक मज़ाक उडाता है । चन्दर का पशु रूप अपने नग्न रूप में प्रकट होता है और वह सुधा पर वार करने के लिए भी तैयार हो जाता है । इससे मर्माहत सुधा कहती है - "चन्दर, मैं किसी की पत्नी हूँ । यह जन्म उनका है । यह माँग का सिन्दूर उनका है । इस शरीर का श्रृंगार उनका है । मुझे गला घोंटकर मार डालो । चन्दर, तुम जानवर हो गये हो ,

---

1. गुनाहों का देवता - धर्मवीर भारती, पृ: 137.

मैं आज कितनी शरमिन्दा हूँ । इसमें मेरा कसूर है चन्दर ! मैं अपने को दण्ड दूँगी चन्दर ! मैं मर जाऊँगी ! लेकिन तुम्हें इनसान बनाना पडेगा चन्दर ! और सुधा ने अपना सिर एक टूटे हुए खम्भे पर पटक दिया ।"[1]

उनमेल विवाह और अपनी देवप्रतिमा के पतन से व्यथित होकर सुधा मृत्यु का व्रत लेती है । उसका स्वास्थ्य बिगडता ही रहता है । इसी बीच उसे नारी-जीवन के दण्डस्वरूप गर्भ भी रह गया था । अब चन्दर का मन विक्षिब्ध होता है कि उसने सुधा के पावन स्नेह को कलंकित किया है । सुधा का तन-मन शिथिल पड जाता है । कैलाश सुधा को मायके छोडकर कार्यवश विदेश चला जाता है । सुधा रोग से नहीं बच पाती । उसका गर्भपात होता है और मृत्यु हो जाती है । मरणासन्न सुधा के मुँह से निकला प्रत्येक शब्द प्रेम की पीडा एवं महत्ता का उद्घोषक है । "अगर मैं मर जाऊँ तो रोना मत चन्दर ! तुम ऊँचे बनोगे तो मुझे बहुत चैन मिलेगा मुझे । मैं जो कुछ नहीं पा सकी वह शायद तुम्हारे ही माध्यम से मिलेगा मुझे । और देखो, पापा को अकेले दिल्ली में न छोडना लेकिन मैं मरूँगी नहीं चन्दर यह नरक भोगकर भी तुम्हें प्यार करूँगी ।"[2] इसप्रकार सुधा की मृत्यु की वेला में चन्दर और सुधा पुनः प्रेम की उस पावन भूमि पर लौट आये जहाँ से दोनों ने अपना प्रयाण आरंभ किया था । अंत में सुधा के आग्रह को निभाने के लिए चन्दर उसकी बुआ की लडकी विनती से शादी करता है ।

रागात्मक संबन्धों की अभिव्यंजना

मनुष्य की रागात्मक वृत्ति की अभिव्यक्ति "गुनाहों का देवता" की महत्वपूर्ण विशेषता है । भारती ने प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री-पुरुष प्रेम के विविध आयामों के माध्यम से इस मूलभूत वृत्ति का परिचय दिया है । प्रेम का संबन्ध मानव की

---

1. गुनाहों का देवता - धर्मवीर भारती, पृः 289.
2. वही - पृः 348.

रागात्मकता से होता है । उपन्यासकार ने प्रेम के उदात्त रूप का चित्रण करने का प्रयास किया है । उन्होंने यह भी व्यक्त किया है कि वही प्रेम सार्थक है जिससे व्यक्ति के विकास को सहायता मिले और उसका देवत्व जागृत हो । प्रेम नितान्त एकान्तिक होने पर याने सामाजिक जीवन की उपेक्षा करने पर व्यक्ति का व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है और वह पशुता की ओर उन्मुख होता है ।

चन्दर और सुधा का संबन्ध

चन्दर डॉ. शुक्ला का छात्र है और सुधा शुक्ला की इकलौती बेटी । सुधा बाल्यकाल में ही चन्दर की आत्मा बन जाती है । दोनों आपस में प्रेम के अदृश्य धागे में बंध जाते हैं और भावना-जगत् में विचरण करने लगते हैं । दोनों अपने प्रेम को बाह्य क्रियाओं से दूर रखते हैं , केवल मानसिक विकार के रूप में रखते हैं और अन्य लोगों के सामने छिपाते रखते हैं । सुधा स्पष्ट रूप से कहती है - "चन्दर आज से कुछ ही महीने पहले जब गेसू ने मुझसे पूछा था कि तुम्हारा दिल कहीं झुका था तो मैं ने इनकार कर दिया था, कल पम्मी ने पूछा तुम चन्दर को प्यार करती हो तो मैं ने इनकार कर दिया था, मैं आज भी इनकार करती हूँ कि मैं ने तुम्हें प्यार किया है, या तुमने मुझे प्यार किया है । मैं भी समझती हूँ और तुम भी समझते हो । लेकिन यह न तुमसे छिपा है न मुझसे कि तुमने मुझे जो कुछ दिया है वह प्यार से कहीं ज्यादा ऊँचा और प्यार से भी कहीं ज्यादा महान है ।"[1] डॉ. शुक्ला के प्रति दायित्वबोध और आभार होने के कारण सुधा के प्रति अपना प्रेम चन्दर गुप्त रखता है । सुधा को शरीर-निरपेक्ष, भावनात्मक प्रेम में विश्वास है और इसीलिए वह अपना प्रेम छिपाती है । इसप्रकार दोनों एक दूसरे के समीप होते हुए भी बहुत दूर रहते हैं । सुधा के पिता और अन्य लोग उसके प्रेम के संबन्ध में अनभिज्ञ होने के हेतु उसका विवाह कैलाश नामक युवक से करा देते हैं । विवाह के उपरांत भी सुधा चन्दर की ही होकर रहती है ।

---

1. गुनाहों का देवता - धर्मवीर भारती, पृ: 157.

कैलाश के सामने वह अपने शरीर का समर्पण करती है । लेकिन आत्मा अब भी चन्दर के पास है । इसप्रकार सुधा दूर कैलाश के पास होते हुए भी चन्दर के समीप है । उपन्यासकार ने इसप्रकार चन्दर और सुधा के रागात्मक संबन्ध के ज़रिये मनुष्य-जीवन की विवशता और विडंबना की ओर संकेत किया है । प्रेम की पराजय से चन्दर और सुधा अपनी आत्मा का विनाश करते हैं । दोनों का व्यक्तित्व कुंठित हो जाते हैं । चन्दर की स्थिति व्यक्त करते हुए कथाकार लिखता है - "विश्वास टूट चुका था, गर्व जिन्दा था, गर्व घमण्ड में बदल गया था, घमण्ड नफरत में और नफरत नसों को चूर-चूर कर देनेवाली उदासी में ।"[1] चन्दर और सुधा का प्रेम आदर्श प्रेम है और वह काल्पनिक भी है । काल्पनिक होने के कारण यथार्थ की धरती से बहुत दूर है । जीवन यथार्थ होता है । यथार्थ की उपेक्षा करना उचित नहीं है । यदि कोई ऐसा करेगा तो उसका जीवन ज़रूर पराजित होगा । चन्दर और सुधा जीवन के यथार्थ पक्ष की उपेक्षा करके एकांत में रहना चाहते हैं । समाज से निरपेक्ष व्यक्ति का अस्तित्व नहीं के बराबर है । उपरोक्त पात्रों के संबन्धों के माध्यम से भारती ने यह स्पष्ट किया है ।

चन्दर और विनती का संबन्ध

विनती सुधा की बुआ की लडकी है । सुधा और विनती में प्रगाढ मित्रता होती है । विनती जब प्रयाग में आकर डॉ. शुक्ला के यहाँ रहने लगती है तब वह चन्दर के संपर्क में आती है और उसके व्यक्तित्व से अभिभूत हो जाती है । चन्दर के जीवन में आयी शून्यता को भरने का प्रयास विनती करती है । चन्दर को वह एक ज़रूरत बन जाती है । अन्त में सुधा की इच्छा की पूर्ति के लिए चन्दर विनती का वरण करता है और जीवन के ठोस धरती पर उतरता है । चन्दर और विनती के संबन्ध से जीवन के स्वच्छ, उदात्त एवं स्थायी रूप को प्रतिबिंबित किया गया है ।

---

1. गुनाहों का देवता - धर्मवीर भारती, पृ: 216.

प्रेम के निर्मल पक्ष की अभिव्यक्ति गेसू के ज़रिए भी उपन्यासकार ने किया है । गेसू सुधा की अंतरंग सखी है । अख्तर उसका प्रेमी है । गेसू उसके साथ शादी करके जीवन बिताने का सपना देखती है । लेकिन अख्तर गेसू से शादी न करके उसकी छोटी बहन फूल से शादी करता है । मन में तीखी वेदना होने पर भी गेसू अख्तर से पूर्ण सद्भाव रखती है । वह आजीवन विवाह न करके एक नर्स बनकर किसी अस्पताल में काम करने का संकल्प करती है । "गेसू शायर होते हुए भी इसी दुनिया की थी और सुधा शायर न होते हुए भी कल्पनालोक की थी ।"[1] इसप्रकार गेसू यथार्थ और उदात्त प्रेम का जीवंत नमूना बनकर पाठक की संवेदना को जागरित करती है ।

प्रेम के प्रति भारती की दृष्टि एकांगी नहीं है । उदात्त और स्वच्छ प्रेम की अभिव्यंजना करनेवाले कथाकार ने उसके दूसरे पक्ष का भी अनावरण किया है । पम्मी, बर्टी और बिसरिया के माध्यम से भारती ने नैमिषिक, चंचल और एकांगी प्रेम को चित्रित किया है ।

चन्दर और पम्मी का संबन्ध

प्रमिला डिक्रूज़ यानी पम्मी चन्दर का मित्र है । वह डॉ॰ शुक्ला की विद्यार्थिनी थी । उसने अपने पति को तलाक दे दिया है और अब अपने भाई बर्टी के साथ रह रही है । पम्मी के चरित्र में यह विरोधाभास दिखाई देता है कि वह वैवाहिक जीवन के वासनात्मक पहलू से घबराकर पति की उपेक्षा करती है । लेकिन वह सर्वत्र चन्दर के साथ अपने संबन्ध में शारीरिक प्रेम को ही महत्व देती है । प्रेम, विवाह और सेक्स के संबन्ध में पम्मी का अपना मौलिक विचार होता है । उसके विचार में "बुद्धि और शरीर बस यही दो आदमी के मूल तत्व है । हृदय तो दोनों के अन्त:संघर्ष की उलझन का नाम है ।"[2] सुधा का विवाह दूसरे पुरुष से होने पर चन्दर का मन अत्यंत

---

1. गुनाहों का देवता - धर्मवीर भारती, पृ: 34.
2. वही - पृ: 244.

विचलित हो जाता है । चन्दर की विक्षुब्ध मानसिक स्थिति में पम्मी उसे अपने शारीरिक आकर्षण और उद्दाम वासना से संतोष एवं तृप्ति प्रदान करती है । चन्दर कहता है - "पम्मी, तुम्हारे वक्ष पर सिर रखकर मैं जाने क्यों सबकुछ भूल जाता हूँ? पम्मी, दुनिया वासना से इतना घबराती क्यों है? मैं ईमानदारी से कहता हूँ कि अगर किसी को वासनाहीन प्यार करके किसी के लिए त्याग करके मुझे जितनी शान्ति मिलती है पता नहीं क्यों मांसलता में भी उतनी ही शान्ति मिलती है । ऐसा लगता है कि शरीर के विकार अगर आध्यात्मिक प्रेम में जाकर शान्त हो जाते हैं तो लगता है आध्यात्मिक प्रेम में प्यासे रह जानेवाले अभाव फिर किसी के मांसल बन्धन में ही आकर बुझ पाते हैं । कितना सुख है तुम्हारी ममता में ।"[1] सुधा, विनती और गेसू के प्रभाव से चन्दर पम्मी के साथ अपना जो वासनात्मक संबन्ध रहा है वह खत्म करने का प्रयास करता है । चंदर के भाव-परिवर्तन का संकेत मिलते ही पम्मी चन्दर को छोडकर अपने पति के पास चली जाती है । इसप्रकार चन्दर और पम्मी के ज़रिये उपन्यासकार ने रागात्मक जीवन की एक विशेष पहलू का उद्घाटन किया है ।

अन्य संबन्ध

बर्टी पम्मी का भाई है । अपनी पहली पत्नी के विश्वासघात से बर्टी का मानसिक सन्तुलन बिगड जाता है और वह नारी वर्ग से घृण करने लगता है । वह अपने जीवन के अनुभव के आधार पर कहता है - "देखो, एक औरत उसी चीज़ को ज़्यादा पसन्द करती है, उसी के प्रति समर्पण करती है, जो उसकी जिन्दगी में नहीं होता । मसलन एक औरत है जिसका ब्याह हो गया है, या होनेवाला है । उसे यदि एक नया प्रेमी मिल जाये तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता । वह अपने पति की बहुत कम परवा करेगी अपने प्रेमी के सामने । और अगर क्वाँरी लडकी है तो वह अपने प्रेमी की भावनाओं की पूरी तौर से हत्या कर सकती है यदि उसे

---

1. गुनाहों का देवता - धर्मवीर भारती, पृ: 255.

एक पति मिल जाये तो ।"[1] बर्टी के इन शब्दों में आधुनिक मध्यवर्गीय समाज के रागात्मक संबन्धों में आये बदलाव की सूचना होती है । अंत में बर्टी जेनी नामक लडकी से शादी करने के लिए बाध्य हो जाता है ।

रागात्मक संबन्ध की एक विशेष स्थिति का अनावरण उपन्यासकार ने बिसरिया के ज़रिए किया है । बिसरिया सुधा और विनती के मास्टर है । वह एक यशःकामी कलाकार भी है । सुधा के ससुराल जाने पर विनती अकेली हो जाती है । तब बिसरिया विनती में "शेक्सपीयर की मिराण्डा, प्रसाद की देवसेना, डाण्डे की बिएत्रिस, कीट्स की फैनी और सूर की राधा से बढकर माधुर्य"[2] देखता है । लेकिन जब चन्दर उसे धमकता है तो वह पढाने का काम भी छोड चला जाता है । बिसरिया के ज़रिए भारती ने एकांगी, नैमिषिक, चंचल प्रेम की ओर इशारा किया है और यशःकामी लेखकों पर व्यंग्य का तीर चलाया है ।

डॉ. भारती ने "गुनाहों का देवता" में उपरोक्त पात्रों के माध्यम से नर-नारी संबन्धों के विविध मोडों पर प्रकाश डाला है । प्रेम, विवाह और सेक्स की समस्या का विश्लेषण सामाजिक दायित्व के साथ इसमें किया गया है । भारती ने प्रेम के उदात्त एवं विकृत दोनों रूपों को अभिव्यक्त किया है । उन्होंने केवल शरीर-निरपेक्ष प्रेम और केवल शरीर-सापेक्ष प्रेम के तिरस्कार करके दोनों के समन्वित रूप की पुष्टि की है । "शरीर की प्यास भी उतनी ही पवित्र और स्वाभाविक है जितनी आत्मा की पूजा । आत्मा की पूजा और शरीर की प्यास दोनों अभिन्न हैं । आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर से है, शरीर का संस्कार, शरीर का सन्तुलन आत्मा से है । जो आत्मा और शरीर को अलग कर देता है वही मन के भयंकर तूफानों में उलझकर चूर-चूर हो जाता है ।"[3] पूर्वराग के पक्ष-विपक्ष में भी भारती ने अपना संतुलित

---

1. गुनाहों का देवता - धर्मवीर भारती, पृः 22.
2. वही - पृः 203.
3. वही - पृः 314.

विचार चन्दर के माध्यम से प्रकट किया है । अतः "निस्संदेह भारती के लिए प्रेम एक माध्यम है जिसके द्वारा वे मानव-जीवन की गहराइयों में उतरकर नये मूल्यों की खोज करते हैं - उन मूल्यों की खोज जो जीवन को समझने के लिए सही दृष्टि का निर्माण करते हैं ।"[1]

रोमांस और स्वच्छन्दता

"गुनाहों का देवता" का प्रतिपाद्य प्रेम है । प्रेम में रोमांस का आना स्वाभाविक है । लेकिन जब साहित्यकार प्रेम का चित्रण करते समय पूर्णतः जीवन की वस्तुस्थिति की उपेक्षा करते हैं या जीवन के यथार्थ से ताल-मेल बनाये रखने में असमर्थ हो जाते हैं तो रचना भावुकता से पूर्ण हो जाती है । डॉ. लीलाधर वियोगी के अनुसार "स्वच्छन्दतावादी कृतियों में भावना और कल्पना का प्राधान्य होता है, प्रेम और सौन्दर्य की महिमा का गान होता है । ये कृतियाँ जीवन के यथार्थ से दूर होती है, असाधारणता और अलौकिकता का तत्व इनमें सन्निहित होता है । इन कृतियों के पात्र बाह्य संघर्षों से दूर भागते हैं, प्राचीन परंपराओं के प्रति बौद्धिक विद्रोह करते हैं । इनके व्यक्तित्व में अन्तः संघर्ष की प्रधानता होती हैं । वे प्रायः अन्तर्मुखी होते हैं ।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास में चन्दर और सुधा का प्रेम इन्द्रियातीत प्रेम है और इसीलिए असाधारण भी है । जीवन के यथार्थ से वे काफी बहुत दूर है । उनके जीवन में भावावेश की प्रधानता है । उपन्यास के आरंभ से अंत तक यह भावावेश या रोमांस व्याप्त है और प्रायः सभी पात्र इसके वशीभूत हैं । कुछ आलोचक पम्मी को यथार्थ के निकट मानते हैं । लेकिन पम्मी भी रोमांस से मुक्त नहीं है । क्योंकि पम्मी वासना को ही जीवन का सर्वस्व मानती है और परंपराओं के प्रति बौद्धिक विद्रोह करती है । जो भी हो, भारती का लक्ष्य भावना और वासना के द्वन्द्व का याने हृदयपक्ष और बुद्धिपक्ष के संघर्ष का चित्रण करना रहा है । अतः उनका यह रोमांस चित्रण क्षम्य है ।

---

1. दिशाओं का परिवेश - सं. ललित शुक्ल, पृः 99.
2. हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार - सं. डॉ. रवेलचन्द आनन्द, पृः 130.

नैतिक मूल्यों का आग्रह

डॉ. धर्मवीर भारती मानव-मूल्यों में अटल आस्था रखनेवाला साहित्यकार है । "गुनाहों का देवता" उनकी मूल्यवादी दृष्टि का स्पष्ट निर्देशन है । इसमें कुछ पात्र जब नैतिक मूल्यों की लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन करते हैं, भारती उनपर अपनी नैतिकता का अंकुश लगाते हैं । चन्दर और सुधा में पवित्र प्रेम होता है । सुधा सामाजिक मूल्य के पालनार्थ चन्दर को छोड कैलाश से शादी करती है । चन्दर विवाहिता सुधा पर एकांत में अत्याचार करने के लिए उद्यत होता है तो सुधा अपनी पतिव्रता रूप की रक्षा करती है । पति से संबन्ध विच्छेदकर स्वच्छंद जीवन बितानेवाली पम्मी अंत में पत्नी होने में ही नारी का गौरव समझती है और वह अपने पति के पास वापस जाती है । भावना और वासना के बीच भटकनेवाला चन्दर अंत में स्वच्छ जीवन की प्रतिमूर्ति विनती से शादी करता है । इसप्रकार नैतिकमूल्यों की प्रतिष्ठा करनेवाला उपन्यासकार जीवन के जर्जरित मूल्यों की निन्दा भी करता हैं । वे डॉ. शुक्ला से कहलाते हैं - "यह सयमुच जाति, विवाह, सभी परंपराएँ बहुत ही बुरी हैं । बुरी तरह सड गयी हैं । उन्हें तो काट फेंकना चाहिए ।"[1] इसप्रकार भारती प्रस्तुत उपन्यास में सडी-गली मूल्यों की उपेक्षा करते हैं और नये मूल्यों की स्थापना के लिए आकुल दिखाई पडते हैं । साथ ही वे भारतीय परंपरा और सामाजिक मूल्यों को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं । डॉ. हुकुमचन्द राजपाल का यह कथन सही लगता है कि "ऊपरी धरातल पर भले ही इनके इस उपन्यास में मूल्यों की खण्डित स्थिति का चित्रण प्रतीत हो पर मूल्य-बोध, संकट-बोध एवं आधुनिकता की चरम स्थिति प्रस्तुत रचना में देखी जा सकती है पर इन सबके मूल में वे किसी गहन आस्था को व्यंजित करने के प्रति सजग रहे हैं । भारती का लक्ष्य सदैव परंपरा एवं युग सापेक्ष दृष्टि का सम्यक दिग्दर्शन कराना रहा है ।"[2]

---

1. गुनाहों का देवता, पृ: 251.
2. धर्मवीर भारती साहित्य के विविध आयाम - डॉ. हुकुमचन्द राजपाल, पृ: 142.

शिल्पपरक विशेषताएँ

"गुनाहों का देवता" का भाव-संसार प्रेम होता है । इसके अनुकूल शिल्प का प्रयोग उपन्यासकार ने किया है । भारती को रोमानियत के प्रति विशेष रुझान होता है । इसलिए उपन्यास की भूमि अधिक भावात्मक है । "गुनाहों का देवता" छायावादी भाषा-शैली का बहुत सुन्दर उदाहरण है, जैसे कवित्व और कल्पना का सौन्दर्य-सागर एक-एक शब्द से छलका पडता है ।"[1] प्रस्तुत उपन्यास में भारती का ध्यान शिल्पगत चमत्कार की ओर अधिक नहीं है । इसके बदले वे कथा में अधिक गुदगुदी पैदा करते हुए उसे अधिक सरस, कोमल और चुस्त रूप में प्रस्तुत करते हैं । शिल्प के संबन्ध में भारती का विचार भी ऐसा है कि "टेकनीक पर ज्यादा ज़ोर वही देता है जो कहीं न कहीं अपरिपक्व होता है, जो अभ्यास कर रहा है, जिसे उचित माध्यम नहीं मिल पाया, लेकिन फिर भी टेकनीक पर ध्यान देना बहुत स्वस्थ प्रवृत्ति है बशर्ते वह अनुपात से अधिक न हो जाये ।"[2] भारती ने टेकनीक संबन्धी इस विचार का पालन अक्षरशः "गुनाहों का देवता" में किया है ।

भाषा

भारती को कथा कहने की विशेष प्रतिभा होती है । कथ्य को प्रभावाभिव्यंजक बनाने के लिए उन्होंने अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है । "गुनाहों का देवता" की सबसे बडी विशेषता उसकी भाषा है । पात्रों की खास करके चन्दर और सुधा की मानसिक स्थिति के उद्घाटन और व्यंग्य-विनोद की प्रवृत्ति के अंकन के लिए भारती ने यथानुकूल भावमयी, सरल एवं सरस भाषा का प्रयोग किया है ।

---

1. अठारह उपन्यास - राजेन्द्र यादव, पृः 106.
2. सूरज का सातवाँ घोडा - धर्मवीर भारती, पृः 84.

सुधा के विवाहोपरांत चन्दर की विक्षिप्तता का अंकन इसका स्पष्ट उदाहरण है - "शादी के बाद इतनी भयंकर थकावट उसकी नसों में कसक उठी कि उसका चलना-फिरना मुश्किल हो गया था। वह अपने घर से होटल तक खाना खाने नहीं जा पाता था। बस पडा-पडा सोता रहता। सुबह नौ बजे सोता, पाँच बजे उठता थोडी देर होटल में बैठकर फिर वापस आ जाता। चुपचाप छत पर लेटा रहता और फिर सो जाता। उसका मन एक उजडे हुए नीड की तरह था जिसमें से विचार, अनुभूति स्पन्दन और रस के विहंगम कहीं दूर उड गये थे।"[1] उपन्यास में पात्रों के स्तर के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। डॉ. शुक्ला की भाषा मंजित है तो बुआ की शुद्ध बोलचाल की भाषा है। भाषा के ज़रिए पात्रों का सजीव चित्र पाठकों के सामने प्रस्तुत हुआ है। अलंकारयुक्त, मुहावरेदार भाषा ने उपन्यास की शोभा बढायी है। पम्मी और चन्दर के शारीरिक संबन्ध को कथाकार ने संकेत के ज़रिए सूचित किया है। वासना के उद्दाम पक्ष की पुष्टि के लिए पम्मी के द्वारा बाइबिल के हेराद और सेलामी की कहानी का भी उपयोग किया गया है। शिल्प की दृष्टि से यह भी एक विशेषता है। उपन्यास के पात्रों का संवाद नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हुआ है।

"गुनाहों का देवता" की एक और विशेषता सुन्दर सूक्तियों का प्रयोग है। जैसे - "जीवन में अलगाव, दूरी, दुख और पीडा आदमी को महान बना सकती है। भावुकता और सुख हमें ऊँचे नहीं उठाते।"[2] इसी प्रकार लोकतत्व के प्रयोग भी यत्र-तत्र दिखाई पडते हैं। यथा - "औरत अपने प्रति आनेवाले प्यार और आकर्षण को समझने में चाहे एक बार भूल कर जाये लेकिन वह अपने प्रति आनेवाली उदासी और उपेक्षा को पहचानने में कभी भूल नहीं करती।"[3] कुलमिलाकर उपन्यास का शिल्प पाठकों को आकर्षित करने में सक्षम है।

---

1. गुनाहों का देवता - धर्मवीर भारती, पृ: 189.
2. वही - पृ: 139.
3. वही - पृ: 276.

शीर्षक की सार्थकता

उपन्यास के केन्द्र में चन्दर और सुधा है । दोनों अपने आदर्श प्रेम के कारण देवता के गुणों से विभूषित भी है । लेकिन सुधा के विवाह होने पर वह पम्मी के संपर्क को ही जीवन का सर्वस्व मानने लगा और सामाजिक मूल्यों का उल्लंघन करने लगा । चन्दर के इस पतन के आघात से सुधा रोगिडा बन जाती है और उसकी मृत्यु हो जाती है । सुधा की मृत्यु के लिए चन्दर भी उत्तरदायी है । ये सब चन्दर के व्यक्तित्व पर कलंक लगाते हैं और वह गुनाहों से घिरा हुआ देवता बन जाता है । हमारी दृष्टि में चन्दर ही नहीं सुधा भी गुनाह से मुक्त नहीं है । क्योंकि सुधा जीवन के यथार्थ की उपेक्षा करके सिर्फ आदर्श या कल्पना की दुनिया में हमेशा विचरण करती है । वह मन की महिमा के साथ तन की महिमा को नहीं स्वीकारती है । तन और मन को संतुलित दृष्टि से देखने में वह भूल करती है । इसलिए, "गुनाहों का देवता" शीर्षक सार्थक और समीचीन है ।

सूरज का सातवाँ घोडा

"सूरह का सातवाँ घोडा" भारती का एक 'नये ढंग का लघु-उपन्यास' है । इसमें भारती की कथा-चेतना और रचना-विधान "गुनाहों का देवता" की तरह स्वच्छन्दतावादी न रहकर उससे नितांत पृथक् यथार्थवादी बन गये हैं । मध्यवर्गीय समाज की विकृतियों, विषमताओं और कुंठाओं को भारती इसमें आलोकित करते हैं । डॉ. अतुलवीर अरोडा ने स्पष्ट किया है - "यह उपन्यास सामाजिक यथार्थ का अंकन है, जिसकी मूल संवेदना व्यंग्यात्मक है । अपनी परिणति में यह उपन्यास मध्यवर्गीय समष्टि की विकृतियों और विडंबनाओं का उपन्यास है ।"[1]

कहानी या उपन्यास

"सूरज का सातवाँ घोडा" एक छोटे कलेवर का उपन्यास है । इसमें अनेक कहानियाँ हैं । वे एक दूसरे से मिलकर उपन्यास का रूप धारण करती है । "सूरज का सातवाँ घोडा" टेकनीक की दृष्टि से एक अपूर्व रचना है । अनेक कहानियाँ स्वतंत्र होते हुए भी एक कहानी में समाहित हो जाती हैं । वे अनेक कहानियाँ भी हैं और एक गुंफित कहानी के अंश भी । संपूर्ण कृति में निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का अवितथ चित्र हमारे सामने उभरकर आता है ।"[2] प्रस्तुत कृति की कहानियों का प्रस्तुतकर्ता माणिक मुल्ला है । प्रारंभ से अंत तक प्रत्येक घटना से माणिक मुल्ला का प्रत्यक्ष या परोक्ष सरोकार रहा है । प्रत्येक कहानी में पात्रों और घटनाओं के भिन्न होने पर भी सब परस्पर संबद्ध हैं । इसके अतिरिक्त एक कहानी के किसी छोटे-बडे पात्र को लेकर दूसरी कहानी शुरू होती है और सारी कथाएँ एक ही समाज या मोहल्ले के विविध पक्षों का चित्र प्रस्तुत करती हैं । इसलिए "सूरज का सातवाँ घोडा" उपन्यास की कोटि में आता है ।

---

1. आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास - डॉ. अतुलवीर अरोडा, पृ: 120.
2. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ: 203.

श्री प्रेमप्रकाश गौतम इस उपन्यास को केवल एक कथा-निबन्ध मानकर लिखते हैं - "भारती की यह रचना अनेक कहानियों में एक कहानी कही गयी है । परंतु इसमें न अनेक कहानियाँ हैं, न एक कहानी और न इसे अनेक कहानियों में एक कहानी कहा जा सकता है । उपन्यास या लघु-उपन्यास भी यह सच्चे अर्थ में नहीं है । वास्तव में यह रचना एक कथा-निबन्ध है, साधारण प्रेम-कथा को नया प्रयोग बनाने की इच्छा के कारण कुछ नवीनता पैदा करने का प्रयास ।"[1] ऐसा लगता है कि श्री. गौतम ने अपना मत कृति की ओर देखते हुए नहीं बदले कृतिकार की ओर देखते हुए प्रकट किया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि "सूरज का सातवाँ घोडा" में एक संश्लिष्ट कथा का निर्वाह किया गया है ।

प्रेम एक माध्यम

मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को चित्रित करने के लिए भारती ने प्रेम कहानियों का सहारा लिया है । क्योंकि उनके विचार में "कहानियों की तमाम नस्लों में प्रेम कहानियाँ ही सबसे अधिक सफल साबित होती है ।"[2] माणिक मुल्ला और तीन स्त्री पात्र - जमुना, लिली और सत्ती - इस उपन्यास के केन्द्र में है । इनके माध्यम से कथाकार ने मध्यवर्ग के युवा वर्ग की साहसहीनता, नैतिक विशृंखलता और कल्पनाप्रियता का पर्दाफाश किया है । लेकिन कथाकार इसके प्रतिपाद्य को प्रेम मानने से इनकार करते हैं । "देखो ये कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं वरन् उस जिन्दगी का चित्रण करती है जिसे आज का निम्न-मध्यवर्ग जी रहा है । उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक निश्रृंगखलता, इसलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अंधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है ।"[3] यह ठीक है कि

---

1. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ: 94.
2. सूरज का सातवाँ घोडा - धर्मवीर भारती, पृ: 19.
3. वही - पृ: 113.

उपन्यासकार ने निम्न-मध्यवर्ग के कठोर यथार्थ को अंकित किया है । लेकिन उसका माध्यम प्रेम ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है । इस उपन्यास के प्रेम की खूबी का उल्लेख करते हुए श्री रणधीर सिनहा लिखते हैं - "प्रेम के माध्यम से एक वर्ग (निम्न-मध्यवर्ग) का पूरा चित्र जिसप्रकार यह उपन्यास हमारे सामने प्रस्तुत करता है वैसा चित्र शेखर का प्रेम नहीं प्रस्तुत करता । शेखर का प्रेम समाज या वर्ग को नहीं केवल व्यक्ति को स्पष्ट करता है । इस तरह व्यक्ति को समाज से, आर्थिक न्यास को बौद्धिकता से, शारीरिकता को मनःस्थितियों से संपृक्त कर यह उपन्यास एक तीसरे माध्यम का अन्वेषण करने में सफल रहा है । इसमें जीवन का अपना खासा रंग है । वास्तविकता का दर्द है ।"[1]

"गुनाहों का देवता" से "सूरज का सातवाँ घोडा" तक आने पर कथाकार की प्रेम संबन्धी मान्यता में भारी परिवर्तन आये हैं । पहले उपन्यास में समाज निरपेक्ष प्रेम को अभिव्यंजना करनेवाला कथाकार दूसरे में लिखता है - "प्रेम नामक भावना कोई रहस्यमय, आध्यात्मिक या सर्वथा वैयक्तिक भावना न होकर वास्तव में एक सर्वथा मानवीय सामाजिक भावना है, अतः समाज व्यवस्था से अनुशासित होती है और उसकी नींव आर्थिक-संगठन और वर्ग-संबन्ध पर स्थापित है ।"[2]

विविध कहानियाँ

"सूरज का सातवाँ घोडा" उपन्यास का प्रस्तुतीकरण अनेक कहानियों द्वारा हुआ है । कहानियों का वक्ता माणिक मुल्ला है । माणिक मुल्ला मुहल्ले का मशहूर व्यक्ति है । उनके यहाँ रोज़ मुहल्ले के नौजवानों का अड्डा जमता था और उसमें लेखक भी उपस्थित होता था । इस महफिल में माणिक रोज़ एक कहानी प्रस्तुत करता था । माणिक मुल्ला के साथ उनकी ये कहानियाँ भी लापता न हो जाएँ, इस उद्देश्य से लेखक उनके द्वारा सात दिन कही गयी सात कहानियों को इस उपन्यास में प्रस्तुत करते हैं ।

---

1. दिशाओं का परिवेश - सं. ललित शुक्ल, पृ: 103.
2. सूरज का सातवाँ घोडा, पृ: 25.

उपन्यास का आरंभ पहली दोपहर - नमक की अदायगी अर्थात् जमुना का नमक माणिक ने कैसे अदा किया - से होता है । इसमें माणिक मुल्ला अपनी और जमुना की कहानी सुनाता है । दोनों बचपन से परिचित हैं । जमुना उम्र में माणिक से पाँच साल बडी है और वह उससे सस्ते किस्म की प्रेम कहानियों की पत्रिकाएँ और फिल्मी गानों की पुस्तकें मँगवाती है । इस बीच जमुना के विवाह की बात महेसर दलाल के लडका तन्ना के साथ चलती है । तन्ना थोडे नीच गोत का है । इसके अतिरिक्त जमुना का बाप आवश्यक दहेज देने में असमर्थ भी है । अतः उनके संबन्ध की चर्चा टूट जाती है । इससे जमुना को बहुत ठेस पहुँचती है । गाय को रोटी खिलाने के लिए माणिक को जमुना के यहाँ जाना पडता है । तब जमुना उसे पुष्प खिलाती है और अपनी आत्म-व्यथा कहती है । नामक की अदायगी के लिए माणिक रोज़ जमुना के यहाँ जाने के लिए मज़बूर हो जाता है । दोनों का संबन्ध घनिष्ठता में परिणत हो जाता है । लेकिन जमुना का विवाह दूसरे से हो जाता है और माणिक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है - "सम्पत्ति की विषमता ही इस प्रेम का मूल कारण है । न उनके घर गाय होती, न मैं उनके यहाँ जाता, न नमक खाता, न नमक अदा करना पडता ।"[1] अतः हरेक के घर में गाय होनी चाहिए ।

"दूसरी दोपहर - घोडे की नाल अर्थात् किसप्रकार घोडे की नाल सौभाग्य का लक्षण सिद्ध हुई?" - में जमुना की शादी और उससे संबन्धित घटनाओं का चित्रण है । इसमें अनमेल विवाह से उत्पन्न अवैध संबन्धों की ओर भी इशारा किया गया है । जमुना का विवाह एक वृद्ध तिहाजू मजींदार से होता है । जमुना उसे देखते समय बहुत रोयी, लेकिन जेवर चढा तो बहुत खुश हुई । अब उसे कोई संतान न होने का दुख है । संतान के लिए वह ज्योतिषी के बताए अनुसार रोज़ सुबह कार्तिक भर गंगा नहाकर चण्डी देवी को पीले फूल और ब्राह्मणों को चना, जौ और सोने का दान करती है । ताँगेवाला रामधन उसका साथ देता है । एक दिन रामधन जमुना से बताता है कि माथे पर सफेद तिलकवाले घोडे के अगले बायें पैर की घिसी हुई नाल

---

1. सूरज का सातवाँ घोडा - धर्मवीर भारती, पृः 33.

चन्द्रग्रहण के समय अपने हाथ से निकालकर उसकी अंगूठी बनवाकर पहन ले तो उसकी कामना पूरी हो जाएगी । इस अनुष्ठान से जमुना की संतान होती है । पति की मृत्यु होने पर जमुना रामधन को एक कोठरी दे देती है और पवित्रता से जीवन व्यतीत करने लगती है । "जमुना निम्न-मध्यवर्ग की एक भयानक समस्या है । आर्थिक नींव खोखली है । उसकी वजह से विवाह, परिवार, प्रेम सभी की नींवें हिल गयी हैं । अनैतिकता छायी हुई है । पर सब उस ओर से आँखें मूँदे हैं । असल में पूरी जिन्दगी की व्यवस्था बदलनी होगी ।"[1]

तीसरी कहानी शीर्षकहीन है - "शीर्षक माणिक मुल्ला ने नहीं बताया"। इसमें तन्ना की दुखद गाथा माणिक सुनाते हैं । तन्ना रूढियों से ग्रस्त, साहसहीन पर ईमानदार युवक है । उसका विवाह एक सुशिक्षित एवं संपन्न युवती लिली से होता है । तन्ना के पिता का व्यवहार अत्यंत घृणापूर्ण बन जाता है । सौतेली माँ उसे सताता है, बाप तंग करते हैं और नौकरी में अत्यंत कष्ट उठाना पडता है । अब सास उसकी पत्नी को अपने साथ ले जाती है । तन्ना का शरीर मात्र कंकाल रह जाता है । एक दिन वह गाडी से नीचे गिर पडता है, दोनों टांगें कट जाती हैं और अस्पताल में उसकी मृत्यु हो जाती है ।

'मालवा की युवरानी देवसेना की कहानी' शीर्षक से प्रारंभ चौथी दोपहर में माणिक मुल्ला और लिली के भावुक प्रेम की कहानी सुनाता है । माणिक का यह प्रेम भी कुछ उसी तरह का है जैसा जमुना के साथ था । समाज-भीरू होने के कारण उसका प्रेम-संबन्ध टूट जाता है । लिली की शादी तन्ना से होती है । इसके द्वारा उपन्यासकार मध्यवर्गीय युवक-युवतियों की साहसहीनता का पर्दाफाश करता है ।

पाँचवीं दोपहर को माणिक मुल्ला ने 'काले बेंट का चाकू' शीर्षक कहानी सुनाई । इसमें चमन ठाकुर की पोषिता कन्या सत्ती और माणिक मुल्ला की आत्मीयता का वर्णन है । सत्ती पहिया छाप साबुन के मालिक चमन ठाकुर को साबुन बिक्री में

---

1. सूरज का सातवाँ घोडा - धर्मवीर भारती, पृ: 47.

विशेष सहयोग देती है । माणिक मुल्ला के प्रति उसका प्रेम लगता है, चमन ठाकुर से मुक्त होने की इच्छा से उद्भूत है । सत्ती जब चमन ठाकुर और महेसर दलाल की कामलोलुपता से बचने के लिए माणिक के पास आती है तो मर्यादा-भीरू माणिक अपने भाई को सत्ती के आने की खबर देता है । वह सत्ती को पुनः चमन के हाथों सौंप देता है । लोगों का कहना था कि चमन और महेसर दलाल ने मिलकर सत्ती को मार डाला । पर यह विश्वास लोगों का गलत था ।

छठी दोपहर के अतर्गत 'क्रमागत' शीर्षक में पिछले दोपहर से आगे की कहानी कही गयी है । इसमें कथा-कथन के साथ पात्रों का मानसिक विश्लेषण भी किया जाता है । सत्ती की मृत्यु के समाचार से माणिक का स्वभाव असामाजिक, उच्छृंखल और आत्मघाती हो जाता है । क्योंकि वह अपने को सत्ती की मौत का जिम्मेदार समझने लगा । एक दिन जब माणिक चायघर से निकल रहा था तो उसने देखा कि एक लकडी की गाडी में चमन ठाकुर बैठा था और सत्ती गोद में एक भिनकता हुआ बच्चा लिये गाडी खींचती चली आ रही है । माणिक को नज़दीक से देखते ही सत्ती का हाथ कमर पर गया शायद चाकू की तलाश में, पर चाकू न पाकर वह खून की प्यासी दृष्टि से माणिक की ओर देखती हुई आगे बढ गयी । सत्ती को जीवित देख माणिक के मन की सारी निराशा उतर गयी और उसने कविता-कहानी छोडकर तन्ना के रिक्त स्थान पर आर. एम. एस. में नौकरी कर ली ।

उपन्यास की अन्तिम कहानी का शीर्षक है "सूरज का सातवाँ घोडा" अर्थात् वह जो सपना भेजता है । इसमें मुख्य रूप से माणिक ने सात घोडों का तात्पर्य स्पष्ट किया है । "हमारे वर्ग-विगलित, अनैतिक, भ्रष्ट और अंधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफी टूट-फूट गया है और बेचारे घोडों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गयी है तो किसी का पैर उखड गया है, तो कोई सूखकर ठठरी हो गया है, तो किसी के खुर घायल हो गये है । अब बचा है सिर्फ एक घोडा जिसके पंख अब भी साबित है, जो सीना ताने गरदन उठाये आगे चल रहा है । वह घोडा है

भविष्य का घोडा, तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हे निष्पाप बच्चों का घोडा, जिनकी जिन्दगी हमारी ज़िन्दगी से ज्यादा अमन-चैन की होगी, ज्यादा पवित्रता की होगी, उसमें ज्यादा प्रकाश होगा, ज्यादा अमृत होगा । वही सातवाँ घोडा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें जिनपर भविष्य का घोडा आएगा इतिहास के वे नये पन्ने लिख सकें जिनपर अश्वमेध का दिग्विजयी घोडा दौडेगा ।"[1]

उपन्यास के कथा-चक्र में सात दिन और सात कथा-प्रसंगों के प्रस्तुतीकरण की दावा है । लेकिन कहानियाँ पाँच ही हैं । छठी दोपहर की कहानी पाँचवीं दोपहर की कहानी का ही अंश है । इसी प्रकार सातवीं दोपहर में कोई कहानी नहीं है । इसमें शेष सभी कहानियों का सार मात्र प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास में सात कहानियों के शीर्षक रखने का कारण, शायद यह विश्वास है कि, सूरज के सात घोडे हैं और ये घोडे मिलकर सूर्य के रथ को आगे बढाते हैं । यहाँ छः घोडे असफल और विकलांग हो गये हैं और कहानियाँ असफल और दुर्घात हो गयी हैं । सातवाँ घोडा ही माणिक मुल्ला का स्वप्न-स्रष्टा है ।

इसकी चार कहानियों के साथ एक एक अनध्याय भी जोडा गया है । इनमें प्रत्येक दोपहर को माणिक द्वारा कही गयी कहानियों पर श्रोताओं की चर्चा या प्रतिक्रिया है । श्री प्रेमप्रकाश गौतम की दृष्टि में "साहित्यिक सिद्धि या चमत्कार यदि कहीं है तो अनध्यायों में है, अध्यायों में नहीं ।"[2] इन अनध्यायों में पात्रों के चरित्र की समीक्षा समाज के संदर्भ में की गयी है ।

---

1. सूरज का सातवाँ घोडा - धर्मवीर भारती, पृः 113-114.
2. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृः 94.

निम्न-मध्यवर्गीय जीवन

"सूरज का सातवाँ घोडा" में उपन्यासकार ने निम्न-मध्यवर्ग के आर्थिक संकट और उससे उत्पन्न समस्याओं के साथ नैतिक विकृतियों और अंधविश्वासों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । "इस लघु-उपन्यास में लेखक ने निम्न-मध्यवर्ग के युवक-युवतियों की कुण्ठा, निम्न-मध्यवर्गीय लोगों के खोखले वैवाहिक जीवन, मिथ्या धर्माचार, झूठी नैतिकता और घोर निराशा को समाविष्ठ करने का प्रयास किया है ।"[1] जमुना के विवाह के लिए आवश्यक दहेज जुटा पाने में उसका बाप असमर्थ है । फलतः जमुना का विवाह तन्ना से न होकर एक वृद्ध तिहाजू ज़मींदार से होता है । जात-पांत का कठोर नियम भी इसका कारण बनता है । संतान-प्राप्ति के लिए जमुना ज्योतिषी के पास जाती है और ताँगेवाला रामधन द्वारा निर्दिष्ट अनुष्ठान के लिए तैयार होती है और उसके साथ अवैध संबन्ध भी स्थापित करती है ।

तन्ना शिक्षित मध्यवर्ग का प्रतीक है । शिक्षा-प्राप्त होने पर भी वह सडी-गली परंपराओं का अंधानुसरण करता है । वह परिष्कृत कायरता का प्रतिनिधि है । वह जमुना से शादी करना चाहता है । लेकिन पिता की अनिच्छा के कारण नहीं कर पाता है । इसके अतिरिक्त उसे घर में और काम में अकारण डाँट खानी पडती है । वह कहीं भी सामाजिक अन्याय एवं कुरीतियों का विरोध नहीं करता है ।

तन्ना के पिता महेसर दलाल निम्न-मध्यवर्ग का अगुआ है । वह जमुना के साथ तन्ना के संबन्ध को अनैतिक बताता है । वही महेसर अपनी पत्नी की मृत्यु होने पर एक रखैल रखता है । वह इतना विलासी एवं कामुक है कि लिली की माँ के साथ अवैध संबन्ध स्थापित करता है और सत्ती पर अत्याचार करने केलिए उद्यत होता है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास - डॉ. सुषमा धवन, पृः 261.

इसप्रकार निम्न-मध्यवर्ग के गये-गुज़रे जीवन का हू-ब-हू चित्रण तन्ना के माध्यम से भारती ने किया है । सचमुच "उनका यह उपन्यास बिना कोई कृत्रिम मुखौटा लगाए निम्न-मध्यवर्ग के जीवन के यथार्थ को बडी सफाई और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में समर्थ होता है ।"[1]

अस्मिता की तलाश में भटकता माणिक मुल्ला

माणिक मुल्ला प्रस्तुत उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है । वह लेखक के मुहल्ले का मशहूर व्यक्ति है । कई पुश्तों से उसका परिवार यहाँ बसा हुआ था । अपने भाई-भाभी के तबादला होने पर वह पूरे घर में अकेला रहता है । "मुल्ला उसका उपनाम नहीं जाति थी ।

वक्ता-श्रोता शैली में लिखे उपन्यास की कथा का वक्ता माणिक मुल्ला है । वह केवल वक्ता ही नहीं, उसका भोक्ता भी है । अपने जीवन को सही दिशा देने में असमर्थ मध्यवर्गीय युवकों का प्रतिनिधि है माणिक मुल्ला । वह जमुना, लिली एवं सत्ती के संपर्क में आता है । लेकिन अपनी कायरता के कारण माणिक इन लडकियों में किसी को भी अपनी जीवन-संगिनी बनाने में असमर्थ बन जाता है । जमुना और लिली के प्रेम प्रस्ताव को लोक लाजवश वह ठुकराता है । आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अपने पास आयी सत्ती को माणिक धोखा देता है । अपने इन कर्मों पर वह अत्यंत दुखी होता है और दिशाहारा बन जाता है । वह कहता है - "मुझमें अपने व्यक्तित्व के प्रति एक अनावश्यक मोह, उसकी विकृतियों को भी प्रतिभा का तेज़ समझने का भ्रम और अपनी असामाजिकता को भी अपनी ईमानदारी समझने का अनावश्यक दंभ आ गया था । धीरे-धीरे मैं अपने-ही को इतना प्यार करने लगा कि मेरे मन के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवालें खडी हो गयीं और मैं स्वयं अपने अहंकार में बंदी हो गया, पर इसका नशा मुझ पर इतना तीखा था कि मैं कभी अपनी असली स्थिति

---

1. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास - डॉ. सुरेश सिनहा, पृ: 527.

पहचान नहीं पाया ।"[1] जमुना के यहाँ जाकर नमकीन पुआ खानेवाला और सत्ती से आर्थिक सहायता स्वीकार करनेवाला माणिक अपने अस्तित्व की खोज में भटकता-फिरता है । माणिक मुल्ला के माध्यम से उपन्यासकार ने मध्यवर्गीय मानव की अनिर्णय और द्वन्द्वग्रस्त त्रासदीय स्थिति को अभिव्यक्त किया है ।

असंगति में संगति की खोज

"सूरज का सातवाँ घोडा" मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं का उपन्यास है । "सातवीं दोपहर" को छोड शेष सभी दोपहरों में कही गयी कहानियों में जीवन की विषमताओं, खोखली मान्यताओं और रुग्ण नैतिक मूल्यों का चित्रण हुआ है । प्रेम की असफलता और उसके ज़रिए समाज के विविध पहलुओं को इसमें प्रस्तुत किया गया है । कहीं जाति-पाँति की समस्या है, कहीं आर्थिक उच्च-नीच की समस्या है तो कहीं मध्यवर्गीय युवकों की कायरता और अकर्मण्यता दिखायी पडती है । अन्धकारपूर्ण जीवन की इन परिस्थितियों के बीच भी भारती ने आस्था और प्रकाश की एक क्षीण रेखा पकडने की कोशिश की है । इसका नतीजा है "सातवीं दोपहर" । "हमारे वर्ग-विगलित, अनैतिक, भ्रष्ट और अंधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफी टूट-फूट गया है और बेचारे घोडों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गयी है तो किसी का पैर उखड गया है तो कोई सूखकर ठठरी हो गया है तो किसी के खुर घायल हो गये हैं । अब बचा है सिर्फ एक घोडा वही सातवाँ घोडा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें जिन पर होकर भविष्य का घोडा अयेगा इतिहास के वे नये पन्ने लिख सकें जिनपर अश्वमेघ का दिग्विजयी घोडा दौडेगा ।"[2] इसप्रकार सातवें घोडे की कल्पना के माध्यम से उपन्यासकार जीवन के प्रति अदम्य निष्ठामयी आस्था प्रदर्शित करता है । वे

---

1. सूरज का सातवाँ घोडा, धर्मवीर भारती, पृ: 104.
2. वही - पृ: 113-114.

निराशा के अन्धकार में विलीन होने को तैयार नहीं हैं । बदले वे समाज-व्यवस्था में परिवर्तन कर, नये मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं । श्री देवेन्द्र इस्सर के शब्दों में "सूरज का सातवाँ घोडा" वर्तमान अंधेरे को चीरकर भविष्य के प्रकाश में एक जलता हुआ प्रश्न भी है और मनुष्य की आस्था का प्रतीक भी । माणिक मुल्ला को जीवन की असंगतियों का पूरा एहसास है । यद्यपि वह जीवन धारा से कटा हुआ है फिर भी वह वस्तुस्थिति को नकारता नहीं, बल्कि अपने व्यंग्य और उन्मुक्त हास्य से जीवन और मनुष्यों के आंतरिक संबन्धों का गहन बोध देता है ।"[1]

भारती ने उपन्यास में आस्था के कगार को टूटने से बचाया है । लेकिन उपन्यास की कलात्मकता को आस्था का यह बचाव आघात पहुँचाया है । क्योंकि सातवें घोडे की कल्पना पूरी कहानी से उभरी हुई नहीं है । यह अचानक ऊपर से जोडी गयी सी लगती है । "यह भविष्य के सपनों का घोडा है जो उपन्यास के मूल से कटा हुआ है, आरोपित होने के कारण अखरता है, भारती के कवि की देन है । इस तरह कविता की लय को उपन्यास की लय पर चिपकाया गया है ।"[2] लेखक ने जिस समाज और जिन लोगों की कथा कही है उसमें कहीं भी कोई ऐसा संकेत नहीं है जो इस सातवें घोडे-यानी तन्ना, जमुना एवं सत्ती के नन्हे निष्पाप बच्चों के उज्ज्वल भविष्य-का आभास देता हो । इसके अतिरिक्त उपन्यास के अन्त में भोले बच्चों के माध्यम से भविष्य को आशा और आस्था का सन्देश कथाकार देते हैं , पर उन्हें नये पथ पर चलता हुआ नहीं दिखाई देता है । यही कारण डॉ. सुषमा धवन को भी यह स्वीकार करना पडा है कि "यह आशा उपन्यास की अन्तर्भूत आशा नहीं, उसपर आरोपित की गयी है । उद्देश्य के रूप में जोडा गया अन्तिम परिच्छेद शेष उपन्यास से कटा हुआ-सा लगता है, अतः खटकता है ।"[3] यह तो सच है कि प्रत्येक मनुष्य ऐसी संकल्पना करता है कि अपने बच्चे की ज़िन्दगी अपनी कष्टपूर्ण जिन्दगी से ज्यादा सुखद और आनन्दपूर्ण होगी । यह संकल्पना ही उसकी जीवन-शक्ति है । लेकिन, श्री. राजेन्द्र यादव

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास - सं. नरेन्द्र मोहन, पृ: 33.
2. आज का हिन्दी उपन्यास - इन्द्रनाथ मदान, पृ: 55.
3. हिन्दी उपन्यास - डॉ. सुषमा धवन, पृ: 263.

लिखो हैं – "यह प्रत्येक युग का अपने बच्चों पर होता आया है । हमारे बाप-दादाओं का हमारे लिए था, हमारा अपने आगे आनेवालों के लिए । यह दूसरी बात है कि हमारे पुरुखों का यह विश्वास हमारे बाप-दादाओं के लिए सच नहीं हुआ और हमारे बाप-दादाओं का हमारे लिए सच नहीं हुआ । जिन्दगी बद से बदतर होती गयी और हमने इस बोझ को फिर आनेवाली पीढी पर डाल दिया है । अब हम फिर आशा-भरी निगाहों से अपने आगेवालों को देख रहे है ।"[1] भारती की कमी यहाँ है कि उन्होंने आगामी पीढी के सुखद जीवन की कल्पना को बल देनेवाला किसी भी प्रसंग का परामर्श नहीं किया है । लेखक बलपूर्वक असंगति में संगति लाने का यत्न करता है । कारण यह है कि "भारती अपने इस उपन्यास में दोराहे पर खडे हैं । वे ऐसे लेखक सरीखे हैं, जिसे प्रेमचन्द भी अच्छा लगता है और प्रसाद भी, जो प्रेमचन्द और प्रसाद का अनुकरण करना चाहता है – दोनों के दृष्टिकोण और दृष्टिपथ में जो अन्तर है उसको जानते हुए भी । जो अभी तय नहीं कर पाता कि उसे अन्ततोगत्वा कौन सा दृष्टिकोण और दृष्टिपथ अपनाना है ।"[2]

अभिव्यंजना का स्वरूप

"सूरज का सातवाँ घोडा" भारती के पहले उपन्यास से बिलकुल पृथक् एक नये ढंग का लघु-उपन्यास है । इसकी शैली के संबन्ध में डॉ. गणेशन का मत है कि "सूरज का सातवाँ घोडा" में नवीन एवं प्राचीन शैलियों का समन्वय है, बिलकुल असंबद्ध कुछ कथाओं को कुछ पात्रों द्वारा मिलाया गया है । यह शैली अति प्राचीन है और "सहस्र रजनी चरित" (Thousand and one night), हेप्तामेहान, डेकामेरान आदि में प्रयुक्त हुई है । लेकिन भारती का विषय नवीन है और समाज की समस्याओं से संबन्धित है ।"[3] इसमें भारती ने समाज के विराट जीवन को लघु खंडचित्रों द्वारा

---

1. हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग – सं. अरविन्द गुर्टु, पृ: 231.
2. रेखाएँ और चित्र – उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ: 282.
3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ. गणेशन, पृ: 87.

प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । उपन्यास की भूमिका में अज्ञेय ने इसके गठन के संबन्ध में लिखा है - "बहुत सीधी, बहुत सादी, पुराने ढंग की -बहुत पुराने, जैसा आप बचपन से जानते है - अलफलैलावाला ढंग, पंचतंत्रवाला ढंग, बोकैच्छियोवाला ढंग, जिसमें रोज़ किस्सागोई की मज़लिस जुटती है, फिर कहानी में से कहानी निकलती है ।"[1]

वक्ता-श्रोता शैली

"सूरज का सातवाँ घोडा" वक्ता-श्रोता शैली का उपन्यास है । कथा-वक्ता माणिक मुल्ला है । माणिक मुल्ला द्वारा सात दोपहरों में लेखक तथा कुछ अन्य श्रोताओं को सुनायी सात कहानियों का पुंज है "सूरज का सातवाँ घोडा" । इसकी एक खूबी यह है कि स्वयं माणिक मुल्ला इन कहानियों का एक प्रमुख पात्र है । ये कहानियाँ उसके जीवन से भी गहन सरोकार रखती हैं । माणिक मुल्ला से सुनी गयी कहानियों का प्रस्तुतकर्ता मात्र है लेखक । "इस उपन्यास में श्री धर्मवीर भारती की सबसे बडी सफलता ही यह है कि उन्होंने अपने आप को बडी कुशलता से माणिक मुल्ला से अलग किया है, अतः वे अपनी कहानियों में एक अत्यन्त सफल कलाकार की तरह तटस्थ और अनासक्त रह सके हैं ।"[2] माणिक की कहानियों पर श्रोताओं की चर्चा भी होती है और कोई न कोई निष्कर्ष पर पहुँचते हैं ।

विचार-तत्व एवं व्यंग्य का छींटा

प्रस्तुत उपन्यास में, ऐसा लगता है, भारती की दृष्टि कथा-विकास के साथ पाठकों को अपने चिन्तन से परिचित कराना भी रही है । प्रेम, कहानी,

---

1. सूरज का सातवाँ घोडा, पृः 12.
2. हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग - अरविन्द गुर्टु, पृः 223.

मार्क्सवाद आदि विषयों पर वे अपने विचार व्यक्त करते चलते हैं । प्रेम के संबन्ध में वे लिखते हैं - "प्रेम में खरबूजा चाहे चाकू पर गिरे चाहे चाकू खरबूजे पर, नुकसान हमेशा चाकू का होता है । अतः जिसका व्यक्तित्व चाकू की तरह तेज़ और पैना हो, उसे हर हालत में इस उलझन से बचना चाहिए ।"[1] कहानी के वस्तु और टेकनीक के बारे में उनका अपना सिद्धांत होता है । "आधुनिक कहानी में आदि, मध्य या अन्त तीनों-से कोई-न-कोई तत्व अवश्य छूट जाता है । ऐसा नहीं होना चाहिए ।

कहानियाँ चाहे छायावादी हो या प्रगतिवादी, ऐतिहासिक हों या अनैतिहासिक हों, समाजवादी हो या मुसलिं-लीगी, किन्तु उनसे कोई-न-कोई निष्कर्ष अवश्य निकालना चाहिए । वह निष्कर्ष समाज के लिए कल्याणकारी होना चाहिए ।"[2] उपन्यास में ऐसे विचारों या सिद्धांतों का समावेश कथा के सहज प्रवाह में बाधा उत्पन्न करता है । कहीं कहीं ये बाहर से थोपे गये प्रतीत होते हैं । उपन्यास के अनध्यायों में श्रोताओं का जो वाद-विवाद होता है उसमें भी वैचारिकता की प्रधानता है । इसे एक नवीन प्रयोग मानना अनुचित नहीं है । श्री रणधीर सिनहा की दृष्टि में "पुस्त के चार अनध्याय पाठक को उपन्यास पढने के क्रम में एक बौद्धिक दृष्टि अपनाने में सहायक सिद्ध होते हैं । पाठक कहीं भावुक न हो जाए या फिर उत्तेजित न हो जाए इसलिए ये अनध्याय उसे सहारा देते हैं ।"[3]

व्यंग्य प्रस्तुत उपन्यास की एक महत्वपूर्ण विशेषता है । आधुनिक कहानीकारों, भारत के मर्क्सवादी व्याख्याकारों के अतिरिक्त निम्न-मध्यवर्गीय जीवन, भारतीय महिलाओं को आभूषण प्रियता और विधवा जीवन पर भारती एक निर्मम व्यंग्यकार की तरह छींटा कसते चलते हैं । "लेखक के व्यंग्य-विनोद अनेक समस्याओं,

---

1. सूरज का सातवाँ घोडा, पृः 19.
2. वही - पृः 19-20.
3. दिशाओं का परिवेश - सं. ललित शुक्ल, पृः 101.

सिद्धांतों और प्रवृत्तियों के छेडते चलते हैं किन्तु कहीं भी किसी के प्रति लेखक की आसक्ति या विरक्ति नहीं उभर पाती ।"[1] हमारे जीवन में व्याप्त गन्दगी और कीचड को देख कथाकार भावुक लोगों की तरह रोता रहना नहीं चाहता है । इसके बदले हँसते-हँसते उस जिन्दगी में परिवर्तन लाने का सामर्थ्य देता है ।

प्रतीक और भाषा

धर्मवीर भारती ने प्रतीक के ज़रिए प्रस्तुत उपन्यास को एक खास मोड दिया है । "सूरज का सातवाँ घोडा" स्वयं एक प्रतीक है । वह भविष्य का घोडा है जो हमारे सपनों का प्रतीक है । अतीत और वर्तमान के छः घोडे अनैतिक अंधकारपूर्ण और रूढीग्रस्त जीवन की गलियों से चलकर थक गये हैं । अब यह सातवाँ घोडा ही हमारी आशा का केन्द्र है । इसके अतिरिक्त, डॉ. सुषमा धवन जमुना, लिली एवं सत्ती को प्रतीकात्मक पात्र मानती हैं । उनकी राय में "जमुना अतीत की प्रतीक है, लिली आज का प्रतिनिधित्व करती है और सत्ती भविष्य की ओर संकेत करती है । इन तीनों नारियों के चरित्र-चित्रण द्वारा लेखक ने भारतीय नारी के विकास की ओर संकेत किया है ।"[2] ये तीनों निम्न मध्यवर्गीय पात्र हैं । जमुना अर्द्धशिक्षित एवं दमित मनवाली है तो लिली शिक्षित और भावुक है । लेकिन सत्ती एक स्वाधीन, परिश्रम करनेवाली लडकी है । जमुना माणिक को विकृतियों की ओर और लिली स्वप्नलोक की ओर खिंचती है । लेकिन सत्ती उसे यथार्थ की भूमि पर सहज जीवन के लिए प्रेरित करती है । इसप्रकार ये तीनों अपना अलग-अलग व्यक्तित्व रखती हैं । इन्हें "भारतीय नारी के विकास" का नमूना मानना बिलकुल अनुचित है । लेकिन, माणिक मुल्ला निम्न मध्यवर्गीय युवकों का प्रतिनिधि और प्रतीक है । इस वर्ग के युवकों की तमाम विशेषताएँ माणिक मुल्ला में सम्मिलित हुई हैं ।

---

1. धर्मवीर भारती उपन्यास साहित्य - कैलाश जोशी, पृः 20.
2. हिन्दी उपन्यास - डॉ. सुषमा धवन, पृः 261.

"सूरज का सातवाँ घोडा" में भारती की भाषा बहुत यथार्थवादी है । उपोद्घात में इसकी सूचना देते हुए उन्होंने लिखा है - "इनकी शैली में बोल-चाल के लहजे की प्रधानता है और मेरी आदत के मुताबिक उनकी भाषा रूमानी, चित्रात्मक, इन्द्रधनुष और फूलों से सजी हुई नहीं है ।"[1] इसकी भाषा कथ्य के अनुकूल ही है । लोककथात्मक पद्धति के उपन्यास होने के कारण उसके अनुरूप बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है । पात्रानुकूल भाषा इसकी एक और विशेषता है । रामधन ताँगेवाला और रामोबीबी जैसे अशिक्षित पात्रों की भाषा और लिली, जमुना, माणिक जैसे शिक्षित, अर्द्धशिक्षित पात्रों की भाषा में काफी अन्तर होता है । बोलचाल की भाषा का एक उदाहरण देखिए "बहूजी, आप काहे जान देय पर उतारू हो, ऐसन तपिस्या तो गैरा माइयो नैं किहिन होइ हैं । बडे बडे जोतसी का कहा कर लियो अब एक गरीब मनई का भी कहा कै लेव ।"[2] लिली रूमानी प्रकृति का पात्र है । चौथी दोपहर की कहानी लिली से संबन्धित है । इसलिए यहाँ कथाकार रूमानी भाषा का प्रयोग करता है । "खिडकी पर झूलते हुए जार्जेट के हवा से भी हलके परदों को चूमते हुए शाम के सूरज की उदास पीली किरणों ने झाँककर उस लडकी को देखा जो तकिये में मुँह छिपाये सिसक रही थी । चम्पे की कलियों-सी उसकी लंबी पतली कलात्मक उँगलियाँ, सिसकियों से काँप-काँप उठनेवाला उसका सोनजूही-सा तन, उसके गुलाब की पाँखरियों-से होंठ, और कमरे का उदास वातावरण ।"[3] यहाँ भारती को अपने आदत के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने का अवसर मिला है । इसलिए वे काफी जोश में पड जाते हैं और पाठक ऊबने लगते हैं । मालवा की युवरानी देवसेना की कहानी में भारती को कुछ संयम बर्तना चाहिए था । "कुल मिलाकर भारती शैली और शिल्प के प्रति आवश्यक से अधिक सचेष्ट दिखाई पडते हैं । फलस्वरूप शिल्प ऊपर तौर आता है, अत्यधिक मुखर तथा अनुपात से अधिक प्रतीत होता है ।"[4]

---

1. सूरज का सातवाँ घोडा, पृ: 21.
2. वही - पृ: 42.
3. वही - पृ: 70.
4. अधूरे साक्षात्कार - नेमिचन्द्र जैन, पृ: 121.

निष्कर्ष

धर्मवीर भारती ने अपने दोनों उपन्यासों में निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । रागात्मक वृत्ति के खास कर युवक-युवतियों के प्रेम के ज़रिए व्यक्ति और समाज के अन्तस् में कथाकार ने घुसपैठ किया है । "गुनाहों का देवता" व्यापक यथार्थ से दूर उपन्यास है तो "सूरज का सातवाँ घोडा" का प्राण ही सामाजिक यथार्थ है । इन उपन्यासों के संबन्ध में स्वयं भारती ने लिखा है - "दोनों कृतियों में काल-क्रम का अन्तर पडने के अलावा उन बिन्दुओं में भी अन्तर आ गया है जिनपर खडे होकर मैं ने समस्या का विश्लेषण किया है ।"[1] इसकी एक और विशेषता है कि कुंठा और निराशा के गर्त में पडनेवाले पात्रों को वे आशा और आस्था का संबल देते हैं और उपन्यास को सुखांत बनाने का कठिन प्रयत्न भी करते हैं । इसके अतिरिक्त "यदि प्रथम उपन्यास तत्कालीन औपन्यासिक परंपरा के आधार पर लिखा गया है, तो "सूरज का सातवाँ घोडा" एक सशक्त प्रयोगशील उपन्यास के रूप में माना गया है । दोनों रचनाओं में भारतीजी का काव्यपक्ष (भावुक व्यक्तित्व) सर्वत्र विद्यमान है । वस्तुतः दोनों उपन्यासों में भारतीजी का भावुक प्रयोगधर्मी रूप देखा जा सकता है ।"[2]

उपसंहार

डॉ. धर्मवीर भारती हिन्दी के जाने-माने साहित्यकार हैं। उन्होंने साहित्य की समस्त विधाओं में मानवजीवन की जीवंत समस्याएँ अंकित की हैं। समस्याएँ सामाजिक और वैयक्तिक होती हैं। भारती ने इन दोनों का चित्रण किया है। उनकी अधिकांश लघु कविताएँ, "चाँद और टूटे हुए लोग" संकलन की कुछ कहानियाँ, "गुनाहों का देवता" उपन्यास और "नदी प्यासी थी" संकलन के कुछ एकांकी वैयक्तिक समस्याओं और पीडाओं से युक्त हैं तो कुछ कविताएँ, अधिकांश कहानियाँ, "सूरज का सातवाँ घोडा" उपन्यास, "आवाज़ का नीलाम" जैसे एकांकी और "अंधायुग" सामाजिक समस्याओं से संपृक्त हैं। इसका मतलब यह नहीं कि भारती ने व्यक्ति और समाज की समस्याओं को अलग-अलग खानों में बाँट दिया है। "कनुप्रिया" में उन्होंने इसका स्पष्ट और सुन्दर समन्वय किया है। "कनुप्रिया" में राधा का दुख केवल राधा ही का नहीं वरन् इतिहास-निर्माण में अकेली पड जानेवाली "राधाओं" का दुख भी है।

आदर्श और यथार्थ

भारती ने अपनी रचनाओं में यथार्थ के साथ आदर्श का भी अंकन किया है। यद्यपि आदर्श और यथार्थ दो सीमाएँ हैं, भारती ने इन दोनों का समन्वय करने का प्रयास किया है। "गुनाहों का देवता" की सुधा आदर्श की पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है तो पम्मी इसके ठीक विपरीत स्थान पर। उपन्यास का नायक चन्दर इन दोनों स्थितियों के बीच झूलता हुआ दिखाई पडता है और अंत में शादी करके स्वच्छ जीवन बिताने लगता है। उपन्यासकार ने आदर्श की प्रतिमूर्ति सुधा और कोरे यथार्थ की प्रतिनिधि पम्मी की पराजय दिखायी है। लेकिन "गुलकी बन्नो", "बन्द गली का आखिरी मकान" जैसी एकाधिक कहानियों, "सूरज का सातवाँ घोडा"

उपन्यास और 'नीली झील' जैसे एकांकी में लेखक आदर्श की ओर अधिक झुक गया है । "गुलकी बन्नो" में पति के साथ ही जीवन बिताने की परित्यक्त गुलकी की इच्छा, चाहे वह जीवनेच्छा से प्रेरित हो, आदर्श के लिहाज से युक्त है । इसी प्रकार "बन्द गली का आखिरी मकान" में आवारा हरिया को आदर्शवान चरित्र बनाने के लिए कहानीकार बिरजा और राधोराम को नैनी भेजता है जहाँ बिरजा की माँ हरदेई रहती है । "नीली झील" एकांकी पूरे समाज को आदर्शपूर्ण बनाने के लक्ष्य से लिखा गया है । "सूरज का सातवाँ घोडा" में उपन्यासकार जीवन के कठोर यथार्थ के बीच खडा होकर आदर्श का सुनहला सपना देखता है और भविष्य के सुखद जीवन की घोषणा करता है । यहाँ लेखक यथार्थ से घबराकर आदर्श का आवरण पहनता है ।

नये मानवीय क्षितिज की खोज

आदर्श और यथार्थ के अंकन के पीछे एक ओर लेखक की द्वैत मानसिकता है तो दूसरी ओर उनकी मूल्यवादी दृष्टि है । धर्मवीर भारती मूलतः मूल्यवादी हैं । इसीलिए उनकी प्रायः समस्त रचनाओं में मूल्यों की स्थापना का आग्रह और नये मानवीय क्षितिज की खोज विद्यमान है । डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है कि उनके पूरे लेखन की मूल धुरी, आधुनिक संकट में मानवमूल्य की तलाश और उसकी प्रतिष्ठा ही है । चाहे वह आत्मव्यंग्य हो, चाहे शब्दचित्र या कविता, डायरी की पंक्ति - उनमें यही स्वर है कि आधुनिक संकट की प्रकृति केवल आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक संकट नहीं वरन् मानवजीवन के मौलिक प्रतिमानों का संकट है । मूल्य-स्थापना की अदम्य इच्छा "अन्धायुग" में देखी जा सकती है । "अन्धायुग" "मानवमूल्य और साहित्य" की सर्गात्मक अभिव्यक्ति है । इसमें मूल्यांधता के ज़रिए मूल्यों की बात कही गयी है । भारती ने ज़रूर कुछ कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में मूल्यहीनता और उच्छृंखलता की बातें कही हैं । लेकिन दूसरे ही क्षण वह पश्चाताप रूप में इन मूल्यहीनताओं और

उच्छृंखलताओं पर आपत्ति उठाके उन्हें सुधारने की कोशिश भी करता है । एक ओर प्रिया के आलिंगन मात्र को श्रेष्ठ माननेवाला कवि दूसरी ओर प्रमथ्यु के साहस को सर्वोच्च स्थापित करता है । "गुनाहों का देवता" में वैवाहिक जीवन छोडकर उच्छृंखल जीवन बितानेवाली पम्मी अंत में पति के पास जाती है । "सूरज का सातवाँ घोडा" का माणिक मुल्ला सामाजिक और नैतिक मूल्यों में अटल आस्था रखता है । इसीलिए वह अपने संपर्क में आई जमुना, लिली और सत्ती में किसी को भी अपनाने में असमर्थ हो जाता है । भारती की प्रायः संपूर्ण कहानियाँ मूल्यपरक ही हैं, यद्यपि वे इनमें मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं । "हरिनाकुस और उसका बेटा" में कहानीकार ने जल्लाद हरिनाकुस का गाँधीवादी हृदय-परिवर्तन तक कर दिया तो 'गुलकी बन्नो' में कुबडी गुलकी को पातिव्रत्य के संरक्षण के लिए पति और उसके रखैल की सेवा-शुश्रूषा जैसी घृणित वृत्ति भी करनी पडती है । जहाँ लेखक अपनी मूल्यवादी दृष्टि की पराजय की संभावना देखता है वहाँ वह समझौता कर देता है । 'यह मेरे लिए नहीं' में हम भारती के समझौते का मिजाज देखते हैं । इसमें पुराने और नये मूल्यों का संघर्ष है जिसमें दोनों की विजय नहीं होती है । 'नदी प्यासी थी' एकांकी में जीवन से ऊबकर आत्महत्या के लिए निकला राजेश एकदम जीवन में अडिग रहने का संकल्प करता है । मानव-जीवन और उसके गौरव में आस्था रखनेवाला लेखक जीवन की विरूपता देखना नहीं चाहता है । इसलिए वह मूल्यों की ओर उन्मुख होता है और बलपूर्वक इसका प्रतिपादन करता है ।

अस्मिता की खोज में भटकते पात्र

धर्मवीर भारती के प्रायः सभी प्रधान पात्र अपने अस्तित्व के लिए तडपते दिखाई पडते हैं । वे अपने जीवन के ओर-छोर पकडने को तिलमिलाते हैं । "अंधायुग" के युयुत्सु और प्रहरी इसके जीवंत नमूने हैं । युयुत्सु कौरव-कुल का है । पर वह कृष्ण के निर्णय को सत्य मानकर पाण्डव-पक्ष पर खडा होता है । अंत में उन्हें दोनों पक्षों से उपेक्षा ही मिलती है । निर्णयहीन युयुत्सु की स्थिति की तरह है वरण की स्वतंत्रता से

वंचित प्रहरी भी । प्रहरी केवल शासन के पहरेदार हैं । उन्हें सत्ता में कोई स्थान नहीं है और अपनी इच्छा के विपरीत असत्य का भी संरक्षण करना पडता है । इसीप्रकार "अंधायुग" के संजय, अश्वत्थामा और युधिष्ठिर जैसे पात्र भी अस्तित्व की पीडा झेलते हैं । भारती का गीतिकाव्य "कनुप्रिया" की नायिका कनुप्रिया भी इससे मुक्त नहीं है । इतिहास-निर्माण के लिए निकले कृष्ण, उसको सर्वस्व माननेवाली कनुप्रिया की उपेक्षा करता है । यह उपेक्षा राधा के आत्मगौरव और व्यक्तित्व पर चोट करती है । वह अपनी असली स्थिति की परख करने लगती है । "बन्द गली का आखिरी मकान" संकलन की चारों कहानियों के प्रमुख पात्र अस्तित्व-पीडा के शिकार हैं । "गुलकी बन्नो" की गुलकी, "सावित्री नंबर दो" की सावित्री, "यह मेरे लिए नहीं" का दीनू और "बन्द गली का आखिरी मकान" का मुंशीजी अपने अपने अस्तित्व बनाये रखने के लिए हाथ-पाँव मारते हैं "सूरज का सातवाँ घोडा" का माणिकमुल्ला जमुना, लिली और सत्ती से प्रेम करता है । लेकिन विविध कारणों से उसका प्रेम पराजित होता है। वह जीवन की वास्तविक स्थिति तक पहुँचने के लिए तिलमिलाता है, पर असफल हो जाता दिखाई पडता है । इसीप्रकार 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी का दिवाकर राजनैतिक और आर्थिक कारणों से अस्तित्वहीन हो जाता है । भारती के पात्रों का अस्तित्व-दुख पाश्चात्य अस्तित्ववादियों द्वारा निर्धारित अस्तित्व-दुख नहीं है । उनकी पीडा अधिकतर परिवेश-जनित है । इसका मतलब यह नहीं कि भारती पर पाश्चात्य अस्तित्ववादियों का प्रभाव नहीं के बराबर है । वस्तुतः भारती ने अपने पाश्चात्य मस्तिष्क और भारतीय मन का समन्वय करके पात्रों की सृष्टि की है । वे इन दोनों के बीच झूलते दिखाई पडते हैं ।

व्यक्तित्व की छाप

भारती की संपूर्ण रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की छाप देख सकते हैं । एकाधिक कृतियों में भारती ही उपस्थित हैं । भावुकता या रोमानियत से उनकी कोई भी रचना मुक्त नहीं है । रोमानियत उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है । उन्मुक्त रूपोपासना, उद्दाम यौवन की मांसलता, मन की प्यास और रंग-बिरंगी चित्रात्मकता से युक्त हैं कई रचनाएँ । "ठण्डा लोहा" और "सात गीत वर्ष" की अधिकांश कविताएँ,

"चाँद और टूटे हुए लोग" कहानी-संकलन एवं "गुनहों का देवता" उपन्यास इसके सुस्पष्ट निदर्शन हैं । अन्य रचनाओं में भी इसकी कमी-बेशी देख सकते हैं । रोमानियत या भावुकता का चित्रण कोई अपराध नहीं है । हम यह भी मानते हैं कि समस्त सृजन के पीछे भावुकता या रोमानियत ही है । लेकिन इसका चित्रण करते समय तदनुरूप पृष्ठभूमि तैयार करना है और उसको मात्रा अधिक होने से सचेत रहना भी चाहिए । नहीं तो रचना कोरी कल्पना ही रह जाएगी । छायावादकाल की रचनाएँ भी कल्पना और रोमानियत से पूर्ण हैं । लेकिन उनमें एक दार्शनिकता का पुट है । भारती की रोमानियत में यह नहीं है ।

"गुनाहों का देवता" का नायक चन्दर और 'यह मेरे लिए नहीं' का दीनू , हमारी दृष्टि में, भारती ही हैं । ये दोनों चरित्र भारती के समान भावुक, प्रेमातुर, द्विविधाग्रस्त एवं मूल्यों के सामने समझौता करते दिखाई पडते हैं । इनका जीवन और परिवेश किशोर भारती का ही है । इन पात्रों के अतिरिक्त "सूरज का सातवाँ घोडा" के माणिक मुल्ला, "चाँद और टूटे हुए लोग" और 'नदी प्यासी थी' के राजेश के चरित्र में भी भारती के व्यक्तित्व का अंश देखा जा सकता है ।

पूर्णता की तलाश

भारती ने अपनी रचनाओं में विपरीत मनःस्थितियों का चित्रण किया है । जैसे आदर्श और यथार्थ, भावना और वासना, मांसलता और मर्यादा, उत्साह और उदासी । इसके पीछे भारती की द्विविधाग्रस्त मानसिकता और आत्मान्वेषण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । भारती पूर्णत्व की तलाश करनेवाले साहित्यकार हैं उन्होंने "ठण्डा लोहा" में 'निवेदन' शीर्षक कविता में स्वीकार किया है -

"मैं और कला
इनकी कुछ भी अहमियत नहीं !
इन दोनों से ज्यादा विराट्
कोई तीसरा सत्य है

जिसको आत्मसात् कर पाने को
मेरी आत्मा
धीरे धीरे
जीवन की यज्ञ-शिखाओं में पकती जाती"[1]

वे जानते हैं कि जीवन में सत्य के साथ असत्य है, आदर्श के साथ यथार्थ है, मांसलता के साथ मर्यादा है और उत्साह के साथ उदासी भी हैं । इसलिए उन्होंने "अन्धायुग" के बाद "कनुप्रिया" लिखी, "गुनाहों का देवता" के बाद "सूरज का सातवाँ घोडा" लिखा और "चाँद और टूटे हुए लोग के बाद" "बन्द गली का आखिरी मकान" की सृष्टि की । भारती समस्या का एक पक्ष एक दृष्टि से देखने मात्र से संतुष्ट नहीं होते हैं , वे उसका दूसरा पहलू दूसरी दृष्टि से देखने का प्रयास भी करते हैं ।

सीमित संवेदना

"अंधायुग" जैसी कुछ रचनाओं को छोड भारती की अधिकांश रचनाओं के मूल में स्त्री-पुरुष प्रेम है । सृजनात्मक क्षेत्र में भारती अधिकतर एक ही खूँटी के चारों ओर घूमते हैं । उनकी बहुत सारी कविताओं और कहानियों के अतिरिक्त दोनों उपन्यासों और कुछ-एक एकांकी का प्रमुख विषय प्रेम है । लगता है कि भारती में लोकजीवन की पकड कम और आदिम गन्ध की तडप अधिक है । यह तो ठीक है कि उन्होंने रागवृत्ति के ज़रिए जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन किया है । इसके अतिरिक्त, "बन्द गली का आखिरी मकान" संकलन के प्रायः सभी कहानियों के प्रमुख पात्र रोगी हैं । 'गुलकी बन्नो " की गुलकी कुबडी है, 'सावित्री नंबर दो' की सावित्री लंबी बीमारी से ग्रस्त है, 'बन्द गली का आखिरी मकान' का मुंशीजी रोगी बनकर स्वर्ग सिधारता है । फलतः उनकी रचनाओं में एक सीमा तक एकरसता आ गयी है ।

---

1. ठण्डा लोहा, पृः 89.

कलात्मक प्रौढ़ता का विकास

भारती ने साहित्य की सभी विधाओं पर काम किया है । प्रत्येक विधा में उनकी कलात्मकता का क्रमिक विकास देखा जा सकता है । कविता में प्रथम संकलन "ठण्डा लोहा" के आगे है दूसरा संकलन "सात गीत वर्ष" । इन दोनों के आगे हैं बाद में प्रकाशित "अन्धायुग" और "कनुप्रिया" । कहानी के क्षेत्र में दूसरा संकलन "बन्द गली का आखिरी मकान" प्रथम की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ है । उसी प्रकार प्रथम उपन्यास "गुनाहों का देवता" से श्रेष्ठ उपन्यास है "सूरज का सातवाँ घोड़ा" । वस्तुतः भारती सभी विधाओं में अपनी क्षमता की परीक्षा करते रहे । परीक्षा में उत्तीर्ण होने का आभास मिलते ही वह परीक्षा (लिखना) खत्म करता है ।

सृजनात्मक साहित्य पर लेखक के परिवेश का प्रभाव होता ही रहता है। धर्मवीर भारती की रचनाएँ इसका अपवाद नहीं हैं । उनकी अधिकतर लघु कविताएँ रोमानियत से ओत-प्रोत हैं । कुछ कविताएँ अवश्य सार्थक विचार और जनवादी भूमिका का आग्रह रखती हैं । "कनुप्रिया" रागसंबन्ध की अभिनव अभिव्यक्ति का गीति-काव्य है । इसमें राधा का नितांत मौलिक रूप देखा जा सकता है । "अन्धायुग" में भारती ने महाभारतयुद्ध के माध्यम से वर्तमान जीवन की ट्रेजडी के विकराल रूप प्रस्तुत किये हैं । एक नवीन शैली में इसका प्रणयन किया गया है । भारती के एकांकी संवेदना के संप्रेषण में पूर्णतया सफल नहीं हैं । इसका मुख्य कारण कल्पना का आधिक्य है । एकंकियों की तरह "चाँद और टूटे हुए लोग" कहानी-संकलन भी अतियथार्थ और अतिभावुकता के कारण संप्रेषण में असमर्थ हो गया है । "बन्द गली का आखिरी मकान" में भारती की कहानी-कला निखर उठी है । जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन उन्होंने अपनी तमाम कहानियों में किया है । "गुनाहों का देवता" और "सूरज का सातवाँ घोड़ा" में रागवृत्ति के ज़रिए समाज और उसकी कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया है । "सूरज का सातवाँ घोड़ा" ने विविध कहानियों के माध्यम से उपन्यास का रूप धारण किया है । इसमें शिल्प के प्रति भारती अधिक सचेत हैं । सृजनात्मक साहित्यकार के रूप में भारती की अपनी विशेषताएँ हैं जो उनकी कमियाँ भी हैं ।

ग्रंथ-सूची

1. कनुप्रिया - भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-1
अष्टम संस्करण, 1984.

2. ठंडा लोहा - भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली
तृतीय संस्करण, 1976.

3. देशान्तर (अनूदित) - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी - 5
द्वितीय संस्करण, 1965.

4. सात गीत-वर्ष - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
प्रथम संस्करण, 1959.

कहानी

5. आस्करवाइल्ड की कहानियाँ (अनूदित) - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
द्वितीय संस्करण, 1960.

6. चाँद और टूटे हुए लोग - किताब महल, इलाहाबाद,
द्वितीय संस्करण, 1967.

7. बन्द गली का आखिरी मकान - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
प्रथम संस्करण, 1969.

उपन्यास

8. गुनाहों का देवता - भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-1, अठारहवाँ संस्करण, 1981.

9. सूरज का सातवाँ घोडा - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी तृतीय संस्करण, 1963.

गीति-नाट्य

10. अन्धायुग - के. एम. एजेन्सीज़, प्रा. लि. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2, संस्करण, 1990.

एकांकी

11. नदी प्यासी थी - किताब महल प्रा. लि. ज़ीरो रोड, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, 1961.

निबन्ध

12. कहनी अनकहनी - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1970.

13. ठेले पर हिमालय - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी,
द्वितीय संस्करण, 1970.

14. पश्यन्ती - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
प्रथम संस्करण, 1969.

15. मानवमूल्य और साहित्य - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी,
प्रथम संस्करण, 1960.

शोध-प्रबन्ध

16. सिद्ध-साहित्य - किताब महल, इलाहाबाद,
द्वितीय संस्करण, 1968.

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1. अठारह उपन्यास - राजेन्द्र यादव,
अक्षर प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1982.

2. अधूरे साक्षात्कार - नेमिचन्द्र जैन
अक्षर प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-6.

3. अन्धायुग निकष पर - संजीव कुमार,
संजीव प्रकाशन, थानेसर शहर, हरियाणा
प्रथम संस्करण, 1987.

4. अन्धायुग की रचना मानसिकता - डॉ. सुरेश गौतम, डॉ. वीणा गौतम
सहयोग प्रकाशन, मयूर विहार, दिल्ली-92,
प्रथम संस्करण, 1990.

5. अन्धायुग और भारती के अन्य नाट्य-प्रयोग - जयदेव तनेजा
नचिकेता प्रकाशन, पहाड गंज, नई दिल्ली-55,
प्रथम संस्करण, 1980.

6. अन्धायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि - सुरेश गौतम
साहित्य प्रकाशन, मालीवाडा, दिल्ली-6
संस्करण, 1973.

7. आत्मनेपद - अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड,
वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1960.

8. आधुनिक हिन्दी उपन्यास - डॉ. नरेन्द्र मोहन
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड,
दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975.

9. आज का हिन्दी उपन्यास - इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण, 1966.

10. आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास - डॉ. अतुलवीर अरोडा
प्रब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनिवर्सिटी
चंडीगढ, संस्करण, 1974.

11. आधुनिक हिन्दी काव्य रूप और संरचना - निर्मला जैन
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरिया गंज,
नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1984.

12. आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और संवादीय संरचना - गोविन्द चातक
तक्षशिला प्रकाशन, दरिया गंज,
नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1982.

13. आधुनिक हिन्दी कविता सर्जनात्मक संदर्भ - डॉ. रामदरश मिश्र
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली,
संस्करण, 1986.

14. एक दुनिया समानांतर - राजेन्द्र यादव
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली-6,
तीसरा संस्करण, 1974.

15. कविता की तलाश - चन्द्रकांत बांदिवडेकर
विभूति प्रकाशन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-32, प्रथम संस्करण, 1983.

16. कवितायात्रा रत्नाकर से रघुवीर सहाय - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड,
नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1976.

17. कविता कालयात्रिक - डॉ. लक्ष्मीनारायण,
प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली-30.
प्रथम संस्करण, 1988.

18. कवितान्तर - डॉ. जगदीश गुप्त
ग्रन्थम, रामबाण, कानपुर-12
प्रथम संस्करण, 1973.

19. कविता की तीसरी आँख - प्रभाकर श्रोत्रिय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2,
प्रथम संस्करण, 1980.

20. कविता की मुक्ति - डॉ. नन्दकिशोर नवल
वाणी प्रकाशन, दिल्ली-7,
प्रथम संस्करण, 1980.

21. कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्रयादव
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
द्वितीय संस्करण, 1977.

22. कनुप्रिया एक मूल्यांकन - सुलभा बाजीराव पाटील
पंचशील प्रकाशन, जयपुर-302003
प्रथम संस्करण, 1981.

23. कनुप्रिया एक नाट्य-एकालाप - जितेन्द्र सेठी
नलंदा प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली-30
प्रथम संस्करण, 1978.

24. क्योंकि समय एक शब्द है - रमेश कुंतल मेघ
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
प्रथम संस्करण, 1975.

25. काव्यानुशीलन आधुनिक अत्याधुनिक - डॉ. कुमार विमल
ज्ञानपीठ प्रइवेट लिमिटेड, पटना-4
संस्करण, 1970.

26. काव्य परंपरा और नयी कविता की भूमिका - डॉ. (श्रीमती) कमल कुमार
प्रेमप्रकाशन मन्दिर, बल्लीमारान, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण, 1987.

27. गद्यकार धर्मवीर भारती - डॉ. वनिता जोतवाणी
मोहित प्रकाशन, अहमदाबाद-15,
गुजरात, प्रथम संस्करण, 1988.

28. दिशाओं का परिवेश - सं. ललित शुक्ल
वाणी प्रकाशन, कमला नगर, दिल्ली-7
प्रथम संस्करण, 1968.

29. दिशान्तर - सं. डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव,
डॉ. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, अनुराग
प्रकाशन, विशालाक्षी चौक, वाराणसी
तृतीय संस्करण, 1975.

30. दूसरा सप्तक - सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता-27
द्वितीय संस्करण, 1970.

31. दृश्यांतर - नरेन्द्र मोहन
किताब घर, गाँधीनगर, दिल्ली-31
प्रथम संस्करण, 1985.

32. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1973.

33. धर्मवीर भारती - सं. लक्ष्मणदत्त गौतम
कुमार प्रकाशन, मोती नगर, नई दिल्ली-15
प्रथम संस्करण, 1974.

34. धर्मवीर भारती कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ - डॉ. व्रजमोहन शर्मा
भारती भाषा प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली-32
प्रथम संस्करण, 1976.

35. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार - डॉ. पुष्पा वास्कर
आलका प्रकाशन, किदवई नगर, कानपुर-11
प्रथम संस्करण, 1987.

36. धर्मवीर भारती उपन्यास साहित्य - कैलाश जोशी
चिन्मय प्रकाशन, चौडा रास्ता, जयपुर-3
नवीन संस्करण, 1976-1977.

37. धर्मवीर भारती साहित्य के विविध आयाम - डॉ. हुकुमचन्द राजपाल
वि. भू. प्रकाशन, साहिबाबाद-201005
संस्करण, 1986.

38. धर्मवीर भारती और कमलेश्वर की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन - प्रो. कृष्ण नारायण वशिष्ट कमलेश
बुक-सैण्टर, दलपत स्ट्रीट, मथुर-1
प्रथम संस्करण, 1981.

39. धर्मवीर भारती का साहित्य सृजन के विविध रंग - डॉ. चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे
पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-3
प्रथम संस्करण, 1979.

40. नया सृजन नया बोध - डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल
राजेश प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1974.

41. नयी कविता नये कवि - विश्वंभर मानव
लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग,
इलाहाबाद-1, द्वितीय संस्करण, 1968.

42. नयी कविता कथ्य एवं विमर्श - डॉ. अरुण कुमार
चित्रलेखा प्रकाशन, अलोपी बाग, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण, 1988.

43. नयी कविता - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड,
नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1976.

44. नयी कविता विलायती संदर्भ - जगदीश कुमार
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-7
प्रथम संस्करण, 1976.

45. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर
शब्दकार, दिल्ली
संस्करण, 1978.

46. नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति - सं. देवीशंकर अवस्थी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण, 1966.

47. नयी कहानी दशा दिशा संभावना - सं. सुरेन्द्र
अपोलो प्रकाशन, जयपुर
प्रथम संस्करण, 1966.

48. परिवेश - मोहन राकेश
भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता-27
प्रथम संस्करण, 1972.

49. भारती संगम से सागर - सं. पंडित सुरेन्द्र तिवारी, सुरिन्दर सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली
पहला संस्करण, 1987.

50. भारती का काव्य - रघुवंश
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड,
नई दिल्ली-32, प्रथम संस्करण, 1980.

51. भारती की काव्य-भाषा - डॉ. पाण्डेय शशिभूषण "शीतांशु"
नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल
प्रथम संस्करण, 1985.

52. मेरा हमदम मेरा दोस्त - सं. कमलेश्वर
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज,
दिल्ली-6, प्रथम संस्करण, 1975.

53. रेखाएँ और चित्र - उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन गृह, खुसरो बाग रोड,
इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1955.

54. लंबी कविताओं का रचनाविधान - सं. नरेन्द्रमोहन
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड,
नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1977.

55. विवेक के रंग - सं. देवीशंकर अवस्थी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दुर्गाकुण्ड मार्ग,
वाराणसी-5, प्रथम संस्करण, 1965.

56. समकालीन हिन्दी कविता - डॉ. अशोक त्रिपाठी
शारदा सदन, जीरो रोड, इलाहाबाद-3
प्रथम संस्करण, 1981.

57. समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र-सृष्टि - जयदेव तनेजा
सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण, 1971.

58. साहित्य और आधुनिक युगबोध - देवेन्द्र इस्सर
जयकृष्ण अग्रवाल, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर
प्रथम संस्करण, 1973.

59. सिलसिला - मधुरेश
प्रकाशन संस्थान, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1979.

60. हस्तक्षेप - धनञ्जय वर्मा
विद्या प्रकाशन मन्दिर, दरियागंज, दिल्ली
संस्करण, 1979.

61. हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान - रामदरश मिश्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1977.

62. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम - डॉ. रामदरश मिश्र
वाणी प्रकाशन, कमलानगर, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1978.

63. हिन्दी नवलेखन - रामस्वरूप चतुर्वेदी
भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी,
संस्करण, 1960.

64. हिन्दी कविता तीन दशक - रामदरश मिश्र
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली

65. हिन्दी रंगकर्म दशा और दिशा - जयदेव तनेजा
तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1988.

66. हिन्दी कविता अद्यतन भूमिका - डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया
कुमार प्रकाशन, मोती नगर, नयी दिल्ली-15.
प्रथम संस्करण, 1984.

67. हिन्दी नाटक और रंगमंच पहचान और परख - सं. इन्द्रनाथ मदान
लिपि प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1975.

68. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डॉ. रमेशचन्द्र लवानिया
अमित प्रकाशन, गाजियाबाद
प्रथम संस्करण, 1973.

69. हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान - रामदरश मिश्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1977.

70. हिन्दी कहानी समीक्षा और संदर्भ - डॉ. विवेकी राय
राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद-6
प्रथम संस्करण, 1985.

71. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1962.

72. हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार - डॉ. रवेलचन्द आनन्द
सूर्य प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण, 1978.

73. हिन्दी उपन्यास - डॉ. सुषमा धवन
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1961.

74. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास - डॉ. सुरेश सिन्हा
अशोक प्रकाशन, नयी सडक, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण, 1965.

75. हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग - अरविन्द गुर्टु

76. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन - डॉ. गणेशन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण, 1962.

77. Principles of Literary Criticism - I. A. Richards
Routledge & Kegan Pant Ltd
Carter Lane, London
15th Impression.

78. Selected Prose - T. S. Eliot
Penguin Books, England
Edition, 1965.

79. The Concise Cambridge History of English Literature - George Sampson
The English Language Book Society and Cambridge University Press
Bentley House, Euston Road,
London, Third Edition.

80. The Making of Literature - R. A. Scott James
Martin Secker & Warburg Ltd
14 Carlisle Street, London
Reprinted, 1967.

81. Understanding Poetry - James Reeves
Pan Books Ltd., Cavage Place,
London, 4th Pinting 1978.

पत्रिकाएँ

1. अक्षरा - अप्रैल - सितंबर 1991.

2. आजकल - 5 मई 1980.

3. कल्पना - अगस्त - सितंबर 1969.

4. ज्ञानोदय - अक्तूबर 1963.

5. धर्मयुग - 27 दिसंबर 1987.

6. धर्मयुग - 16-31 अक्तूबर 1991.

7. धर्मयुग - 1-15 मई 1992.

8. नटरंग - जुलाई - सितंबर 1990.

9. साक्षात्कार - सितंबर - अक्तूबर 1989.

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY LIBRARY
COCHIN - 682 022